षट्द्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा

डॉ. नारायण लाल कछारा

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर
सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग, जयपुर

प्राकृत भारती पुष्प 233

षट्द्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा

लेखक

डॉ. नारायण लाल कछारा

प्रकाशक

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग, जयपुर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्त्रोतः-

★ देवेन्द्रराज मेहता, संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक
प्राकृत भारती अकादमी,
१३-ए, गुरुनानक पथ,
मेन मालवीय नगर, जयपुर - ३०२ ०१७
दूरभाष - ०१४१ - २५२४८२७, २५२०२३०

★ **सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग,**
१३-ए, गुरुनानक पथ,
मेन मालवीय नगर, जयपुर - ३०२ ०१७
दूरभाष - ०१४१ - २५२४८२७, २५२०२३०

★ प्रथम संस्करण 2007

★ मूल्य : 300/- रुपये

★ ***ISBN NO. 978-81-89698-38-6***

★ © प्रकाशकाधीन

★ **लेजर टाइप सेटिंग**
सागर सेठी,
प्राकृत भारती अकादमी

★ मुद्रक:
दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
फोन नं० - 0141-2562929

This book is printed on Eco-friendly paper.

प्रकाशकीय

आध्यात्म और विज्ञान कुछ लोगों के लिए बहुत दूर है और कुछ लोगों के लिए बहुत पास है। यह चर्चा एक अरसे से चली आ रही है और चिरकाल तक चलती रहेगी।

जैन धर्म को वैज्ञानिक व तर्कसंगत धर्म कहा जाता है। तर्कसंगत मानने में कोई मत-भेद नहीं है, किन्तु वैज्ञानिक कहने पर एतराज उठते रहते हैं। जैन विद्वानों ने ऐसे विरोधों पर कोई शोधपूर्ण कार्य नहीं किया है। इसी कारण वे अधिकतर आधुनिक समाज में प्रचार मार्ग के लिए उस तथाकथित वैज्ञानिकता का उपयोग करते रहे हैं।

प्रसन्नता है कि डा. कछारा ने जैन अवधारणाओं और उन के आधुनिक विज्ञान से साम्य व संबंध पर चिंतन और शोध कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। परम्परा और विज्ञान दोनों क्षेत्रों के लोगों की रूढ मानसिकताओं से परे हट कर उन्होंने एक नया सोच दिया है जो सराहनीय है। आशा है सुधी पाठक इसे रुचिकर पायेगें और शोधकर्त्ता इस से प्रेरित हो इस कार्य को आगे बढ़ाएंगे।

प्रकाशन में जुड़े सभी व्यक्तियों का धन्यवाद।

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार कांकरिया
सोसायटी फॉर साइन्टिफिक
एण्ड एथिकल लिविंग,
जयपुर

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक
प्राकृत भारती अकादमी,
जयपुर

आमुख

चिरकाल से मनुष्य के मन में कुछ जिज्ञासाएं हैं। हम कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? कहाँ जायेंगे ? संसार में विभिन्न प्रकार के प्राणी क्यों हैं ? विश्व को किसने बनाया ? यह विश्व ऐसा क्यों है, जैसा है ? इस विश्व का संचालन कौन करता है? इन जिज्ञासाओं का समाधान पाने की प्रयास यात्रा में ही ज्ञान और विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ है। यह प्रयास आनादि काल से चल रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा। क्या इसका अर्थ यह है कि इन प्रश्नों का समाधान कभी प्राप्त नहीं होगा। इसका उत्तर 'हाँ' और 'नहीं' दोनों में है। समाधान प्राप्त हो भी गया है और नहीं भी हुआ है। जैसे जिज्ञासाएँ व्यक्तिगत है वैसे ही समाधान भी व्यक्तिगत है। कुछ उच्चस्तरीय आत्माओं ने सत्य का साक्षात्कार कर सभी प्रश्नों का हल प्राप्त कर लिया है। परन्तु संसारी लोगों के प्रश्न यथावत् बने हुए हैं। कारण यह है कि सत्य का अनुभव स्वयं को करना पड़ता है, अन्य के अनुभव से केवल मार्ग दर्शन ही मिल सकता है, अनुभूति नहीं होती। जब तक सत्य की अनुभूति नहीं होती मनुष्य के मन में प्रश्न बन रहते हैं।

सत्य क्या है? क्या हम जो देखते हैं वही सत्य है? विश्व के समस्त दर्शनों में इस प्रश्न पर विचार किया गया है। जो हम देखते हैं, वह सापेक्ष सत्य है, अस्थाई है और परिवर्तनशील है। इस दृष्टि से वह असत्य भी है। अत: यह विश्व सत्यात्य है, नित्यानित्य है। देखने में प्रत्यक्ष जीवन और गति अधिक समर्थ और शक्तिशाली दिखाई देते हैं किन्त यह अपनी भूल तथा स्थूल दृष्टि मात्र है। यदि अपने ज्ञान चक्षु जाग्रत हों तो यह पता चलेगा कि शक्ति और सामर्थ्य की दृष्टि से दृश्य जगत सबसे कमजोर है। जो सशक्त है वह सूक्ष्म है, स्थूल तो इसका आवरण है। जो सूक्ष्म है वही शक्ति का स्त्रोत है, उसे समझने और उपयोग करने के लिए अधिक गम्भीर और वेधन दृष्टि चाहिए। उसका उपयोग करने तथा उससे लाभान्वित होने के लिए तो और भी अधिक पैनी दृष्टि चाहिए।

भगवान महावीर प्रकृति के सूक्ष्मतम सत्यों को जानने और अनुभव करने वाली महान् आत्माओं में से एक थे। वे एक छोर पर सूक्ष्मतम परमाणु को जानते थे

और दूसरे छोर पर समस्त लोक को जानते थे। चेतना की शुद्धतम अवस्था को उन्होंने प्राप्त किया था और इस विश्व की सच्चाई को वे प्रत्यक्ष देखते थे। करूणा के सागर भगवान् महावीर ने सर्वजन को सत्य का मार्ग दिखाया और उनकी जिज्ञासाओं का समाधान किया।

भगवान् की दृष्टि सर्वथा वैज्ञानिक थी। अन्य दार्शनिकों की भांति उन्होंने इस सृष्टि के रचियता और नियंता के रूप में किसी ईश्वरीय शक्ति को मान्यता नहीं दी। उन्होंने कहा कि यह विश्व छह द्रव्यों से बना है और सभी द्रव्य अपने-अपने गुण स्वभाव के अनुसार व्यवहार करते हैं। षट्द्रव्यों के व्यवहार से उन्होंने जीव और प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्यों को उद्घाटित किया। सामान्य मनुष्य के लिए प्रकृति के इन गूढ़ रहस्यों को समझना आसान नहीं है। इसलिए भगवान महावीर ने दो उपाय किए। एक तो विद्वान गणधरों को अपना शिष्य बनाया जो उनकी वाणी को समझ सकते थे और दूसरा ऐसी शैली का प्रयोग किया जो जन सामान्य के लिए ग्रहणीय थी। **उन्होनें उदाहरणों, अलंकारों और सरल शब्दों के माध्यम से सत्य को प्रकट किया।** जब लम्बे कालखण्ड के बाद आचार्यों और विद्वानों ने महावीर वाणी को लिखित रूप दिया तो उसमें संभवतया उनके विचारों और समकालीन तथ्यों का भी समावेश हुआ। आज आगमों और ग्रंथों के रूप में जो ज्ञान उपलब्ध है वह किस सीमा तक जिनवाणी है और इसमें कितना आचार्यों का योगदान है जानना कठिन है। शास्त्रों के अनुसार जिनवाणी तो -

(1) अठारह दोष रहित सर्वज्ञ एवं वीतरण द्वारा कथित (2) खण्डन रहित (3) प्रत्यक्ष और अनुमान आदि प्रमाणों से अबाधित (4) बाधक प्रमाण रहित (5) युक्ति शास्त्र अविरोधी या अविसंवादी होती है। इसकी प्रामाणिकता के ये ही आधार हैं।

नेमचन्द्र शास्त्री के अनुसार प्रारम्भ में तो आचार्य श्रुतधर, सारस्वत और प्रबुद्ध कोटि के थे और उन्होंने जैन मान्यताओं को युगानुरूप बनाये रखने का प्रत्यन्न किया। उसके उत्तरवर्ती काल में परम्परा पोषक आचार्यों की परम्परा चली। इससे आज हमारा शास्त्रीय ज्ञान 10 वी., 11 वीं सदी की मान्यताओं के परिरक्षण पर आधारित है। यह पिछले एक हजार वर्ष में हुई बौद्धिक और वैज्ञानिक प्रवृति ज्ञान क्षितिज के प्रति न केवल उदासीन है, अपितु शास्त्रीय विवरणों को वरीयता देता है। यह जैन धर्म की वैज्ञानिकता को घोषित करने की प्रवृति और मानसिकता के प्रतिकूल है।उत्तराध्ययन भी कहता है कि प्रज्ञा से धार्मिक सिद्धान्तों की परीक्षा करनी

चाहिए। सिद्धसेन ने अपनी द्वात्रिंशिका में कहा है कि मैं पूर्वजों के द्वारा स्थापित सिद्धान्तों व व्यवस्थाओं का तथैवेति मानने का पक्षधर नहीं हूँ। मैं उनकी परीक्षा करूंगा, चाहे कोई माने या न माने।

हमारे ग्रंथों में कुछ ऐसे विवरण उपलब्ध होते हैं जो आधुनिक विज्ञान से साम्य नहीं रखते। जैन दर्शन का आधुनिक विज्ञान से साम्य आवश्यक नहीं है परन्तु हमारे पास विवेक की जो कसौटी है उसके अनुसार तर्कपूर्ण समाधान तो अपेक्षित है। विज्ञान भी सत्य का अनुगामी है और वह सत्य असत्य को परखने की एक कसौटी तो प्रस्तुत करता है जो पूर्व के आचार्यो को उपलब्ध नहीं थी। **जैन दर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन आज की आवश्यकता है।** आगम और विज्ञान के बारे में प्रो. मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी के निम्नलिखित विचार महत्त्वपूर्ण हैं

1. तमेव सच्चं निस्संकं नं जिगेदिं पेवइयं - यह हमारे चिन्ता का प्रमुख आधार होना चाहिए। इसके साथ-साथ यह भी समझना होगा कि जिनेश्वर देव द्वारा प्रवेदित तथ्य को हमने सही रूप में समझा है या नहीं। आगम-वचन की विवक्षा क्या है, किस दृष्टि से किस बात को कहा गया है, इसकी पर्याप्त समझ के बिना मूल में ही आगम-वचन के नाम पर हम कोई ऐसी बात तो नहीं कह रहे हैं, जो जिनेश्वर देव द्वारा विवक्षित न हो। प्रत्येक वचन उसके सही परिप्रेक्ष्य में ही समझना नयदृष्टि का मन्तव्य है। पूर्वापर प्रसंग, शब्दों के विभिन्न अर्थ, दृष्टिकोण या अपेक्षा के सम्यग् बोध के बिना आगम-वचन का तात्पर्य कैसे समझेंगे? इसलिए निःशंक और सत्य बात तक पहुँचने के लिए प्रयत्न होना चाहिए।
2. विज्ञान द्वारा जो सूचना मिल रही है, उसे भी आगम एवं अन्य प्रमाणों के आधार पर कस कर स्वीकार्य मानना होगा। न विज्ञान की बात को आंखे बंदकर स्वीकार करना, न ही उसके विरोध में पूर्वाग्रह रखना। युक्तियुक्त एंव आगम-विरूद्ध तथ्यों को तटस्थतापूर्वक समझने की कोशिश करना-यही उचित,समीचीन एवं उपादेय लगता है।
3. बात आगम की हो या विज्ञान की, पहले हमारी समझ को सही बनाना जरूरी है। यदि आगम के नाम पर या विज्ञान के नाम पर हम उसे समझे बिना किसी बात का प्ररूपण कर देंगे तो न्याय नहीं होगा।
4. किसी भी तत्व निर्णय का उद्देश्य सुविधा-असुविधा, प्रचार-प्रसार में उपयोगिता, आधुनिकता का व्यामोह आदि नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार केवल परम्परा

का आग्रह भी न हो। तत्व-निर्णय के पश्चात् क्या करना, क्या न करना - ये बातें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षाओं के साथ जुड़नी चाहिए, न कि नवीन-पुरातन आदि पर।

5. जिन विषयों में आगम न साधक है, न बाधक है, उनके सम्बन्ध में बुद्धि, तर्क और विज्ञान के माध्यम से संगत यथार्थ के विषय में विचार करने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए।

उपरोक्त मूल भावना के साथ ही इस ग्रंथ की रचना की गई है। पदार्थ के मूलभूत गुणों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने पर आगम और विज्ञान में अच्छा सामंजस्य ही नहीं बन पड़ता अपितु जैन दर्शन विश्व की ऐसी गुत्थियों को भी सुलझाने में समर्थ हो जाता है जो आज वैज्ञानिकों के लिए प्रश्न बनी हुई हैं। ग्रंथ की रचना में जैन साहित्य के अतिरिक्त वेब साइट पर उपलब्ध आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी का खुलकर उपयोग किया गया है। प्रत्येक अध्याय में जैन दर्शन आधारित ज्ञान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और उनका तुलनात्मक विवरण दिया गया है। जो चित्र उभर कर आता है उससे जैन दर्शन की वैज्ञानिकता स्वत: सिद्ध होती है।

प्रथम अध्याय में जैन दर्शन में द्रव्य की अवधारणा प्रतिपादित की गई है। 'द्रव्य' की परिभाषा करते हुए बताया गया है कि गुण और पर्यायों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं। अर्थात् द्रव्य वह है, जिसमें गुण और पर्याय (अवस्थाएं) होते हैं। द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में परिणमन करते हुए भी द्रव्य अपने मौलिक स्वभाव की अपेक्षा नित्य रहता है। सत् और द्रव्य एक ही तत्व के सूचक हैं। जैन दर्शन में द्रव्य छह माने गये हैं। धर्मास्तिकाय (धर्म) अधर्मास्तिकाय (अधर्म), आकाशास्तिकाय (आकाश) पुद्गलास्तिकाय (पुद्गल) जीवास्तिकाय (जीव) एवं काल।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों का विवेचन द्वितीय अध्याय में किया गया है। धर्म और अधर्म द्रव्य जैन दर्शन की मौलिक देन है। ये दोनों द्रव्य लोक में एक-एक हैं, क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है तथा ध्रुव निश्चित, शाश्वत, अक्षय, अवस्थित और नित्य हैं। धर्म गति सहायक द्रव्य है और अधर्म स्थिति सहायक द्रव्य है। ये दोनो द्रव्य उदासीन सहायक हैं परन्तु इनके बिना जीव और पुद्गल की गति और स्थिति संभव नहीं होती। यह आवश्यक कि जिस द्रव्य को गति-माध्यम माना जाय वह स्वयं गति शून्य हो, समस्त लोक में व्याप्त हो और दूसरे द्रव्यों की गति में सहायक बने। ऐसा द्रव्य धर्मास्तिकाय है। आकाश भी एक

अखण्ड और शाश्वत तथा अनन्त प्रदेशी द्रव्य है परन्तु धर्म और अधर्म द्रव्य इसको दो भागों, लोकाकाश और अलोकाकाश, में विभाजित करते हैं। लोकाकाश धर्म, अधर्म जीव और पुद्गल को अवगाहना प्रदान करता है। लोकाकाश सीमित है और अलोकाकाश अनन्त है। काल द्रव्य के दो भेद हैं -नैश्चयिक काल और व्यवहारिक काल। नैश्चयिक काल अन्य द्रव्यों में परिणमन का हेतु है और व्यवहारिक काल गणनात्मक है। श्वेताम्बर - परम्परा में नैश्चयिक काल की उपस्थिति समस्त आकाश में मानी गई है और दिगम्बर परम्परा के अनुसार नैश्चयिक काल लोकाकाश में ही है। दोनों ही परम्पराओं में व्यवहारिक काल 'समय क्षेत्र' तक सीमित है। आकाश और काल का वैज्ञानिक विवेचन भी किया गया है। न्यूटन ने आकाश और काल को स्वतंत्र वस्तु - सापेक्ष वास्तविक तत्व माना है। आइन्स्टीन के अभिमतानुसार आकाश और काल की कोई वस्तु-सापेक्ष वास्तविकता नही हैं। ऐसा नही होने पर भी उन्होने 'आकाश काल की संयुक्त चतुर्वेमितिक सततता' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। कुछ अन्य वैज्ञानिक आइन्स्टीन से सहमत नहीं हैं और वे आकाश और काल को वास्तविक ही मानते हैं और यह मत जैन दर्शन से साम्य रखता है।

तृतीय अध्याय में पुद्गल की जैन दर्शन और वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचना की गई है। जैन दर्शन के अनुसार जो स्पर्श -रस -गंध-वर्ण से युक्त हो और भेद-संघात से पूरण और गलन को प्राप्त हो वह पुद्गल है। इस परिभाषा में विश्व के समस्त ऊर्जा और पदार्थ समाहित हैं। जैन दर्शन का परमाणु वास्तव में एक ऊर्जा कण है और विज्ञान का अणु अनंत परमाणुओं का स्कंध है। विज्ञान ने विभिन्न प्रकार के अणुकणों की खोज की है और चार प्रकार के मूल बल बताये हैं। वैज्ञानिक यह प्रयास कर रहे हैं कि उन्हे एक ऐसी थ्योरी मिल जाय जो चारों प्रकार के बल तथा सभी पदार्थ कणों की व्याख्या करे। ऐसे प्रयासों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया गया है। वर्ण, रस और गंध के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी उल्लेख है।

चतुर्थ अध्याय में जीव द्रव्य का विस्तृत वर्णन किया गया है। जैन दर्शन आत्मवादी दर्शन है और आत्मा को स्वतंत्र द्रव्य के रूप में मानता है। आत्मा चैतन्य युक्त तत्व है और ज्ञान उसका सहज गुण है। संसारी आत्मा कर्म बद्ध है और अशुद्ध अवस्था में है। मुक्त आत्मा शुद्ध है, परमात्मा है। षड्जीवनिकायवाद जैन दर्शन की मौलिकता है। पश्चिमी दर्शन में चेतना को मन का गुण बताया गया है। जैन दर्शन के अनुसार मन विकसित चेतना का गुण है और चेतना आत्मा का गुण है। जैन दर्शन में जीवों का वर्गीकरण चेतना के विकास पर आधारित है और विज्ञान में यह

मुख्यतया शरीर संरचना के आधार पर किया गया है। दोनों प्रकार के वर्गीकरण की अपनी-अपनी विशिष्टता है।

पचंम अध्याय में वर्गणा पर विचार हुआ है। वर्गणा अनंत परमाणुओं से बना ऊर्जा पुंज के रूप में है, इस दृष्टि से यह विज्ञान के क्वांटम के समकक्ष है। जैन दर्शन में 23 प्रकार की वर्गणाओं का उल्लेख है। प्रारम्भिक वर्गणाएं चतु:स्पर्शी हैं और द्रव्यमान रहित हैं। ऊपर की वर्गणाओं में बन्ध प्रक्रिया घटित होने से चार आपेक्षिक स्पर्श उत्पन्न होते हैं और वे अष्टस्पर्शी हो जाती हैं। अष्टस्पर्शी वर्गणाओं में द्रव्यमान तथा अन्य गुण प्रकट होते हैं। विज्ञान की सहायता से प्राप्त वर्गणा की नई व्याख्या हमारे चिंतन को एक नई दिशा प्रदान करती है और जैन दर्शन और विज्ञान के बीच एक सामंजस्य स्थापित करती है। वर्गणाएं वैज्ञानिक पदार्थ अणु कणों से बहुत सूक्ष्म हैं और यह समझने में हमारी सहायता करती है कि अणु कण कैसे बनते हैं और इनमें मूल बल कैसे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार जैन दर्शन और विज्ञान मिलकर पदार्थ के सम्पूर्ण व्यवहार को समझने में सक्षम हो जाते हैं।

षष्टम् अध्याय में ब्रह्माण्ड की रचना पर विचार किया गया है। जैन दर्शन में ब्रह्माण्ड का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। विज्ञान भी ब्रह्माण्ड की विस्तृत खोज कर रहा है। दोनों के दृष्टिकोण में सदृशता कम असदृशता ही अधिक है। जो चिंतन यहाँ प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मध्य लोक में स्थित द्वीपों की तुलना नीहारिकाओं से की गई है, इससे दोनों दृष्टिकोणों के बीच दूरी कम करने में सहायता मिली है। जैन दर्शन के अनुसार लोक अनादि-निधन और अकृत्रिम है तथा उसका एक आकार है। जैन दर्शन द्वारा प्रस्तुत त्रिशरावसंपुटाकर लोक विज्ञान सम्मत प्रतीत होता है।

अध्याय सात में जीव की उत्पति और विकास पर चर्चा की गई है। आगम के अनुसार जीव अविनाशी है उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता केवल पर्याय परिवर्तन होता है। विज्ञान में जीव विकास की समीक्षा की गई है और आगम में चेतना विकास की। विज्ञान के अनुसार एक कोशीय जीव से प्रारम्भ होकर अन्य सभी जीवों का विकास हुआ, आगम के अनुसार जीव एकेन्द्रिय अवस्था से प्रारम्भ कर पंचेन्द्रिय अवस्था प्राप्त करता है और अपनी चेतना का विकास करता हुआ परमात्मा अवस्था भी प्राप्त कर सकता है।

इस शोध पूर्ण ग्रथ से जैन दर्शन का जो वैज्ञानिक स्वरूप प्रकट हुआ है वह सब गुरू की कृपा और आशीर्वाद से ही संभव हुआ है। मेरा तो एक विनम्र प्रयास

है, प्रेरणास्त्रोत गुरू और जिनेश्वर देव ही रहे हैं। परम पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य सूक्ष्म रूप में निरन्तर प्रेरणा प्रदान करते रहे और परम पूज्य आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव से पग-पग पर मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ। डॉ. नन्दलाल जैन और डॉ. पारसमल अग्रवाल ने पाण्डुलिपि को आद्योपांत पढ़ा और कई उपयोगी सुझाव दिए। मैं इन दोनों विद्वानों का अत्यन्त आभारी हूँ। मैं मुनि महेन्द्र कुमार, साध्वी योगक्षेमप्रभा और अन्य लेखकों तथा विद्वानों का भी आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों और लेखों से इस ग्रंथ लेखन में सहायता प्राप्त हुई।

30 जुलाई, 2007
गुरु पूर्णिमा
उदयपुर

नारायण लाल कछारा

अनुक्रमणिका

आमुख		V
1.	**द्रव्य की अवधारणा**	**1–10**
1.1	जैन दर्शन में द्रव्य	3
1.2	द्रव्य के लक्षण	3
1.3	षट्द्रव्य	4
1.4	द्रव्य के गुण	4
1.4.1	सामान्य गुण	4
1.4.2	विशेष गुण	5
1.5	पर्याय	6
1.6	द्रव्यों के उत्तर गुण	8
2. अर्मूत द्रव्य- धर्म, अधर्म, आकाश, काल		**11–28**
2.1	धर्मास्तिकाय	13
2.2	अधर्मास्तिकाय	14
2.3	आकाशास्तिकाय	15
2.4	काल द्रव्य	17
2.5	आकाश और समय की वैज्ञानिक अवधारणा	19
2.5.1	विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त	20
2.5.2	सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त	22
2.6	वैज्ञानिक अवधाराणा और जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन	25
3. पुद्गल द्रव्य		**29–60**
3.1	पुद्गलास्तिकाय	31
3.2	परमाणु	35
3.2.1	परमाणु में तारतम्य	36
3.2.2	परमाणु में गतिक्रिया	37
3.3	जीवों के पुद्गल परिवर्तन	39
3.4	पुद्गल की विभाव पर्यायें	40

3.4.1	शब्द	40
3.4.2	बंध	41
3.4.3	सौक्ष्म्य और स्थौल्य	42
3.4.4	संस्थान	42
3.4.5	भेद	42
3.4.6	अंधकार	42
3.4.7	छाया	43
3.4.8	आतप	43
3.4.9	अद्योत	43
3.4.10	प्रभा	43
3.5	परिणमन ओर विश्व संचालन	43
3.6	विज्ञान में मौलिक कण	45
3.6.1	लेपटॉन कण	46
3.6.2	बेरियॉन कण	47
3.6.3	मेसन कण	48
3.7	विज्ञान में बल	48
3.8.	फील्ड थ्योरी	50
3.9	द्रव्यमान क्या है?	53
3.10	इंद्रिय संज्ञा	56
3.10.1	वर्ण	56
3.10.2	रस	58
3.10.3	गंध	59
3.10.4	श्रवण	60

4. जीव द्रव्य **61–96**

4.1	जैन दर्शन में जीव	63
4.2	जीवों का वर्गीकरण	68
4.2.1	भव संसरण की अपेक्षा	68
4.2.2	षड्जीव निकायवाद् जीव विभाग	70
4.2.2.1	पृथ्वीकाय	71

4.2.2.2 अप्काय 71
4.2.2.3 तेजसकाय 71
4.2.2.4 वायुकाय 71
4.2.2.5 वनस्पतिकाय 72
4.2.2.6 त्रसकाय 74
4.3 जीव योनि और आहार 76
4.3.1 वनस्पति 76
4.3.2 मनुष्य 78
4.3.3 पंचेन्द्रिय तिर्यंच 79
4.3.4 विकलेन्द्रिय त्रस जीव 80
4.3.5 स्थावर जीव 80
4.3.6 गर्भ विज्ञान 81
4.3.7 उत्पत्ति स्थान (योनि) 82
4.4 पर्याप्ति 83
4.5 प्राण 84
4.6 पश्चिम में चेतना की अवधारणा 85
4.7. जीव विज्ञान में जीवों का वर्गीकरण 87
4.8 कोशिका 89
4.9 विकास क्रम-जीवों की श्रेणी 90
4.10 सूक्ष्म जीव 91
4.10.1 बेक्टीरिया (जीवाणु) 91
4.10.2 वायरस (विषाणु) 93
4.10.3 आर्किया 94
4 .11 समीक्षा 95

5. वर्गणा **97–130**
5.1 वर्गणा 99
5.1.1 अणुवर्गणा 100
5.1.2 संख्याताणु वर्गणा 100
5.1.3 असंख्याताणु वर्गणा 100

5.1.4	अनंताणु वर्गणा	101
5.1.5	आहार वर्गणा	101
5.1.6	अग्राहय वर्गणा	101
5.1.7	तैजस वर्गणा	101
5.1.8	अग्राहय वर्गणा	101
5.1.9	भाषा वर्गणा	101
5.1.10	अग्राह्य वर्गणा	102
5.1.11	मनो वर्गणा	102
5.1.12	अग्राहय वर्गणा	102
5.1.13	कार्माण वर्गणा	102
5.1.14	ध्रुव वर्गणा	103
5.1.15	सान्तर निरन्तर वर्गणा	103
5.1.16	ध्रुव शून्य वर्गणा	103
5.1.17	प्रत्येक शरीर वर्गणा	103
5.1.18	ध्रुव शून्य वर्गणा	104
5.1.19	बादर निगोद वर्गणा	104
5.1.20	ध्रुव शून्य वर्गणा	104
5.1.21	सूक्ष्म निगोद वर्गणा	104
5.1.22	ध्रुव शून्य वर्गणा	104
5.1.23	महास्कंध वर्गणा	105
5.2	वर्गणा की उत्पत्ति	105
5.3	वर्गणा की वैज्ञानिक पहचान	106
5.3.1	महास्कंध वर्गणा और भौतिक पदार्थ	112
5.4	वर्गणा के उपकार	114
5.4.1	आहार वर्गणा	114
5.4.2	तैजस वर्गणा	117
5.4.3	भाषा वर्गणा	119
5.4.4	मनोवर्गणा	120
5.4.5	कार्माण वर्गणा	121
5.4.6	प्रत्येक शरीर वर्गणा	124

5.4.7 बादर निगोद वर्गणा और सूक्ष्म निगोद वर्गणा 126
5.5 समीक्षा 127

6. ब्रह्माण्ड **131–191**
6.1 जैन दर्शन मे लोक 133
6.1.1 त्रसनाड़ी 136
6.1.2 अधोलोक 138
6.1.3 मध्यलोक 138
6.1.4 देवों के भेद 146
6.1.5 ऊर्ध्व लोक 147
6.1.6 वातवलय 147
6.1.7 जम्बूद्वीप 148
6.1.7.1 भरत क्षेत्र 149
6.1.7.2 अन्य छह क्षेत्र 150
6.1.7.3 सुमेरू पर्वत 150
6.1.7.4 विदेह क्षेत्र 151
6.1.8 ज्योतिर्लोक 152
6.1.9 द्वीपसागर 153
6.2 वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड 155
6.2.1 सौर परिवार 155
6.2.2 आकाश गंगा 158
6.2.3 एन्ड्रोमीडा नीहारिका 163
6.2.4 ब्रह्माण्ड 164
6.2.5 तारों का विकास 168
6.2.6 ब्रह्माण्ड की संरचना 170
6.2.7 शून्य ऊर्जा 175
6.2.8 ब्रह्माण्ड में जीवन 176
6.3 जैन लोक और वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड का तुलनात्मक अध्ययन 182
6.3.1 जम्बूद्वीप और मध्यलोक 183
6.3.2 लोक का आकार 187

7. जीव की उत्पत्ति और विकास **193–248**

7.1	जीव की उत्पत्ति	195
7.1.1	अजीव से जीव की उत्पत्ति	195
7.1.2	पानस्परमिया सिद्धान्त	198
7.1.3	डी.एन.ए. डिजाईन और जीव की उत्पत्ति	199
7.1.4	जैन दर्शन में जीवन	201
7.2	जीव विकास	201
7.2.1	जीव विकास : रहस्यमयी प्रकृति	203
7.2.2	डारविन का विकासवाद और मानवीय सभ्यता	207
7.2.3	रशियन डी.एन.ए. खोज	211
7.2.4	होलोग्राफिक विश्व	214
7.3	जैन दर्शन में चेतना का विकास	216
7.4.	नाम कर्म	218
7.5	गुण स्थान	222
7.6	आत्म विकास	227
7.7	जीव विकास और मस्तिष्क विकास	231
7.8	जीव विकास : एक समीक्षा	237
7.8.1	जन्म और गर्भ काल	241
7.8.2	जीव का ऊर्ध्वारोहण	244

शब्द कोष 249

शब्द अनुक्रमणिका 253

1. द्रव्य की अवधारणा

1.1 जैन दर्शन में द्रव्य
1.2 द्रव्य के लक्षण
1.3 षट्द्रव्य
1.4 द्रव्य के गुण
    1.4.1 सामान्य गुण
    1.4.2 विशेष गुण
1.5 पर्याय
1.6 द्रव्यों के उत्तर गुण

1. द्रव्य की अवधारणा

1.1 जैन दर्शन में द्रव्य

जैन दर्शन में सृष्टि के मौलिक पदार्थों के अर्थ में 'द्रव्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। वह तत्व जो स्वभाव का त्याग किए बिना उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त हो, जैन दर्शन का द्रव्य है। हमारे सामने जड़ चेतन जो कुछ है, वह सब कुछ द्रव्य है। छः द्रव्यों से परिपूर्ण इस सृष्टि को जैन दर्शन में लोक कहा जाता है। जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि अनादि अनंत है, उसमें न तो नया उत्पाद है और न प्राप्त सत् का विनाश है वह मात्र पर्याय परिवर्तन करता रहता है। दार्शनिक क्षेत्र में द्रव्य उसे ही कहते हैं जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में प्रतिपल परिणमन तो करें, परंतु अपने मौलिक स्वभाव की अपेक्षा नित्य रहे। सत् और द्रव्य एक ही है, अथवा यह भी कह सकते हैं- जो सत् है, वही द्रव्य है। द्रव्य और सत्ता, इनमें मात्र शब्द भेद हैं, अर्थभेद नहीं। न तो असत् से सत् उत्पन्न होते है और न सत् का कभी विनाश होता है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इस त्रयात्मक स्थिति का नाम सत् है। जो उत्पाद व्यय युक्त नहीं है वे सत् नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार वस्तु परिणामी नित्य है। प्रत्येक तत्व नित्य और अनित्य इन दोनों धर्मों की स्वाभाविक समन्विति है। तत्व उत्पाद, व्यय और धौव्य इन धर्मों का समवाय है। जगत के समस्त पदार्थ नित्यानित्य हैं। अतः चेतन और जड़, मूर्त और अमूर्त, सूक्ष्म और स्थूल सभी उत्पत्ति, व्यय एवं स्थिति रूप हैं।

1.2 द्रव्य के लक्षण

द्रव्य के तीन लक्षण हैं। जो सत् लक्षण वाला हो, जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त हो एवं जो गुण पर्यायों का आश्रय हो, वही द्रव्य है। गुण और पर्याय के साथ सत्, जिसे द्रव्य कहते हैं, का तन्मयत्व है। द्रव्य, गुण और पर्याय ये तीनों एक साथ पाये जाते हैं, इन तीनों का सहअस्तित्व है। तीनों मे से एक भी विभक्त नहीं होता। द्रव्य में भेद करने वाले को गुण (अन्वयी) और द्रव्य के विकार को पर्याय कहते हैं। द्रव्य, गुण और पर्याय ही वस्तु है। द्रव्य के बिना पर्याय नहीं ओर पर्याय के बिना द्रव्य नहीं तथा गुण के बिना द्रव्य नहीं और द्रव्य के बिना गुण नहीं।

द्रव्य मे गुण सहवर्ती एवं पर्याय क्रमवर्ती कहलाते हैं। सहभावी धर्म तत्व की स्थिति और क्रम भावी धर्म तत्व की गतिशीलता के सूचक होते हैं। पर्याय परिणाम प्रतिपल होता रहता है। द्रव्य की उत्पादव्ययात्मक जो पर्यायें है, वे क्रमभावी हैं। उत्पाद नाश के बिना नहीं और नाश उत्पत्ति के बिना नहीं होता। जब तक किसी एक पर्याय का नाश नहीं, दूसरे पर्याय की उत्पत्ति संभव नहीं और जब तक किसी

अपर पर्याय की उत्पत्ति नहीं, पूर्व पर्याय का नाश भी संभव नहीं। एक समय में एक द्रव्य में अनेक उत्पाद और विनाश होते हैं।

1.3 षट्द्रव्य

जैन दर्शन ने द्रव्य छह माने हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय, जीवास्तिकाय एवं काल। ये सभी द्रव्य परस्पर मिश्रित रहकर एक दूसरे को अवकाश देते हैं, परस्पर मिल जाते हैं फिर भी अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते। अस्तिकाय का सिद्धांत जैन दर्शन का सर्वथा मौलिक सिद्धान्त है। यह अस्तित्व का वाचक है। पांच अस्तिकाय निरपेक्ष अस्तित्व हैं। जैसे पुद्गल के परमाणु होते हैं, वैसे ही चार अस्तिकाय के भी परमाणु होते हैं। उनके परमाणु पृथक्-पृथक् नहीं होते, वे सदा अपृथक् रहते हैं, इसलिए वे प्रदेश कहलाते हैं। अस्ति शब्द के दो अर्थ हैं - त्रैकालिक अस्तित्व और प्रदेश। काय का अर्थ है राशि/समूह। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये पांच अस्तिकाय हैं। अस्तिकाय का अर्थ है बहुप्रदेशी। जिनके टुकड़े न हो सके ऐसे अविभागी प्रदेशों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं। काल अस्तिकाय नहीं है। लोक में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय एक-एक स्कंध है, जीव अनंत है और पुद्गल अनंत स्कंध है। धर्म, अधर्म और आकाश के असंख्य प्रदेश हैं, एक जीव के असंख्य प्रदेश हैं और पुद्गल के अनंतानंत परमाणु हैं। इनका विशेष वर्णन नीचे दिया गया है।

1.4 द्रव्य के गुण

गुण वे हैं जो एक मात्र द्रव्य के आश्रित रहते हैं। गुण स्वयं निर्गुण है। गुण द्रव्य का व्यवच्छेदक धर्म है। वह अन्य द्रव्यों में पृथक सत्ता स्थापित करता है। प्रत्येक पदार्थ में अनन्त गुण होते हैं। पदार्थों में अनन्त गुण (धर्म) माने बिना वस्तु की सिद्धी नहीं होती।

गुण दो प्रकार के हैं। साधारण गुण और विशेष गुण। साधारण गुणों से द्रव्य का अस्तित्व एवं विशेष गुणों से उसका वैशिष्ट्य ज्ञात होता है। द्रव्यों के सामान्य गुण दस हैं और विशेष गुण सोलह हैं। जो गुण एक से अधिक द्रव्य में पाये जाते है वे सामान्य गुण है। विशेष गुण किसी एक द्रव्य में पाया जाता है।

1.4.1 सामान्य गुण

1) अस्तित्व - जिस गुण के कारण द्रव्य का कभी विनाश न हो।
2) वस्तुत्व - जिस गुण के कारण द्रव्य कोई न कोई अर्थ क्रिया करता रहे।

3) द्रव्यत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य सदा एक सरीखा न रहकर नवीन-नवीन पर्यायों को धारण करता है।

4) प्रमेयत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य ज्ञान द्वारा जाना जा सके।

5) प्रदेशत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य क्षेत्रता को प्राप्त हो अर्थात् जिस गुण के कारण द्रव्य में कुछ न कुछ आकार हो।

6) अगुरूलघुत्व – जिस गुण के कारण द्रव्य का कोई आकार बना रहे, द्रव्य के अनंत गुण बिखर कर अलग न हो जाएं अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं होता, एक गुण दूसरे गुणरूप नही होता। अगुरुलघुत्व द्रव्य के स्वरूपप्रतिष्ठित का कारणभूत स्वभाव है।

7) चेतनत्व – अनुभूति का नाम चेतना है। जिस शक्ति के निमित्त से स्व-पर की अनुभूति होती है वह चेतना गुण है।

8) अचेतनत्व – जड़त्व को अचेतन कहते हैं। चेतना का अभाव ही अचेतना है।

9) मूर्तत्व – रूपादि भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण भाव मूर्त्तत्व भाव है।

10) अमूर्तत्व – स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित भाव अमूर्तत्व भाव है।

उपरोक्त दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण पाये जाते हैं और दो-दो नहीं पाये जाते। जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व, अगुरूलघुत्व, चेतनत्व, और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं। पुद्गल मे अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व प्रदेशत्व, अगुरूलघुत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये आठ गुण पाये जाते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, अगुरूलघुत्व, अचेतनत्व, अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

1.4.2 विशेष गुण

1) ज्ञान-जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समस्त गुण और उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जानता है वह ज्ञान गुण है। यह गुण आत्मा का है ।

2) दर्शन-सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थों को अलग-अलग भेद रूप से ग्रहण नहीं करके, जो सामान्य ग्रहण रूप अवभासना होती है उसे दर्शन कहते हैं। यह गुण आत्मा में पाया जाता हैं। आत्मा की वृत्ति आलोकन या स्वसंवेदन है और वही दर्शन है।

3) सुख-जो स्वाभाविक भाव के आवरण के विनाश होने से आत्मिक शांतरस अथवा जो आनंद उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं। सुख आत्मा का गुण है।

4) वीर्य - जीव की शक्ति को वीर्य कहते हैं। आत्मा में अनंत वीर्य है।

5) स्पर्श - स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा जो जाना जाता है वह स्पर्श है।

6) रस - जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है।

7) गंध - जो सूंघा जाता है वह गंध है।

8) वर्ण - जो देखा जाता है वह वर्ण है।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पुद्गल के विशेष गुण हैं। स्पर्शादि के जो आठ भेद यहाँ बताए हैं वे मूल भेद हैं। प्रत्येक, स्पर्शादि के संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं।

9) गति हेतुत्व - जीव और पुद्गल को गमन में सहकारी होना, गति हेतुत्व है। यह धर्म द्रव्य का विशेष गुण है।

10) स्थिति हेतुत्व - जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी होना, स्थिति हेतुत्व है। यह अधर्म द्रव्य का विशेष गुण है।

11) अवगाहना हेतुत्व- समस्त द्रव्यों को अवकाश देना, अवगाहन हेतुत्व है। यह आकाश द्रव्य का का विशेष गुण है।

12) वर्तना हेतुत्व - समस्त द्रव्यों के वर्तन (परिणमन) में सहकारी होना वर्तना हेतुत्व है। यह काल द्रव्य का विशेष गुण है।

1.5 पर्याय

जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित है, वह पर्याय है। पूर्व आकार को त्याग कर उत्तर आकार को प्राप्त करना पर्याय रूप है। पर्याय जीव और अजीव दोनों के होती है अत: उसके दो भेद बनते हैं- जीव पर्याय और अजीव पर्याय। परिवर्तन स्थूल भी होता है और सूक्ष्म भी, तदर्थ पर्याय के भी दो भेद बनते हैं - व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्याय। व्यंजन पयार्य स्थूल और कालांतर स्थायी है जबकि अर्थ पर्याय सूक्ष्म और वर्तमानवर्ती है। एक अर्थ पर्याय एक समय तक ही रहती है। पर्याय के और भी दो भेद हैं - स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय। परिवर्तन स्वभाव से भी होता है तथा विभाव से भी। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों में अर्थ पर्याय ही होती है। जीव और पुद्गल में दोनों अर्थ पर्यायें और व्यंजन पर्यायें होती हैं। स्वभाव पर्याय सभी द्रव्यों में होती है किन्तु विभाव पर्याय जीव और पुद्गल द्रव्य में ही होती है।

प्रदेशत्व गुण के विकार को व्यंजन पर्याय कहते हैं और अन्य शेष गुणों के विकार को अर्थ पर्याय कहते हैं। हम चर्म चक्षुओं से जो देखते हैं वह सब विभाव व्यंजन पर्याय है। नर, नारक आदि चौरासी लाख योनियां जीव द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भी जीव की विभाव व्यंजन पर्याय हैं। मति आदि ज्ञान विभाव गुण व्यंजन पर्याय हैं। अंत शरीर से कुछ न्यून सिद्ध पर्याय स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। जीव का अनन्त चतुष्टय स्वरूप स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय है। शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खंड, अंधकार, छाया, धूप, चांदनी आदि पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय हैं।

द्वयणुक आदि स्कंध पुद्गल की विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। रस से रसान्तर और गंध से गंधान्तर विभाव गुण व्यंजन पर्याय है। पुद्गल का अविभागी परमाणु स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है और उस परमाणु में जो एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श गुण रहते हैं, वे पुद्गल की स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय हैं।

अगुरूलघु गुण के विकार को स्वभाव पर्याय कहते हैं। इसके बारह भेद हैं छः वृद्धि रूप और छः हानि रूप यानि षड्गुण हानि-वृद्धि। अनन्त भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि। इसी प्रकार छः हानि हैं। पर्याय के छह लक्षण है।

1) एकत्व-प्रत्येक स्कंध के परमाणु भिन्न-भिन्न होते हैं फिर भी उनके संघात में एकत्व की अनुभूति होती है, यह एकत्व लक्षण हैं।
2) पृथकत्व- 'यह इससे पृथक् है,' इस अनुभूति का हेतु पर्याय का पृथकत्व लक्षण है।
3) संख्या - एक, दो, तीन आदि की प्रतीति का हेतुभूत पर्याय।
4) संस्थान - आकार विशेष में संस्थित होना। यह वर्तुल है - इस बुद्धि का हेतुभूत पर्याय।
5) संयोग - दो वस्तुओं का संयोग। यह दो अंगुलियों का संयोग है इस प्रकार के व्यपदेश का हेतुभूत पर्याय।
6) विभाग- यह इससे विभक्त है - इस बुद्धि का हेतु भूत पर्याय।

प्रत्येक द्रव्य गुण और पर्याय युक्त है। आगम में गुण और पर्याय का अर्थभेद निरूपित नहीं है। उसमें सहभावी और क्रमभावी दोनों प्रकार के धर्मो को पर्याय कहा गया है। परवर्ती वाङ्मय में दोनों भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। गुण के लिए सहभावी और पर्याय के लिए क्रमभावी शब्द का प्रयोग हुआ है। उसी के

अनन्तर एक प्रश्न भी उपस्थित हुआ कि क्या गुण और पर्याय भिन्न-भिन्न हैं या एक ही अर्थ के वाचक हैं। इस संदर्भ में उत्तरकालीन दार्शनिकों के तीन मत प्राप्त होते हैं।

- अभेदग्राही - गुण और पर्याय दो भिन्न शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं।
- भेदग्राही - गुण और पर्याय दोनों पृथक हैं। गुण आंतरिक योग्यता है और पर्याय बाह्य परिवर्तन।
- भेदाभेद ग्राही - गुण और पर्याय में भिन्नता तथा एकार्थता दोनों हैं।

उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य की जैन अवधारणा विज्ञान से भी प्रमाणित है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन ने परिणमन के सिद्धान्त को सत्यापित करते हुए कहा कि ऊर्जा द्रव्य में और द्रव्य ऊर्जा में बदली जा सकती है। आइन्स्टीन से पूर्व वैज्ञानिक जगत में यह माना जाता था कि द्रव्य को ऊर्जा में या शक्ति को द्रव्य में नहीं बदला जा सकता। दोनों स्वतंत्र है। न्यूटन, गेलेलियो आदि ने ऊर्जा को भारहीन व पदार्थ से असंबद्ध माना था। किंतु आइन्स्टीन ने यह सिद्ध कर दिया कि पदार्थ और ऊर्जा मे कोई अन्तर नहीं हैं। द्रव्य और ऊर्जा भिन्न नहीं एक ही वस्तु के रूपान्तरण है। उत्पाद, व्यय और धौव्य का चक्र द्रव्य मात्र में प्राप्त होता है। स्थिति और परिणाम एक ही वस्तु के दो अंश हैं। द्रव्यगत सापेक्षता की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या जैन दर्शन की अपनी विशेषता है।

1.6 द्रव्यों के उत्तरगुण

छह मूल द्रव्यों के उत्तर गुण निम्नलिखित है।

1) परिणामी - अपरिणामी

अ) परिणामी - यह लोक परिणमनशील स्वभाव वाला है। भिन्न रूप धारण करना अर्थात् व्यंजन पर्याय को परिणमन कहा गया है। जीव और पुद्गल परिणामी हैं। धर्मादिक द्रव्य में जीव पुद्गल की तरह अशुद्ध परिणमन नहीं होता इसलिए वे अपरिणामी है। अर्थ पर्याय की अपेक्षा सर्व जीवादि द्रव्य विजातीय परिणमन नहीं करने से अपरिणामी हैं। परन्तु अपने सजातीय परिणमन की अपेक्षा से सर्वद्रव्य परिणामी हैं। परिणमन स्वभाव होने के कारण प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक समय में परिणमन करते रहते हैं। द्रव्यों का समूह ही लोक हैं। इसलिए द्रव्यों के परिणमन से लोक का परिणमन होता है।

ब) अपरिणामी - जिस प्रकार लोक एक दृष्टि से परिणमनशील है, अन्य एक दृष्टि से अपरिणमनशील भी है। अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं होने के कारण द्रव्य में रहने वाला अपरिणामी स्वभाव है।

2) जीव- अजीव

जीव अर्थात् आत्मा चेतन स्वरूप है। चेतन जीव को छोड़कर अन्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल मे नहीं है क्योंकि वे अचेतन हैं।

3) मूर्त-अमूर्त

पुद्गल द्रव्य स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण रहने के कारण मूर्तिक हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं जीव अमूर्तिक हैं। द्रव्यों मे यह मूर्त ओर अमूर्त का भेद स्वभाव से ही है, किसी निमित्त से किया हुआ नहीं है। जो इन्द्रियों से जाना जाय उसे मूर्त कहते हैं और जो इन्द्रियों के अगोचर हो उसे अमूर्त कहते हैं। कोई एक सूक्ष्म रूप स्कंध एवं परमाणु यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने में नहीं आते तथापि इन पुद्गलों में ऐसी शक्ति है कि यदि वे कालान्तर में स्थूलता को धारण करें तो इन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य होते हैं। मन के विषय मूर्तिक एवं अमूर्तिक दोनों हैं। मति, श्रुतज्ञान का साधन मन है और इनका विषय समस्त द्रव्यों की कुछ पर्याय हैं। शुद्ध पुद्गल परमाणु द्रव्य में रूप आदि चतुष्टय अतीन्द्रिय हैं।

4) सप्रदेश - अप्रदेश

धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल बहुप्रदेशी हैं। कालाणु और द्रव्य दृष्टि से पुद्गल परमाणु बहु प्रदेशी नहीं हैं। जो क्षेत्र के परिमाण को बताते हैं, उसे प्रदेश कहते हैं।

5) एक रूप - अनेक रूप

धर्म, अधर्म और आकाश एक रूप हैं और इनके प्रदेशों का कभी विघटन नहीं होता है। संसारी जीव, पुद्गल एवं काल अनेक रूप हैं।

6) क्षेत्र-अक्षेत्र

आकाश की अपेक्षा लोक क्षेत्र स्वरूप है। जीव, पुद्गल, धर्म, और अधर्म अक्षेत्र हैं।

7) क्रिया-अक्रिया

जीव और पुद्गल क्रियावान है, क्योंकि उनमें गति पायी जाती हैं। धर्म, अधर्म, आकश एंव काल अक्रिया अर्थात् क्रिया रहित हैं। इनकी अपेक्षा लोक भी क्रिया रहित है।

8) नित्य-अनित्य

धर्म, अधर्म, आकाश और निश्चय काल नित्य है। इनकी अपेक्षा लोक भी नित्य है। जीव और पुद्गल अनित्य है। व्यंजन पर्याय की अपेक्षा जीव पुद्गल अनित्य होने पर भी द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, इसलिए विश्व नित्यानित्यात्मक है।

9) कारण-अकारण

पुद्गल, धर्म, अधर्म एवं काल ये द्रव्य कारण हैं, क्योंकि जीवों के उपकारक हैं। इनकी अपेक्षा लोक भी कारण स्वरूप है। जीव अकारण है क्योकि वह स्वतंत्र है। जीव चेतन स्वरूप, अखण्ड, स्वरूप, अमूर्तिक होने के कारण संसार का कारण नहीं हो सकता है।

10) कर्ता-अकर्ता

जीव कर्ता है। जो कर्ता होता हैं, वही भोक्ता होता है। जीव स्वयं अपने संसार का कर्ता होने पर भी समस्त जीवों का एवं समस्त अजीवों का कर्ता नहीं है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं पुद्गल अकर्ता हैं।

11) सर्वगत - असर्वगत

आकाश सर्वगत हैं क्योंकि वह सर्वत्र हैं। धर्म, अधर्म, काल, जीव, पुद्गल सर्वगत नहीं है क्योंकि वे सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं। इसकी अपेक्षा लोक असर्वगत है। केवल ज्ञान की अपेक्षा केवली भगवान् सर्वगत होने पर भी द्रव्य की अपेक्षा सर्वगत नहीं हैं। स्वात्मा में स्थित होने पर भी केवलज्ञान के माध्यम से लोक अलोक को जानते हैं इसलिए सर्वगत हैं।

12) प्रवेश-अप्रवेश

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अपने द्रव्य स्वभाव छोड़कर अन्य के धर्म में प्रवेश नहीं करते हैं। एक आकाश प्रदेश में छहों द्रव्य परस्पर अवगाहित होकर रहते हैं इसलिए लोक इसकी अपेक्षा प्रवेश युक्त है। एक दूसरे को अवगाहन देकर परस्पर प्रवेश होकर के अथवा मिलकर रहने पर भी अपने-अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते हैं।

2. अमूर्त द्रव्य- धर्म, अधर्म, आकाश, काल

2.0 अमूर्त द्रव्य
2.1 धर्मास्तिकाय
2.2 अधर्मास्तिकाय
2.3 आकाशास्तिकाय
2.4 काल द्रव्य
2.5 आकाश और समय की वैज्ञानिक अवधारणा
2.5.1 विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त
2.5.2 सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त
2.6 वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

2.0 अमूर्त द्रव्य

जैन दर्शन में विश्व को षट्द्रव्यात्मक कहा है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त द्रव्य हैं और उनका वर्णन इस अध्याय में किया जा रहा है। पुद्गल और जीव मूर्त द्रव्य हैं और उनका वर्णन क्रमश: अध्याय 3 और अध्याय 4 में किया गया है।

2.1 धर्मास्तिकाय

पांच अस्तिकाय में प्रथम धर्मास्तिकाय द्रव्य है। यह गति सहायक द्रव्य है। धर्मास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है, काल की अपेक्षा वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा, अत: वह ध्रुव निश्चित, शाश्वत, अक्षय, अवस्थित और नित्य है। गुण की अपेक्षा गमन गुण है, गति में उदासीन सहायक है। यह स्वयं गमन करने वाले जीव और पुद्गल की गति में अपेक्षा कारण है, प्रेरणा करके इनको चलाता नहीं है। अगर चलते हैं तो चलने में सहकारी कारण बनता है। जैसे मछलियों को पानी चलने में सहयोग देता है या रेल को चलने में पटरी सहयोग देती है वैसे ही धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गल को उदासीन सहयोग करता है। धर्मास्तिकाय अस्पर्श, अरस, अगंध, अवर्ण, अशब्द, अगुरुलघु, लोक व्यापक, अखण्ड, विशाल और असंख्यात प्रदेशी है। यह अखंड स्कंध रूप है। इसके असंख्यात अविभाज्य सूक्ष्म अंश सिर्फ बुद्धि से कल्पित किए जा सकते हैं। वस्तुभूत स्कंध से अलग नहीं किए जा सकते।

गति शब्द क्रिया मात्र का द्योतक है। नाड़ी का चलना, हृदय का धड़कना, पलक का झपकना, प्रकाश की गति, मन की गति, तरंगों के कम्पन्न, सूक्ष्माति-सूक्ष्म स्पंदन आदि सभी गति की परिधि में आते हैं। धर्मास्तिकाय इन सभी में उपकारक है। यह गति उपग्राहक होते हुए भी स्वयं निष्क्रिय है, गति क्रिया शून्य है। धर्म द्रव्य गति का निमित्त नहीं, सहकारी कारण है।

यहाँ प्रश्न होता है, जब धर्मास्तिकाय निष्क्रिय है तो इसमें उत्पाद आदि कैसे होता है? इस संबंध में कहा गया है कि इसमें क्रियानिमित्तक उत्पाद नहीं है तथापि अन्य प्रकार से उत्पाद है। उत्पाद दो प्रकार का है - स्वनिमित्तक उत्पाद और पर प्रत्यय उत्पाद। प्रत्येक द्रव्य में आगम के अनुसार अनंत अगुरूलघुगुण स्वीकार किए हैं जिनका षट्स्थानपतित हानि और वृद्धि के द्वारा वर्तन होता रहता है, अत: इनका उत्पाद और व्यय स्वभाव से होता है। इसी प्रकार पर प्रत्यय का भी उत्पाद आदि होता रहता है। धर्म द्रव्य गति आदि का कारण है, इसकी गति स्थिति आदि में

क्षण-क्षण में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार धर्म द्रव्य में पर प्रत्यय की अपेक्षा उत्पाद व्यय है।

2.2 अधर्मास्तिकाय

लोक व्यवस्था के आधारभूत द्रव्यों में दूसरा द्रव्य है - अधर्मास्तिकाय। अधर्मास्तिकाय वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित है अर्थात् अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक प्रमाण है एवं जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक तत्व है। जैसे छाया यात्रियों को स्थिर होने में सहकारी है परन्तु वह गमन करते जीव और पुद्गल को स्थिर नहीं करती वैसे ही अधर्मास्तिकाय गमन करते जीव और पुद्गल को स्थिर नहीं करता परन्तु उनके स्थिर होने में उदासीन सहकारी कारण है। अधर्मास्तिकाय का अपना कोई स्वतंत्र कार्य नहीं है। स्थूल रूकना तो स्पष्ट दृष्टिगत होता है, परन्त सूक्ष्म स्थिति तो दृष्टिगत नहीं होती है। सूक्ष्म ठहरना पदार्थ के पीछे मुड़ने के समय होता है चलता-चलता पदार्थ यदि पीछे मुड़ना चाहे तो उसे मोड़ पर जाकर क्षणभर ठहरना पड़ेगा। यद्यपि रूकना दृष्टिगत नहीं हुआ पर होता अवश्य है। इस सूक्ष्म और स्थूल रूकने में जो सहायक तत्व है, उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं। न धर्मास्तिकाय गमन कराता है और न अधर्मास्तिकाय स्थिर करता है, जीव और पुद्गल स्वयं अपने परिणामों से गति और स्थिति करते हैं। जीव का खड़ा होना, बैठना, मन को एकाग्र करना, मौन करना, निस्पंद होना, आदि जितने भी स्थिर भाव है, वे अधर्मास्तिकाय के कारण हैं। जो स्थिर हैं उन सबका आलंबन स्थिति सहायक तत्व अधर्मास्तिकाय ही है।

अधर्मास्तिकाय भी निष्क्रिय द्रव्य है। यह असंख्यात प्रदेशी है पर उसके प्रदेश द्रव्य से विलग न होकर एक स्कंध रूप अखंड द्रव्य है। अधर्मास्तिकाय व धर्मास्तिकाय दोनों लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर अवस्थित है, व्याप्त हैं। समान परिमाण युक्त होते हुए भी पृथक् अस्तित्व वाले हैं। एक क्षेत्रावस्थिति होने पर भी अवगाहन शक्ति के योग से उसके प्रदेश परस्पर प्रविष्ट हो व्याघात को प्राप्त नहीं होते हैं।

धर्म और अधर्म की यौक्तिक अपेक्षा

धर्म और अधर्म को मानने के दो मुख्य यौक्तिक आधार हैं :-

1. गति-स्थिति निमित्तक द्रव्य
2. लोक-अलोक की विभाजक शक्ति

यह ज्ञात है कि प्रत्येक कार्य की निष्पति में कारणों की अपेक्षा रहती है। गति-स्थिति में उपादान कारण जीव और पुद्गल स्वयं है। जीव और पुद्गल पूरे लोक

में हैं और वे गति करते हैं। गति में निमित्त एक ऐसे कारण की अपेक्षा है जो गति-स्थिति में सहायक बन सके तथा संपूर्ण लोक में व्याप्त हो, स्वयं गतिशून्य हो। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ऐसे द्रव्य हैं जो समस्त लोक में व्याप्त है और जिनकी गतिक्रिया शून्य है। जिसमें जीव आदि षट्द्रव्य हैं वह लोक है, जहाँ केवल आकाश है वह अलोक है । अलोक में जीव और पुद्गल नहीं जा सकते क्योंकि वहाँ धर्म और अधर्म द्रव्य का अभाव है अत: धर्म और अधर्म द्रव्य लोक-अलोक के विभाजक बनते हैं। धर्म ओर अधर्म के अस्तित्व के कारण मुक्तात्मा लोक के अग्रभाग पर जाकर स्थिर हो जाती है क्योंकि गति सहायक की अलोक में अनुपस्थिति है।

2.3 आकाशास्तिकाय

अस्तिकाय में तीसरा अस्तिकाय द्रव्य आकाशास्तिकाय है। आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, अरूप, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा अखण्ड द्रव्य है। द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक तथा अलोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों में शाश्वत है। गुण की अपेक्षा अवगाहन गुण वाला है। हमारे चारों ओर जो भी खाली जगह दिखाई देती है, वही आकाश (Space) है। आकाश का उपकार है - धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल को अवगाह देना। धर्मास्तिकाय आदि को अवगाहन देने वाला लोकाकाश है, परंतु आकाश का अपना कोई आधार नहीं है। यह अनंत आकाश स्वप्रतिष्ठ है। धर्म और अधर्म तिलों में तेल की तरह सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त करके रहते हैं। अन्य द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं, परंतु आकाश अनंतप्रदेशी है। एक आकाश प्रदेश में इतनी अवगाहन शक्ति है कि वह आकाश प्रदेश एक धर्म द्रव्य का प्रदेश, एक अधर्म द्रव्य का प्रदेश, एक काल द्रव्य, संख्यात, असंख्यात एवं अनंत परमाणु को भी अवकाश दे सकता है।

आकाश दो प्रकार का है - लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश में जीव, जीव के देश और जीव के प्रदेश है। अजीव भी है, अजीव के देश और अजीव के प्रदेश भी है। अजीव भी रूपी और अरूपी दोनों है। रूपी के स्कंध, स्कंध देश, स्कंध प्रदेश और परमाणु पुद्गल इस प्रकार चार भेद है। अलोकाकाश में न जीव है न अजीव हैं। वह एक अजीव द्रव्य देश है, अगुरूलघु है तथा अनंत अगुरूलघु गुणों में संयुक्त है। अनंत भाग कम सर्वाकाशरूप है।

लोक सुप्रतिष्ठित संस्थान वाला है अर्थात् त्रिशरावसंपुटाकार है। एक शराव उल्टा रखकर उस पर एक शराव सीधा और फिर उस पर एक शराव उल्टा रखने पर

त्रिशराव संपुट की आकृति बनती है। यही लोक की आकृति है। यह आकार में नीचे से विस्तीर्ण, मध्य में संकरा और उपर विशाल एवं अंत में संकरा होता है। अधोलोक पर्यंक संस्थान वाला या तप्रसंस्थान वाला है। मध्यलोक झल्लरी, वरव्रज एवं उर्ध्व लोक मृदंग के आकार वाला बताया गया है। लोक खड़े -खड़े मंथन करते हुए ऐसे पुरूष के आकार वाला है जिसके पैर फैले हुए हैं, दोनों हाथ कटि भाग पर स्थित हैं। लोक पुरूष के दोनों पैरों के स्थान में अधोलोक है। उसके कटिस्थानीय ज्योतिश्चक्र है। उसकी कोहनी स्थानीय ब्रह्मलोक है और मस्तक का तिलक सिद्धशिला है। अलोक का संस्थान शुषिरगोलक है। वैसा गोला जो मध्य में पोलारयुक्त है। लोक की ऊंचाई चवदह राजु है। अधोलोक कुछ कम सात राजू विस्तीर्ण है। तिर्यक्लोक एक राजू, ब्रह्मलोक पाँच राजू और लोकांत के पास एक राजू विस्तीर्ण है। स्वयंभू रमण पूर्व से पश्चिम वेदिकांत तक एक राजू परिमाण है। लोक का आयतन 343 धनराजू माना गया है। (एक राजू का मान लगभग १.१५१०^{२१} मील आंका गया हैं।)

दिशाएं क्या हैं। जैन दर्शन की दृष्टि से दिशाएं स्वतंत्र द्रव्य नहीं हैं। वे आकाश विशेष ही हैं आकाश के जिस भाग से वस्तु का निरूपण या व्यपदेश किया जाता है, वह दिक् कहलाता है। अनुदिशा और दिशा की उत्पत्ति तिर्यक् लोक से होती है। दिशा का प्रारंभ आकाश के दो प्रदेशों से शुरू होता है। उनमें दो प्रदेशों की वृद्धि होते-होते वे असंख्य प्रदेशात्मक बन जाती हैं। अनुदिशा केवल एक देशात्मक होती है। ऊर्ध्व और अधोदिशा का प्रारंभ चार प्रदेशों से होता है। बाद में उनमें वृद्धि नहीं होती। जिस व्यक्ति के जिस और सूर्योदय होता है, वह उसके लिए पूर्व, जिस तरफ अस्त होता है, वह पश्चिम दिशा है। दाहिने हाथ की और दक्षिण, बांई ओर उत्तर दिशा होती है। इन्हें ताप दिशा कहा जाता है। निमित्त कथन आदि प्रयोजन के लिए दिशा का एक प्रकार और होता है। प्रज्ञापक जिस और मुँह लिए होता है उसे पूर्व, उसके पृष्ठ भाग मे पश्चिम, दोनों और दक्षिण तथा उत्तर दिशा होती है, इन्हें प्रज्ञापक दिशा कहते हैं। जैन दर्शन के अनुसार स्वतंत्र द्रव्य आकाश की दिशा एक काल्पनिक विभाग है। एक अपेक्षा से दिशाएं दस है-पूर्व, पूर्व-दक्षिण, दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, पश्चिम-उत्तर, उत्तर, उत्तर-पूर्व, उर्ध्व, अधस्।

कुछ भारतीय दर्शन आकाश द्रव्य की पहचान शब्द गुण से करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार मूर्त शब्द अमूर्त आकाश का गुण नहीं हो सकता। शब्द श्रोत्रेन्द्रिय (कान) द्वारा ग्राह्य है। श्रोत्रेन्द्रिय अमूर्त का ग्रहण करने में समर्थ नहीं है। शब्द की पौद्गलिकता सिद्ध है। अतएव उसे आकाश का गुण नहीं कहा जा सकता।

2.4 काल द्रव्य

काल चौथा अजीव द्रव्य है। प्रत्येक वस्तु का वर्णन - जैसे द्रव्य, क्षेत्र, भाव की अपेक्षा किया जा सकता है इसी प्रकार काल की अपेक्षा भी किया जाता है। काल में अचेतनत्व, अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व आदि साधारण गुण और वर्तना हेतुत्व असाधारण गुण पाए जाते हैं। व्यय और उत्पाद रूप पर्यायें भी काल में बराबर होती रहती हैं।

'काल' अस्तिकाय नहीं है। काल का केवल वर्तमान समय ही अस्तित्व में होता है। भूत समय तो व्यतीत हो चुका है- नष्ट हो चुका है और अनागत (भविष्य) अनुत्पन्न है। वर्तमान समय 'एक' होता है, इसलिए इसका तिर्यक् -प्रचय नहीं होता, अर्थात काल 'अस्तिकाय' नहीं है।

काल की वास्तविकता के विषय में जैनाचार्यों में परस्पर मतभेद रहा है। श्वेताम्बर-परम्परा में आचार्यों ने काल के दो भेद किये हैं: व्यवहारिक काल और नैश्चयिक काल। नैश्चयिक काल अन्य द्रव्यों के परिवर्तन का हेतु है। जीव , पुद्गल आदि द्रव्यों में प्रत्येक समय में जो परिणामन होता रहता है- पर्याय बदलती रहती है, वह नैश्चयिक काल के निमित से है। दूसरे शब्दों मे नैश्चयिक काल को जीव व अजीव की पर्याय कहा गया है।

जो जिस द्रव्य की पर्याय है, वह उस द्रव्य के अर्न्तगत ही है; अत: जीव की पर्याय जीव है और अजीव की पर्याय अजीव । इस प्रकार नैश्चयिक काल जीव भी है और अजीव भी है। काल का निरूपण जब निश्चय नय की दृष्टि से होता है , तब वह 'नैश्चयिक काल' कहलाता है; अत: वास्तविक काल 'नैश्चयिक काल' ही माना गया है। दूसरी और काल का जब व्यवहार नय की दृष्टि से निरूपण होता है, तब वह 'व्यवहारिक काल' कहलाता है। कुछ आचार्यो द्धारा व्यवहारिक काल को 'द्रव्य' कहा गया है। काल को व्यवहारिक दृष्टि से द्रव्य मानने का कारण यह है कि काल के कुछ एक उपकार अथवा लक्षण व्यवहार में अत्यन्त उपयोगी हैं और जो 'उपकारक' होता है द्रव्य कहा जा सकता है। जिन उपकारों के कारण काल 'द्रव्य' की कोटि में गिना जाता है, वे मुख्यतया पाँच हैं: वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ।

'वर्तना' का अर्थ है-वर्तमान रहना- किसी भी पदार्थ के वर्तमान रहने का अर्थ यही है कि उसका अस्तित्व कुछ 'अवधि' तक होता है। यह 'अवधि' शब्द का ही सूचक है। यद्यपि 'काल ' किसी भी द्रव्य को अस्तित्व की अवस्थिति प्रदान

नही करता , फिर भी जिस अवधि- तक पदार्थ रहता है, वह काल के उन सब क्षणों की सूचक हैं जिसमें पदार्थ का अस्तित्व बना रहता है। 'वर्तना' की तरह 'परिणमन' को भी 'काल' के बिना नही समझाया जा सकता । जब किसी पदार्थ में परिणमन होता है, तब स्वभाविक रूप के परिवर्तन की कालावधि का सूचन हमें होता है। 'क्रिया' में गति आदि का समावेश होता है। 'गति' का अर्थ है - आकाश प्रदेशों में क्रमशः स्थान -परिवर्तन करना। अतः किसी भी पदार्थ की गति में स्थान परिवर्तन का विचार उसमें लगने वाले काल के साथ किया जाता है। इसी प्रकार ,अन्य क्रियाओ में भी समय का व्यय होता है । परत्व और अपरत्व अर्थात पहले 'आना' और 'बाद में होना' अथवा 'पुराना' और 'नया', ये विचार भी काल के बिना नहीं समझाये जा सकते। इस प्रकार व्यवहार में वर्तना आदि को समझने के लिए 'काल' को द्रव्य माना गया है।

व्यवहारिक काल 'गणनात्मक' है। काल के सूक्ष्मतम अंश 'समय' से लेकर पुद्गल- परिवर्तन तक के अनेक मान व्यहारिक काल के ही भेद हैं। सूर्य -चन्द्र की गति के आधार से इनका माप किया जा सकता है। किन्तु जैन दर्शन के अनुसार विश्व के सब स्थानों में सूर्य -चन्द्र की गति नहीं होती है। एक मर्यादित क्षेत्र जहाँ ये पुद्गल पिण्ड अवस्थित हैं , को छोडकर शेष स्थानों में दिन ,रात्रि आदि काल-मान नहीं होते । इसलिए यह माना गया है कि व्यवहारिक काल केवल 'समय -क्षेत्र' तक सीमित है।

कुछ अन्य आचार्यों की मान्यता के अनुसार नैश्चयिक काल वास्तविक द्रव्य है, जबकि व्यवहारिक काल नैश्चयिक काल की पर्याय -रूप है। नैश्चयिक काल को द्रव्य मानने की अवधारणा सही प्रतीत होती है क्योंकि जीव और अजीव सर्व लोक में व्याप्त हैं और इस प्रकार इनकी पर्याय नैश्चयिक काल की अवस्थिति सर्वलोक में सिद्ध होती है। व्यवहारिक काल केवल 'समय क्षेत्र ' तक सीमित होने से व्यवहारिक काल को द्रव्य मानने पर काल द्रव्य की अवस्थिति सर्वलोक में सिद्ध नहीं होती।

दिगम्बर परम्परा में 'काल' के विषय में जो प्रतिपादन किया गया है वह उक्त मन्तव्य से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। दिगम्बर आचार्यों ने यद्यपि काल के दो भेद -नैश्चयिक और व्यवहारिक काल स्वीकार किए हैं, फिर भी इनकी परिभाषाएं भिन्न प्रकार से की हैं । सुप्रसिद्ध दिगम्बर आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवती (ई 10वीं शताब्दी) काल के विषय में लिखते हैं: '' जो द्रव्यों के परिवर्तन -रूप,

परिणाम-रूप देखा जाता है, वह तो व्यवहारिक काल हैं और 'वर्तना लक्षण' का धारक जो काल है , वह नैश्चयिक काल है। जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में रत्नों की राशि के समान परस्पर भिन्न होकर एक -एक स्थित हैं, वे कालाणु हैं और असंख्यात द्रव्य हैं। नैश्चयिक काल, जो कि कालाणुओं के रूप में है, वास्तविक दव्य है और संख्या की अपेक्षा से असंख्यात है, क्योकि लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं और प्रत्येक प्रदेश पर एक -एक कालाणु स्थित है।

ये कालाणु एक -दूसरे से स्वतंत्र हैं; इसलिए काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं बनता। कालाणु- रूप नैश्चयिक काल 'वर्तना' लक्षण के द्धारा जाना जाता है । प्रत्येक द्रव्य के समय -समय में होने वाले परिणमनों में उपादान कारण तो वे स्वयं ही होते है किन्तु इन परिणमनों में निमित रूप से सहायक कालाणु होते हैं और उनकी इस सहकारिता को 'वर्तना' कहते हैं। कुछ आचार्यों के अनुसार द्रव्यों में होने वाले पर्याय- रूप परिवर्तनों में भी प्रति समय जो द्रव्य के ध्रौव्य की अनुभूति होती है, वह वर्तना है। इस वर्तना लक्षण का धारक जो कालाणु द्रव्य है, वह नैश्चयिक काल है। कालाणु स्वयं भी उत्पति , विनाश और धौव्य- रूप त्रिपुटी से युक्त माना गया है। वर्तमान 'समय' की उत्पति होती है , अतीत समय का विनाश और इन दोनों के आधारभूत कालाणु ध्रुव रह जाते है। इस प्रकार जो द्रव्य की परिभाषा है, वह कालाणु के लिए लागू होती है और परिणामस्वरूप कालाणु वास्तविक द्रव्य माना गया है ।

द्रव्यों में नवीन और प्राचीन आदि पर्यायों का समय, घडी, मुहूर्त आदि रूप स्थिति को 'व्यवहारिक काल' की संज्ञा दी गई है। यह व्यवहारिक काल परिणाम, क्रिया, परत्व , अपरत्व आदि लक्षणों से जाना जाता है। व्यवहारिक काल आदि और अन्त सहित होता है , जबकि नैश्चयिक काल (कालाणु) शाश्वत है- आदि -अंत रहित है। व्यवहारिक काल स्वयं द्रव्य नहीं है।

2.5 आकाश और समय की वैज्ञानिक अवधारणा

बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक लोग आकाश को त्रि-आयामी और समय को निरपेक्ष तत्व मानते थे। आइन्स्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त के आधार पर वैज्ञानिक मिंकोवस्की ने आकाश और समय को संयुक्त कर चतु:आयामी आकाश-समय की धारणा प्रस्तुत की। उनके सिद्धान्त के अनुसार आकाश और समय दोनों ही ब्रह्माण्ड में विद्यमान पदार्थ और ऊर्जा से विकृत होकर मुड़ जाते हैं। आइन्स्टीन के सापेक्षता के दो सिद्धान्त हैं जिनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

2.5.1 विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त

विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त 1905 में प्रकाशित हुआ। इस सिद्धान्त से निम्नलिखित तथ्य प्रतिपादित होते हैं।

1. भौतिकी के नियम सभी संदर्भ फ्रेम के योग्य हैं।

2. जब केाई वस्तु (जिसका द्रव्यमान है) गति करती है तो उसकी लम्बाई गति की दिशा में संकुचित होती प्रतीत होती है। वस्तु के संकुचन को वही व्यक्ति अनुभव करता है जो वस्तु के संदर्भ फ्रेम से भिन्न संदर्भ फ्रेम में है। वस्तु की लम्बाई उसी के संदर्भ फ्रेम में नहीं बदलती है और वही बनी रहती है। यदि वस्तु की गति प्रकाश की गति के बराबर है तो गति की दिशा में इसकी लम्बाई शून्य भाषित होगी। इस नियम को 'लम्बाई सिंकुचन निमय' कहते हैं।

लम्बाई का सिकुंचन लोरेन्ट्ज ट्रांसफोर्म से जाना जा सकता है। इसके अनुसार 12 इंच लम्बा फुटबाल यदि आपके सामने प्रकाश की 60 प्रतिशत गति से गुजरता है तो वह आपको 9.6 इंच लम्बा दिखाई देगा।

संदर्भ फ्रेम के बदलने से समय में भी परिवर्तन होता है। इसे समय वृद्धि नियम कहते हैं। इस नियम के अनुसार एक गति करती हुई घड़ी उस व्यक्ति को धीरे चलती हुई अनुभव होगी जो घड़ी के साथ गति नहीं कर रहा है। इस नियम का आभास तभी होता है जब चल वस्तु की गति प्रकाश की गति के निकट है। यदि घड़ी (वस्तु) की गति प्रकाश की गति के बराबर हो तो समय स्थिर अनुभव होगा।

विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त ने द्रव्यमान और ऊर्जा के बीच एक संबंध स्थापित कर दिया। यह संबंध निम्नलिखित समीकरण में दिया गया है।

$$E = mc^2$$

यहाँ E ऊर्जा, m वस्तु का द्रव्यमान और c प्रकाश की गति है। इसके पूर्व द्रव्यमान और ऊर्जा पृथक माने जाते थे।

युगपत् घटना।

दो भिन्न संदर्भ फ्रेम में देखने पर कोई भी घटना दोनो फ्रेम में युगपत नहीं हो सकती। मान लीजिए पृथ्वी पर रहने वाले दो भाई राम और श्याम एक ही संदर्भ फ्रेम में रहते हैं। राम एक अंतरिक्ष यान में बैठा है और श्याम पृथ्वी पर खड़ा है। अब अंतरिक्ष यान उपर उठता है और 60 प्रतिशत प्रकाश की गति से दौड़ने लगता है। जब राम वापस पृथ्वी पर लोटा तो दोनों भाई यह स्वीकार करेंगे कि राम श्याम की तुलना में कम बूढ़ा हुआ। इस प्रकार राम के लिए समय की गति श्याम के समय से धीमी हो गई।

विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त लम्बाई संकुचन और समय वृद्धि की असाधारण अवधारणा प्रस्तुत करता है जो ब्रह्माण्ड संबंधी हमारी सामान्य दृष्टि से मेल नहीं खाती। फिर भी ऐसे कई प्रयोग हुए है जो इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। जैन शास्त्रों में समयवृद्धि के उदाहरण मिलते हैं। शास्त्रों में उल्लेख है कि एक शुद्ध परमाणु उत्कृष्ट गति से चलते हुए एक 'समय' में 14 राजू संपूर्ण लोक की यात्रा कर लेता है। परमाणु अनंत शक्ति सम्पन्न और संहति रहित माना गया है अत: उसकी उत्कृष्ट गति भी अनंत नहीं तो उत्कृष्ट संख्यात तो हो ही सकती है। अत: उपरोक्त का अर्थ यही है कि ऐसी तीव्र गति से एक परमाणु अपने संदर्भ फ्रेम में 14 राजू यात्रा में एक 'समय' लेता है परन्तु यह समयावधि अपेक्षाकृत स्थिर संदर्भ फ्रेम में संख्यात समय ही होगी। इसी प्रकार शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि एक शुद्ध आत्मा (मुक्त आत्मा) एक समय में मध्य लोक से 7 राजू यात्रा कर लोक के अग्र भाग में स्थित सिद्धशिला पर पहुँच जाता है। यहाँ भी एक 'समय' की गणना शुद्ध आत्मा के संदर्भ फ्रेम के लिए है, मध्य लोक के संदर्भ फ्रेम में यह समयावधि संख्यात समय ही होनी चाहिए।

विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त के बारे में निम्न गलत धारणाएं है -

1. जैसे-जैसे वस्तु की गति बढ़ती है समय की गति धीमी हो जाती है। (यह तभी होता है जब दो घड़ियाँ भिन्न संदर्भ फ्रेम में है और उनके द्वारा मापे गये समय की तुलना होती है।
2. जैसे-जैसे वस्तु की गति बढ़ती है उसकी लम्बाई कम हो जाती है। (इसके लिए भी भिन्न संदर्भ फ्रेम होने चाहिए)
3. विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त प्रवेग (Acceleration) की स्थिति में कार्य नहीं करता (यह सबसे भ्रामक विचार है।)
4. वस्तु का द्रव्यमान उसकी गति के साथ बढ़ता है (ऊर्जा में वृद्धि होती है, उसके स्थिर द्रव्यमान में नहीं)
5. किसी वस्तु की गति प्रकाश की गति से अधिक नहीं हो सकती। वास्तव में तथ्य यह है कि प्रकाश की गति को पार नहीं किया जा सकता। अर्थात् पहले धीमी गति से चलने वाली वस्तु की गति प्रकाश की गति से अधिक नहीं हो सकती और पहले से प्रकाश की गति से तेज चलने वाली वस्तु की गति प्रकाश की गति से कम नहीं हो सकती।

2.5.2 सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त

1915 में आइन्स्टीन ने सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त प्रतिपादित किया। यह उनका क्रांतिकारी विचार था कि गुरूत्वाकर्षण बल आकाश-समय के एक निश्चित परिवेश में ही कार्य नहीं करता है। वास्तव में गुरूत्वाकर्षण बल पदार्थ और ऊर्जा के कारण आकाश-समय आयाम में उत्पन्न विकृति के कारण है (चित्र - 2.1)। गुरूत्वाकर्षण बल और गति दोनों ही समय की गणना और आकाश के माप को प्रभावित करते हैं। सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त का मुख्य बिन्दु समानता का सिद्धान्त है जिसके अनुसार एक दिशा में आकर्षित करने वाला गुरूत्वाकर्षण बल विपरीत दिशा में काम करने वाले प्रवेग बल के बराबर है। जैसे, जब कार की गति बढ़ती है तो ऐसा अनुभव होता है कि कोई हमें सीट की तरफ धकेल रहा है। पृथ्वी की धरातल पर हम जो गुरूत्वाकर्षण बल अनुभव करते हैं वह इसलिए है कि धरती की रोक के कारण हमारे ऊपर निरन्तर प्रवेग बल का प्रभाव रहता है। इस सिद्धान्त की परिणति यह है कि किसी भी बड़े पिण्ड जैसे सूर्य का गुरूत्वाकर्षण बल अपने चारों और आकाश को विकृत कर देता है। अब हम आकाश और समय को ब्रह्माण्ड में होने वाली घटनाओं से निरपेक्ष नित्य नहीं मान सकते। बल्कि अब ये गतिमान तत्व है जो इनमें होने वाली घटनाओं से प्रभावित होते हैं और बदले में घटनाओं को भी प्रभावित करते हैं।

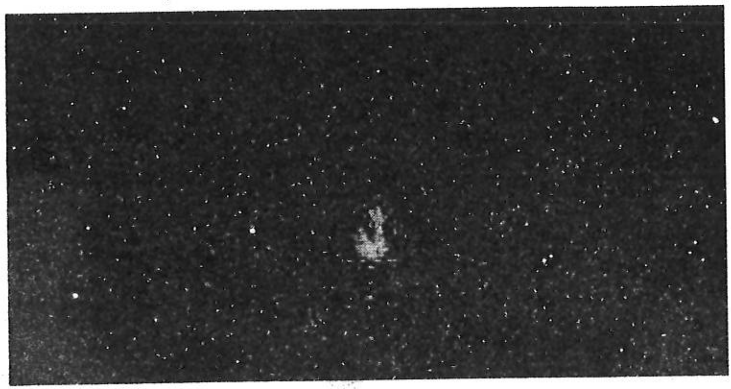

चित्र २.१ पुद्गल द्वारा स्पेस-समय क्षेत्र में विकृति। वक्र रेखाएं गुरुत्वाकर्षण दिखाती हैं

सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के बहुत पूर्वानुमान, जैसे तारों से आने वाले प्रकाश पथ का गुरूत्वाकर्षण बल से मुड़ जाना और बुध ग्रह के परिक्रमा पथ का थोड़ा सा खिसक जाना, प्रयोगों से प्रमाणित हो चुके है। इस सिद्धान्त के दो आश्चर्यजनक पूर्वानुमान हैं, अंतरिक्ष में श्याम विवर की अवस्थिति और पूरे ब्रम्हाण्ड पर गुरूत्वाकर्षण का प्रभाव, जिनकों पूर्ण रूप से सिद्ध करना कठिन है। सामान्य सिद्धान्त पल्सर युग्मों के अध्ययन में भी सहायक सिद्ध हुआ है।

आइन्स्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्त से पूर्व वैज्ञानिक जगत में 'आकाश और काल' संबंधी एक सर्वमान्य सिद्धातं था, जो आइजक न्यूटन द्वारा सर्वप्रथम दिया गया था। अपनी विश्व विख्यात पुस्तक 'प्रिंसिपिया' में 'आकाश' ओर 'काल' का विवेचन करते हुए न्यूटन ने लिखा है: ''निरपेक्ष आकाश, अपने स्वभाव और बाह्य किसी वस्तु की अपेक्षा के बिना , सदा एक -सा और स्थिर रहता है'' और काल के संबंध में ''निरपेक्ष, वास्तविक और गणितिक काल अपने आप और स्वभावत: किसी बाह्य वस्तु की अपेक्षा बिना सदा समान रहता है।'' न्यूटन की इन व्याख्याओं से स्पष्ट हो जाता है कि न्यूटन ने आकाश और काल को स्वतंत्र वस्तु - सापेक्ष वास्तविक तत्व माना है। इनका अस्तित्व न तो ज्ञाता पर निर्भर है और न अन्य पदाथों पर, जिनको वे आश्रय देते हैं अथवा संबंधित करते हैं। न्यूटन के अनुसार आकाश की रचना में सातव्य है; अर्थात् आकाश 'एक और अखण्ड' तत्व है। सर्वत्र एक रूप है, अर्थात भिन्न -भिन्न पदार्थों द्वारा अवगाहित होने पर भी इनके गुणों में परिवर्तन नही आता है।

काल के विषय में भी न्यूटन के सिद्धान्त को वैज्ञानिक जगत में मान्यता मिल गई । अन्य दार्शनिक सिद्धान्तो की अपेक्षा में न्यूटन के काल संबंधी निरूपण में यह विशेषता थी कि इसमें काल एक स्वतंत्र तत्व माना गया था । निरपेक्ष काल के निरूपण से न्यूटन ने आकाश और काल को एक दूसरे से स्वतंत्र रखा है; अत: पदार्थों की गति से 'काल' के प्रवाह पर कोई प्रभाव नहीं पडता।

आइन्स्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्त में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ न्यूटन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों में आकाश, काल और भौतिक पदार्थ, सभी एक दूसरे से स्वतंत्र थे, वहाँ आइन्स्टीन के सिद्धान्त में ये तीनों एक- दूसरे से संबंधित हो गए हैं। विश्व ''आकाश काल की संयुक्त चतुर्वैमितिक सततता' (Four dimensional continuity of space and time) बन गया है। भौतिक- पदार्थों की गति एवं स्थिति का सीधा प्रभाव आकाश- काल की सततता पर पड़ता है।

आइन्स्टीन के अभिमतानुसार ''जिस प्रकार रंग, आकार अथवा परिणाम हमारी चेतना से उत्पन्न विचार हैं उसी प्रकार आकाश और काल भी हमारी कल्पना के ही रूप हैं। जिन वस्तुओं को हम आकाश में देखते हैं, उनके क्रम के अतिरिक्त आकाश का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार जिन घटनाओं के द्वारा हम काल को मापते हैं, उन घटनाओं के 'क्रम' के अतिरिक्त काल का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है।'' 'आकाश' और 'काल' का स्वतंत्र वस्तु -सापेक्ष अस्तित्व न होने पर भी, आकाश काल की संयुक्त चतुर्वैमितिक सततता' वस्तु- सापेक्ष वास्तविकता का प्रतीक है, ऐसा माना गया है। जब इस सततता का 'आकाश' और 'काल' के रूप में पृथक्करण किया जाता है, तब ये भेद ज्ञाता-सापेक्ष होते हैं, किन्तु जब वे चतुर्वैमितिक सततता के रूप में जुडते हैं, उनके द्वारा हमें वस्तु-सापेक्ष विश्व का ज्ञान होता है ।

कुछ वैज्ञानिक इस निरूपण को स्वीकार नहीं करते । यद्यपि 'आकाश और काल की संयुक्त चतुर्वैमितिक सततता' के भौतिक पहलू के विषय में वे भिन्न मत नहीं रखते , फिर भी इन तत्वों का - आकाश और काल -का केवल ज्ञाता- सापेक्ष अस्तित्व ही है, यह अभिप्राय उनको मान्य नही है। हंस राइशनबाख ने अपनी पुस्तक (आकाश और काल का दर्शन) में 'सापेक्षता के सिद्धान्त' के भौतिक पक्ष की चर्चा के साथ-साथ दार्शनिक पक्ष की भी चर्चा की है। इसमें राइशनबाख ने आकाश और काल का वस्तु - सापेक्ष अस्तित्व गणित और तर्क-शास्त्र के आधार पर सिद्ध किया है। उनके अभिमतानुसार गणितिक आकाश के विविध भेद हो सकते हैं। इनमें से किसी एक को प्रेक्षण और प्रयोग के आधार पर वास्तविक आकाश माना जा सकता है। इस वास्तविक आकाश का 'वस्तु-सापेक्ष' अस्तित्व है। काल के सम्बध में प्रचलित गलत धारणाओं का भी राइशनबाख ने खण्डन किया है:'' काल को चतुर्थ विमिति के रूप में मानने से बहुत लोगों की मान्यता बनी है कि काल भी आकाश की तरह एक ही 'विमिति' है। किन्तु यह गलत है। चतुर्विमिति में आकाश और काल को जोड़नें का अर्थ मात्र यही है कि किसी भी घटना का निर्देश हम चार निर्देशांकों द्वारा कर सकते है- आकाश के तीन निर्देशांक और काल का चौथा निर्देशांक। काल का चतुर्थ विमिति के रूप में निरूपण करने से काल के विषय में हमारे विचार में कोई परिवर्तन नही आता है।'' राइशनबाख ने सापेक्षता के सिद्धान्त को मान्य रखते हुए यह निरूपण किया है कि 'आकाश' और 'काल ' का वास्तु- सापेक्ष स्वतंत्र अस्तित्व है।

आकाश और काल की वास्तविकता के पक्ष में जिन वैज्ञानिकों का अभिमत है, उनमें प्रो. हेनरी मार्गेनौ का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रो. मार्गेनौ के अनुसार : कोई भी पदार्थ सापेक्ष होने से , अवास्तविक नहीं बन जाता । 'निरपेक्ष आकाश ' की मान्यता को यद्यपि सापेक्षता का सिद्धान्त स्वीकार नहीं करता , फिर भी इससे 'आकाश' की वास्तविकता का अस्वीकार नही होता है।

'सापेक्षता के सिद्धान्त ' के दार्शनिक पक्ष में यह कहा जा सकता है कि आकाश और काल के स्वरूप के विषय में 'सापेक्षता के सिद्धान्त ' के आधार पर अब तक सर्वमान्य निरूपण नहीं हो सका है। आकाश और काल वस्तु -सापेक्ष हैं अथवा ज्ञाता- सापेक्ष, यह दुविधा अब तक भी वैज्ञानिकों के सामने खड़ी है।

2.6 वैज्ञानिक अवधारणा और जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

न्यूटन द्वारा किया गया आकाश का निरूपण जैन दर्शन के आकाशास्तिकाय के साथ अत्यधिक सदृशता रखता है। दोनों विचारधाराओं में आकाश को एक स्वतंत्र वस्तु - सापेक्ष वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया गया है तथा उसको अगतिशील , एक , अखण्ड और शून्यता की क्षमता वाला स्वीकार किया गया है ; फिर भी इसमें एक महत्वपूर्ण अन्तर रह जाता है । न्यूटनीय भौतिक विज्ञान के आकाश के साथ भौतिक ईथर का अविच्छिन्न संबंध जोड़ कर गति की समस्या सुलझाने का प्रयत्न किया, जबकि जैन दर्शन अभौतिक ईथर (धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य) के सिद्धान्त से गति-स्थिति की समस्या का हल प्रस्तुत करता है। यही कारण था कि न्यूटन के सिद्धांतों ने नही सुलझने वाली एक ऐसी समस्या उत्पन्न कर दी , जिसके फलस्वरूप सापेक्षता के सिद्धांत ने न्युटन के भौतिक ईथर को तिलांजली दे दी । जहाँ तक न्यूटन के आकाश की वास्तविकता - संबंधी निरूपण का प्रश्न है, उसकी तर्कसम्मतता अब भी अविच्छिन्न है । न्यूटन ने काल की जो परिभाषा दी है, उससे यह लगता है कि उन्होनें काल को वास्तविक तत्व या द्रव्य के रूप में न मान कर वास्तविक तथ्य के रूप में प्रतिपादित किया है। जैन दर्शन (श्वेताम्बर-परम्परा) भी व्यवहार - काल को वास्तविक तत्व के रूप में स्वीकार नही करता । न्यूटन ने निरपेक्ष गणितिक काल का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है; जैन दर्शन के निरपेक्ष कालमान- 'समय' आदि उसी प्रकार के सिद्धांत के द्योतक हैं। इस प्रकार काल के विषय में भी दोनों सिद्धांतो में बहुत साम्य है, फिर भी न्यूटन के सिद्धान्त ने प्रकाश गति की सीमितता को अस्वीकार करने के कारण आकाश और काल के पारस्परिक संबंध को स्वीकार नहीं किया है, जबकि जैन दर्शन में प्रकाश - गति की सीमितता से होने वाले आकाश और काल के पारस्परिक संबंध का विरोध नहीं है।

आइन्स्टीन द्वारा प्रदत मूल सापेक्षता के सिद्धान्त में कहा गया है: '' किसी भी प्रकार के प्रयोग द्वारा किसी भी गतिमान निकाय की निरपेक्ष गति का पता नहीं लगाया जा सकता।'' इस सिद्धान्त के आधार पर सामान्यतया यह तात्पर्य निकाला जाता है कि निरपेक्ष आकाश का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यदि यह तात्पर्य सही हो, तो जैन दर्शन का आकाशास्तिकाय का सिद्धान्त सापेक्षता के सिद्धातं के साथ ही मेल नही खाता । किन्तु उक्त तात्पर्य निर्विवादतया मान्य नहीं है। सर्वप्रथम तो यह जानना आवश्यक है कि सापेक्षता के सिद्धांत में कथित अशक्यता ज्ञाता- सापेक्ष असमर्थता के कारण है अथवा वस्तु-सापेक्ष असम्भवता के कारण है। यदि ज्ञाता-सापेक्ष असमर्थता के परिणाम रूप ही हम किसी भी गतिमान निकाय की निरपेक्ष गति को जानने में असमर्थ रहते हैं, तो निरपेक्ष गति के वास्तविक अस्तित्व का अन्त नही आ जाता । जैन दर्शन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि उक्त अशक्यता ज्ञाता- सापेक्ष असमर्थता के कारण ही है, न कि वस्तु-सापेक्ष असंभवता के कारण। वैज्ञानिक वर्नर हाइजनबर्ग ने उपरोक्त उलझन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है- ''ईथर नामक परिकल्पित द्रव्य , जो 19 वीं शताब्दी में मेक्सवेल के सिद्धांतो में महत्वपूर्ण स्थान रखता था अब सापेक्षता के सिद्धांत द्वारा नामशेष कर दिया गया है। इसी बात को कभी-कभी इस प्रकार भी कहा जाता है कि ' निरपेक्ष आकाश का सिद्धांत खंडित हो चुका है। किन्तु ऐसे कथन को बहुत सावधानी के साथ स्वीकार करना चाहिए।'' यद्यपि हाइजनबर्ग ने यह तो स्वीकार नहीं किया है कि आकाश नामक कोई स्वतंत्र अगतिशील वास्तविकता का कोई अस्तित्व है, फिर भी उन्होनें यह तो माना ही है कि भौतिक इथर के नामशेष हो जाने से 'आकाश' नामशेष नहीं हो गया है। अन्यत्र उन्होने एक तर्क सापेक्षता के सिद्धांत के आलोचकों के नाम पर उपस्थित किया है, जिसको यदि वे स्वीकार नहीं करते हैं, फिर भी यह तो मानते है कि तर्क को प्रायोगिक आधार पर गलत सिद्ध नही किया जा सकता; क्योंकि इसमें ऐसी कोई धारणा नहीं की गई , जो विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धांत से भिन्न हो। इसको प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं:'' सापेक्षता के सिद्धांत के आलोचकों का कहना है-' निरपेक्ष आकाश और निरपेक्ष काल का नास्तित्व विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धांत द्वारा किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होता है। उस सिद्धांत में तो यही बताया गया है कि किसी भी सामान्य प्रयोग में वास्तविक आकाश ओर वास्तविक काल प्रत्यक्षत: भाग नही लेते, किन्तु यदि प्राकृतिक नियमों के इस पहलू को ध्यान में लिया जाये तथा गतिमान निदेश- निकायों के लिए सही पतीत्यमान काल का

व्यवहार किया जाये, तो निरपेक्ष आकाश की धारणा के विरोध में कोई तर्क नही रह जाता । इससे आगे सापेक्षता के सिद्धांत के आलोचक यह भी कह सकते हैं - ''हम आशा कर सकते है कि भविष्य के नाप तोल निरपेक्ष आकाश की स्पष्ट परिभाषा देने में हमें समर्थ बना देगें ।'' और इस प्रकार हम सापेक्षता के सिद्धांत का खण्डन कर सकेंगे।'' इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि सापेक्षता के सिद्धांत के आधार पर निरपेक्ष आकाश के अस्तित्व केा स्वीकार न करना गलत सिद्ध हो सकता है।

अब 'चतुर्वैमितिक आकाश काल की सततता' की धारणा को लें । इसके विषय में आइन्स्टीन के विचारों को समझना कठिन है । यह स्पष्ट मत है कि आकाश- काल की चतुर्वैमितिक सततता से यह तात्पर्य निकालना कि काल आकाश की विमिति है, गलत होगा । जैन दर्शन का प्रतिपादन इस विषय में स्पष्ट है। पुदगलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल को भिन्न मानकर चलने पर सापेक्षता के सिद्धांत के साथ कोई विरोध प्रतीत नही होता । जैन दर्शन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पौद्गलिक प्रभावों से उत्पन्न होने वाले गुरूत्व क्षेत्र आदि भी पौद्गलिक होने चाहिए। अत: उसमें होने वाले परिवर्तन पुद्गल से ही संबंधित हैं: इसका आकाश के साथ कोई संबंध नहीं हैं।

बट्रेण्ड रसल द्वारा प्रतिपादित आकाश - संबंधी सिद्धांत वैज्ञानिकों की उलझन को और स्पष्ट कर देता है। एक तात्विक विवेचन के निष्कर्ष रूप में उन्होनें लिखा है -''इस तरह दो प्रकार के आकाश हो जाते हैं - एक तो ज्ञाता-सापेक्ष आकाश और दूसरा वस्तु- सापेक्ष आकाश । एक हमारे अनुभव द्धारा ज्ञात और दूसरा केवल अनुमानित या प्रकल्पित। किन्तु इस अपेक्षा से आकाश और विषय - ग्रहण के विभिन्न पहलुओं - जैसे रंग, शब्द आदि में कोई फर्क नहीं है। सब के सब अपने ज्ञाता- सापेक्ष रूप में कार्यकारणबाद के द्वारा प्रकल्पित होते है। वर्ण, शब्द और गंध के हमारे ज्ञान से आकाश के हमारे ज्ञान को किसी कारण से भिन्न नहीं माना जा सकता।'' रसल द्वारा प्रतिपादित इन दो प्रकार के आकाशों का अनुभव - ग्राह्य आकाश और धारणात्मक आकाश कहा जा सकता हैं । जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित आकाशास्तिकाय को रसल के शब्दों में धारणात्मक आकाश कहा जा सकता है, जबकि वैज्ञानिको का संबंध केवल अनुभव -ग्राह्य आकाश के साथ रहता है, किन्तु धारणात्मक आकाश का अस्तित्व स्वीकार किए बिना आश्रय - आश्रित संबंध की पहेली सुलझ नहीं सकती।

इस प्रकार उक्त विवेचन के निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित आकाशास्तिकाय का सिद्धांत न केवल सापेक्षता के सिद्धांत द्वारा अखण्डित है, अपितु तर्क सम्मत भी है।

जैन दर्शन का लोकाकाश अनुभव ग्राह्य आकाश अर्थात वैज्ञानिक 'स्पेस' है। आकाश एक अखण्ड द्रव्य है और लोक और अलोक रूप है, परन्तु 'स्पेस' केवल लोक रूप ही है और पुद्गल तथा जीव की उपस्थिति के कारण परिभाषित होती है। इसे अकाश की अर्थ विभाव पर्याय माना जा सकता है। स्पेस , समय और पुद्गल का परस्पर संबंध है और स्थायी सहअस्तित्व है।

3. पुद्गल द्रव्य

3.1 पुद्गलास्तिकाय

3.2 परमाणु

- 3.2.1 परमाणु में तारतम्य
- 3.2.2 परमाणु में गतिक्रिया

3.3 जीवों के पुद्गल परिवर्तन

3.4 पुद्गल की विभाव पर्यायें

- 3.4.1 शब्द
- 3.4.2 बंध
- 3.4.3 सौक्ष्म्य और स्थौल्य
- 3.4.4 संस्थान
- 3.4.5 भेद
- 3.4.6 अंधकार
- 3.4.7 छाया
- 3.4.8 आतप
- 3.4.9 उद्योत
- 3.4.10 प्रभा

3.5 परिणमन ओर विश्व संचालन

3.6 विज्ञान में मौलिक कण

- 3.6.1 लेपटॉन कण
- 3.6.2 बेरियोंन कण
- 3.6.3 मेसन कण

3.7 विज्ञान में बल

3.8 फील्ड थ्योरी

3.9 द्रव्यमान क्या है?

3.10 इंद्रिय संज्ञा

- 3.10.1 वर्ण
- 3.10.2 रस
- 3.10.3 गंध
- 3.10.4 श्रोत्र

3.0 पुद्गल द्रव्य

3.1 पुद्गलास्तिकाय

इस लोक में दो ही मुख्य पदार्थ हैं-जीव और पुद्गल। शेष चारों द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल सहयोग देने वाले उदासीन द्रव्य हैं। पुद्गल शब्द दों अवयवों वाला है -पुद्+गल। पुद् का अर्थ है मिलना, पूरा होना या जुड़ना। गल का अर्थ है गलना अथवा मिटना। अर्थात् जो भेद संघात से पूरण और गलन को प्राप्त हो वे पुद्गल हैं। यह पुद्गल पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध, आठ स्पर्शी, रूपी, अजीव, शास्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है। पुद्गल के सूक्ष्म से सूक्ष्म विभाग परमाणु से लेकर बड़े से बड़े पृथ्वी स्कंध तक में ये गुण वर्ण, रस, गंध आदि विद्यमान रहते हैं। किसी भी समय इनमें से एक का भी अभाव नहीं रहता। इनमें मुख्य-गौण का अंतर हो सकता है। पुद्गलों का प्रदेश समूह अथवा पुद्गल द्रव्यों का समूह पुद्गलास्तिकाय है। द्रव्य की अपेक्षा से पुद्गलास्तिकाय अनंत द्रव्य हैं। क्षेत्र की अपेक्षा वह लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा से वह ध्रुव, नियत, शाश्वत व नित्य है। सदा था, है और रहेगा। जिसमें स्पर्श-रस-गंध-वर्ण की अपेक्षा से तथा स्कंध पर्याय की अपेक्षा से पूरण और गलन हो वह पुद्गल है। परमाणुओं के विशेष गुण जो स्पर्श-रस-गंध-वर्ण हैं उनमें होने वाली षट्स्थानपतित वृद्धि वह पूरण है और षट्स्थानपतित हानि वह गलन है। परमाणुओं में स्कंधरूप पर्याय का आविर्भाव होना सो पूरण है और तिरोभाव होना सो गलन है। स्कंध अनेक परमाणुमय एक पर्याय है, इसलिए वह परमाणुओं से अनन्य है, और परमाणु तो पुद्गल है इसलिए स्कंध भी व्यवहार से पुद्गल है।

पांचों इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ, चाहे वे कुछ भी क्यों न हों, सर्व पुद्गल ही हैं। अगर कोई भी वस्तु एक भी इन्द्रिय का विषय होती है तब यह जानना चाहिए कि यह पुद्गल है, क्योंकि पौद्गलिक इन्द्रियों के द्वारा पुद्गल ही जाना जा सकता है, अपोद्गलिक नहीं।

वर्ण के पांच, गंध के दो, रस के पांच और स्पर्श के आठ भेद पाए जाते हैं। वर्ण के पांच प्रकार :- कृष्ण (Black), नील (Blue), लाल(Red), पीत (Yellow), और श्वेत (White)। गंध के दो प्रकार - सुगंध, दुर्गन्ध। रस के पांच प्रकार - तीखा (Pungent), कटु या कड़वा (Bitter), कसैला (Astringent), खट्टा या आम्ल (Sour), मीठा (Sweet)। स्पर्श के आठ प्रकार है, इनके चार वर्ग हैं।

शीत(Cold), व उष्ण (Hot),

स्निग्ध (Positive Charge or Smooth) व रूक्ष (Negative Charge or Rough)

मृदु (Soft), व कठोर या कर्कश (Hard),

भारी (Heavy), व हल्का (Light)

भगवती सूत्र में इन गुणों की विद्यमानता एवं अविद्यमानता के आधार पर द्रव्यों के चार भेद बताए गये हैं:-

1. वह द्रव्य जिसमें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं।
2. वह द्रव्य जिसमें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श होते हैं।
3. वह द्रव्य जिसमें पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श होते हैं।
4. वे द्रव्य जिनमें ये कोई भी नहीं होते - इनमें अरूपी द्रव्यों का समावेश होता है।

इसके आधार पर पुद्गल के तीन वर्गीकरण होते हैं।

द्विस्पर्शी परमाणु

चतु:स्पर्शी: सूक्ष्म स्कंध

अष्टस्पर्शी : बादर स्कंध

परमाणु का विस्तृत वर्णन नीचे दिया गया है। चतु: स्पर्शी स्कंध सूक्ष्म परिणति वाले होते हैं। वे अनंत प्रदेशी होने पर भी इंन्द्रियग्राह्य नहीं होते हैं। इनमें स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण ये चार स्पर्श पाए जाते हैं।

पुद्गल के चार भेद होते हैं अर्थात् पुद्गल के भेद संघात की क्रिया चार प्रकार से होती है।

1. स्कंध - अनेक परमाणुओं के पिण्ड को स्कंध कहते हैं।
2. स्कंध देश - स्कंध के किसी कल्पित भाग का स्कंध देश कहते हैं।
3. प्रदेश - स्कंध के निरंश अंश (अविभाज्य अंश) का प्रदेश कहते हैं।
4. परमाणु - स्कंध से पृथक हुए निरंश भाग का परमाणु कहते हैं।

इन चार भेदों मे मुख्य भेद तो स्कंध और परमाणु ही है। इन स्कंध और परमाणु की उत्पत्ति तीन प्रकार से होती है - भेद से, संघात से तथा भेद और संघात दोनों से।

भेद - अंतरंग और बहिरंग इन दोनों प्रकार के निमित्तों से संहत स्कंधो के विदारण को भेद कहते हैं।

संघात - भिन्न-भिन्न हुए पदार्थों के बंध होकर एक हो जाने को संघात कहते हैं।

भेद-संघात-दो परमाणुओं के स्कंध से दो प्रदेशवाला स्कंध उत्पन्न होता है। दो प्रदेश वाले स्कंध और परमाणु के संघात से या तीन परमाणुओं के संघात से तीन प्रदेशवाला स्कंध उत्पन्न होता है। इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनंतानंत परमाणुओं के संघात से उतने-उतने प्रदेशों वाले स्कंध उत्पन्न होते रहते हैं। इन्हीं संख्यात आदि परमाणु वाले स्कंधो के भेद से दो प्रदेश वाले स्कंध तक होते हैं। इस प्रकार एक समय में होने वाले भेद और संघात इन दोनों से दो प्रदेश वाले आदि स्कंध होते रहते हैं। तात्पर्य यह है कि जब अन्य स्कंध से भेद होता है और अन्य का संघात तब एक साथ भेद ओर संघात इन दोनेा से स्कंध की उत्पत्ति होती है। परमाणु की उत्पत्ति तो भेद से ही होती है।

भगवती सूत्र में द्विप्रदेशी आदि स्कंधों में पाए जाने वाले वर्ण आदि भंगों का विस्तृत निरूपण किया गया है। जैसे द्विप्रदेशी स्कंध-स्यात् एक वर्ण, स्यात दो वर्ण। स्यात् एक गंध, स्यात् दो गंध। स्यात् एक रस, स्यात् दो रस। स्यात् दो स्पर्श, स्यात् चार स्पर्शो वाला होता है। वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की विभिन्नता के आधार पर द्विप्रदेशी स्कंधों में भी प्रचुर वैविध्य रहता है।

द्रव्य की अपेक्षा स्कंध सप्रदेशी होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा स्कंध सप्रदेशी भी होते हैं और अप्रदेशी भी। जो एक आकाश प्रदेशावगाही होता है वह अप्रदेशी और जो दो आदि आकाश प्रदेशावगाही होता है वह सप्रदेशी है। काल की अपेक्षा से जो स्कंध एक समय की स्थिति वाला होता है, वह अप्रदेशी है जो इससे अधिक स्थितिवाला होता है वह सप्रदेशी है। भाव की अपेक्षा एक गुणवाला स्कंध अप्रदेशी और अधिक गुणवाला सप्रदेशी होता है।

आचार्य कुंदकुंद ने पुद्गल स्कंध के छह भेद बताये हैं।

1. अतिस्थूल (बादर-बादर)-वे पुद्गल स्कंध जो देखे भी जाते है, पकड़े भी जाते हैं। ये ठोस पदार्थ है। जो स्कंध टूट कर पुनः जुड़ नही सके वे अतिस्थूल है जैसे पर्वत, पृथ्वी, पत्थर आदि।
2. स्थूल (बादर)-जो स्कंध पृथक-पृथक होकर पुनः मिल सके, वे स्थूल कहलाते हैं, जैसे घी, जल, तेल, रस, वायु आदि।
3. स्थूल सूक्ष्म (बादर सूक्ष्म)-वे स्कंध जो स्थूल ज्ञात होने पर भी भेदे नहीं जा सकते या हाथ आदि से ग्रहण नहीं किए जा सकते, स्थूल सूक्ष्म है, जैसे प्रकाश, छाया, अंधकार, चांदनी आदि।
4. सूक्ष्म स्थूल (सूक्ष्म बादर)-जो चाक्षूस नहीं है, पर अन्य इंद्रियों से ग्राह्य हैं। जैसे शब्द, रस, गंध, स्पर्श के पुद्गल।

5. सूक्ष्म-वे सूक्ष्म पुद्गल जो इन्द्रियग्राह्य नहीं है जैसे कर्मवर्गणा आदि।*
6. अतिसूक्ष्म (सूक्ष्म-सूक्ष्म)-कर्मवर्गणा से भी नीचे के अतिसूक्ष्म स्कंध अथवा अति सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्कंध। जैसे-द्विप्रदेशी आदि स्कंध।

शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष ये चार स्पर्श मौलिक हैं। हल्का, भारी, मृदुता और कर्कशता आपेक्षिक हैं। हल्का, भारी आदि ये चार स्पर्श अनन्त प्रदेशी स्कंध की स्थूल परिणति के साथ उत्पन्न होते हैं। रूक्ष स्पर्श की बहुलता से हल्का स्पर्श उत्पन्न होता है। स्निग्ध स्पर्श की बहुलता से भारी स्पर्श उत्पन्न होता है। शीत और स्निग्ध स्पर्श की बहुलता से मृदु स्पर्श उत्पन्न होता है। उष्ण और रूक्ष स्पर्श की बहुलता से कर्कश स्पर्श उत्पन्न होता है।

भार का संबंध भारी ओर हल्का स्पर्श से है जो कि पुद्गल द्रव्य का ही गुण है। शेष सब द्रव्य भारहीन होते हैं। केवल हल्का या केवल भारी कोई द्रव्य नहीं होता है। चतुःस्पर्शी पुद्गल स्कंध तथा परमाणु अगुरूलघु है और भारहीन हैं। पुद्गल स्कंधों का जब स्थूल रूप में, परिणमन होता है तब उनमें भार नाम की अवस्था उत्पन्न होती है। अष्टस्पर्शी पुद्गल गुरूलघु होते हैं और भारयुक्त होते हैं।

पुद्गल स्कंध और परमाणु प्रवाह की अपेक्षा अनादि-अनंत हैं। किन्तु स्थिति की अपेक्षा सादि-सपर्यवसति भी हैं। परमाणु परमाणु के रूप में और स्कंध स्कंध के रूप में रहे तो कम से कम एक समय और अधिक से अधिक असंख्यात काल तक रह सकते हैं। उसके बाद तो उन्हें बदलना पड़ता है। पुद्गल की दो प्रकार की परिणतियाँ होती हैं-सूक्ष्म परिणति और स्थूल परिणति । सूक्ष्म सदा सूक्ष्म नहीं रहता, स्थूल सदा स्थूल नहीं रहता। असंख्यातकाल के पश्चात् सूक्ष्म स्थूल में और स्थूल सूक्ष्म में बदल जाता है। एक गुना (Degree) काला पुद्गल कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक असंख्यकाल तक रह सकता है। उसके पश्चात् उसे षट्स्थान पतित वृद्धि से अनंत गुना काला होना ही है। सभी वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के परिवर्तन का यह सार्वभौम नियम है। स्वाभाविक परिणमन प्रत्येक द्रव्य में प्रतिक्षण होता रहता है। व्यंजन पर्याय (स्थूल पर्याय) का परिवर्तन भी असंख्यकाल के पश्चात् निश्चित होता है। सोने के परमाणु असंख्यकाल के पश्चात् उस रूप में नहीं रहते वे दूसरे द्रव्य के प्रायोग्य बन जाते हैं।

---

* अध्याय 5 में बताया गया है कि कर्मवर्गणा तक की वर्गणाएं भारहीन हैं और 15वीं सान्तर-निरन्तर से उपर की वर्गणाएं द्रव्यमान सहित हैं। अतः सान्तर-निरन्तर वर्गणा और उपरिम वर्गणाओं को सूक्ष्म और कर्मवर्गणा और उसके नीचे की वर्गणाओं को अतिसूक्ष्म मानना युक्तिसंगत होगा।

केवल ज्ञान मूर्त-अमूर्त सबको जानता है अत: केवली परमाणु को जानते है। अकेवली में अवधिज्ञानी उसे जान सकते हैं। शेष उसे आगम या अनुमान प्रमाण से जानते हैं।

कोई एक सूक्ष्म परिणमन रूप स्कंध एवं परमाणु यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने में नहीं आते तथापि इन पुद्गलों में ऐसी शक्ति है कि यदि वे कालान्तर में स्थूलता को धारण करें तो इन्द्रिय के ग्रहण करने योग्य होते हैं। इस शक्ति की अपेक्षा उनको इन्द्रियग्राह्य ही कहा जाता है। मन अपने विचार से मूर्तिक-अमूर्तिक दोनों वस्तुओं को जानता है। मन जब पदार्थ को ग्रहण करता है तब पदार्थ में नहीं जाता किंतु आप ही संकल्प रूप होकर वस्तु को जानता है। मतिश्रुतज्ञान का साधन मन एवं इन्द्रियां हैं। मतिश्रुत ज्ञान का विषय समस्त द्रव्यों की कुछ पर्याय हैं। द्रव्य आगम पुद्गल स्वरूप होने पर भी भाव आगम अमूर्तिक है। अमूर्तिक भाव आगम के द्वारा एवं मन अपने विचारों में मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के पदार्थों को जानता है।

3.2 परमाणु

परमाणु स्वतंत्र इकाई है। वह पुद्गल का अविभागी अंश है। परमाणु द्रव्य अबद्ध- असमुदायरूप होते हैं। वह नित्य है, सूक्ष्म है तथा अनित्य द्रव्य कहलाता है। परमाणु अच्छेद्य, अभेद्य, अग्राह्य, अदाह्य और निर्विभागी है। परमाणु द्रव्य से एक संख्या वाला है, क्षेत्र की दृष्टि से एक प्रदेश अवगाढ़ है, काल की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्येय काल वाला है। भाव की अपेक्षा से एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श वाला होता है। किसी एक परमाणु के शीत-उष्ण स्पर्श में से एक स्पर्श और स्निग्ध-रूक्ष स्पर्श में से एक स्पर्श होता है, इस प्रकार परमाणु के दो स्पर्श होते हैं। वह अपने कार्य रूप द्विप्रदेशी यावत् अनंत प्रदेशी स्कंधों से जाना जाता है। वह अपने कार्यों का अंतिम कारण है। परिणामी है। स्वयं अशब्द होते हुए भी शब्द की उत्पत्ति का कारण है। वह जैसे स्कंध के भेद का कारण है वैसे ही स्कंध का कर्त्ता भी है। वह पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु - इन चार धातुओं का कारण है। जिसका आदि, अंत, मध्य वह स्वयं है तथा इंद्रियों से ग्राह्य नहीं होता वह परमाणु है।

अनुयोगद्वार में परमाणु के दो भेद बताए है -

1. सूक्ष्म परमाणु
2. व्यावहारिक परमाणु

परमाणु का पूर्वोक्त स्वरूप सूक्ष्म परमाणु का है। व्यवहारिक परमाणु के स्वरूप को विश्लेषित करते हुए कहा है-व्यावहारिक परमाणु अनंत परमाणुओं के समुदाय से बनता है। वस्तुतः वह स्वयं परमाणु पिंड है फिर भी साधारण दृष्टि से ग्राह्य नहीं होता।

परमाणु एक काल में एक रस, एक वर्ण, एक गंध और परस्पर बाधा नहीं करने वाले दो स्पर्शों को धारण करता है, अभेद्य है, शब्द का कारण है और स्वयं शब्द से रहित है यह परमाणु इतना सूक्ष्म है कि इसे मति-ज्ञानी, श्रुत ज्ञानी, एवं सामान्य अवधि ज्ञानी भी नहीं देख सकते। इसे भौतिक वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र से भी नहीं देख सकते हैं। इसको विशिष्ट अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी एवं केवलज्ञानी ही देख सकते हैं। ऐसे परमाणु प्रमाण आकाश प्रदेश को एक प्रदेश कहते हैं और यह प्रदेश क्षेत्र मापने की सबसे क्षुद्रतम इकाई है। इस प्रदेश के द्वारा ही आकाश का प्रदेश, धर्म द्रव्य का प्रदेश, अधर्म द्रव्य का प्रदेश, जीव द्रव्य का प्रदेश, कालद्रव्य का प्रदेश मापा जाता है। ऐसे सूक्ष्म आकाश प्रदेश में भी इतनी अवगाहन शक्ति है कि वह आकाश प्रदेश धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, एक काल द्रव्य, संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त परमाणु को भी अवकाश दे सकता है। इसके साथ-साथ अनेक जीवों के आत्म प्रदेशों को भी स्थान दे सकता है।

3.2.1 परमाणु में तारतम्य

परमाणु का स्वरूप समान होने पर भी पर्याय की दृष्टि से उनमें बहुत तारतम्य है। वर्ण, गंध आदि गुणों से परमाणु सर्वथा सदृश नहीं रहते। कोई भी कालांतर से किसी भी परमाणु से सदृश-विसदृश हो सकता है। आज एक परमाणु काला है, पीला है, नीला है, एक सुगंध स्वभाव वाला है, एक दुर्गंध स्वभाव वाला है, एक स्निग्ध स्वाभाव का है तो एक रूक्ष स्वभाव का है, एक तिक्त रस का तो एक कटु रस का, इसलिए परमाणुओं के नाना भेद हो जाते हैं। समान वर्ण, गंध वाले परमाणु में भी गुण तरतमता के कारण अनंत भेद होते हैं। जैसे विश्व में जितने श्याम वर्ण परमाणु हैं वे सब समान अंशों में काले नहीं है। एक परमाणु एक गुण काला हैं तो दूसरा दो गुण काला। इस प्रकार कोई सो गुण काला है तो कोई सहस्त्र गुण, कोई असंख्यात गुण है तो कोई अनंतगुण। हल्के रंग का गहरे रंग मे बदल जाना अथवा एक रंग का दूसरे रंग मे परिवर्तन हो जाना वर्ण परिणाम कहलाता है। इसी तरह गंध, रस, स्पर्श आदि की अपेक्षा परिणमन में कल्पनातीत तरतमता रहती है। इस परिणमनशीलता को षड्गुणहानि वृद्धि से समझाया जाता है।

अकेले परमाणु के सारे परिणमन वैस्रसिक ही होते हैं, प्रायोगिक नहीं।. जब तक परमाणु स्वतंत्र दशा में होता है, परिणमन केवल स्पर्श आदि गुणों की मात्रा में होता है, गुण का प्रकारान्तरण नहीं होता। जैसे-काला वर्ण अन्य वर्ण में नहीं बदलता, पर एक गुण काला दो गुण काला यावत् अनन्त गुण काला हो सकता है। स्कंध के साथ प्रतिक्रिया होने के पश्चात् उसके गुणों का प्रकारान्तरण भी संभव हो जाता है अर्थात् उसका वर्ण अन्य किसी वर्ण में बदल सकता है।

परमाणु में सिर्फ चार स्पर्श ही हो सकते हैं। बल्कि असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध तक में ये चार ही स्पर्श होते हैं। कोई-कोई अनन्तप्रदेशी स्कंध भी चार स्पर्श वाले होते हैं। इसी प्रकार एक प्रदेशावगाढ़ से लेकर संख्यातप्रदेशावगढ़ पुद्गल भी चार स्पर्शों वाले होते हैं।

3.2.2 परमाणु में गतिक्रिया

परमाणु जड़ होता हुआ भी गतिधर्मा है। परमाणु पुद्गल प्रयोग से नहीं, अपनी ही विश्रसा गति से गमन करते हैं। परमाणु कभी कंपन्न करता है, कभी विविध कंपन करता है यावत् परिणमन करता है। वह कभी चंचल होता है, कदाचित नहीं । उसमें न तो निरंतर कंपभाव होता है न निरंतर अकंपभाव। परमाणु की स्वाभाविक गति सरल रेखा में होती है। उसकी उत्कृष्ट गति एक समय में चवदह राजू की है। वह अपनी उत्कृष्ट गति से एक समय में लोक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चला जाता है। परमाणु की गति में वक्रता तब आती है जब अन्य पुद्गल का उसमें सहकार होता है। धर्मास्तिकाय उसकी गति का प्रेरक नहीं है। क्योंकि गति का उपादान परमाणु स्वयं हैं। उसकी गति जीव प्रेरित नहीं होती क्योंकि परमाणु का जीव द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। जीव और परमाणु की जितनी शीघ्र गति हो सकती है, उतनी अन्य स्थूल पुद्गलों-पवन, शब्द, प्रकाश, विद्युत, भाषा, मन आदि की गति नहीं हैं।

परमाणु पुद्गल अप्रतिघाती हैं। यह मोटी से मोटी लोह दीवार को सहज भाव से पार कर जाता है। पर्वत उसे नहीं रोकते। परमाणु की गति स्वत: भी होती है तथा अन्य पुद्गलों की प्रेरणा से भी। निष्क्रिय परमाणु कब गति करेगा, यह अनिश्चित है। पर वह असंख्यात समय के पश्चात् अवश्य गति या क्रिया प्रारंभ करेगा। सक्रिय परमाणु कब गति ओर क्रिया को बंद करेगा, यह अनियत है। एक समय से लेकर आवलिका के असंख्यातवें भाग में किसी समय वह गतिक्रिया बंद कर सकता हैं। पर आवलिका के असंख्यात भाग उपरांत वह निश्चित ही गति व क्रिया प्रारंभ करेगा।

परमाणु की गति के नियम

परमाणु की गति कुछ सन्दर्भों में नियमों से नियत है, तो कुछ सीमा तक अनियतता के सिद्धान्त का अनुसरण करती है। जैसे -

1. यदि बाहर का प्रभाव न हो, तो परमाणु की गति सदा अनुश्रेणी(अर्थात् सीधी रेखा में) होगी।
2. यदि बाह्य प्रभाव हो, तो परमाणु की दिशा और वेग में अन्तर आ सकता है।
3. जीव का परमाणु की गति पर कोई प्रभाव नहीं होता।
4. परमाणु का न्यूनतम वेग आकाश के एक प्रदेश पर एक समय में होगा और अधिकतम वेग लोक के एक अन्त से दूसरे अन्त तक एक समय में होगा।
5. अक्रिय अवस्था का अधिकतम काल 'असंख्यात समय' होगा तथा सक्रिय अवस्था का अधिकतम काल 'आवलिका के असंख्यातवें अंश जितना होगा।

दूसरी ओर परमाणु की अनियतता से सम्बद्ध कुछ नियम हैं -

1. स्थित परमाणु कब चलायमान होगा, यह अनियत है। इसका तात्पर्य हुआ कि परमाणु द्वारा कितने काल के पश्चात् ऊर्जा का प्रसार होगा यह नियत नहीं है। यह काल एक समय से लेकर असंख्यात समय तक हो सकता है। असंख्यात समय के पश्चात् तो वह निश्चित ही सक्रिय होगा।
2. सक्रिय परमाणु कितने काल तक सक्रिय रहेगा यह अनियत है। यह काल एक समय से लेकर 'आवलिका के असंख्यातवें अंश' जितना हो सकता है पर इस अधिकतम कालावधि के पश्चात् तो वह निश्चित ही स्थिर होगा।
3. परमाणु अपनी गति किस दिशा में प्रारंभ करेगा, यह अनियत है। वह किसी भी दिशा में गति कर सकता है।
4. अक्रिय (स्थिर) दशा वाला परमाणु किस प्रकार की क्रिया प्रारम्भ करेगा, यह अनियत है। वह केवल एजन (कम्पन्न) कर सकता है या घूर्णन (Rotation) या स्थानांतरण या युगपत् एकाधिक क्रियाएं भी कर सकता है।
5. सक्रिय होने पर, उसकी गति का वेग कितना होगा, यह भी अनियत है। वह न्यूनतम, मध्यम या अधिकतम वेग से गति करेगा - यह अनियत है।

परमाणु की प्रतिघाती और अप्रतिघाती गति -

1. परमाणु की गति सामान्यत अप्रतिघाती होती है अर्थात् विशेष अपवादों को छोड़कर परमाणु की गति का अवरोध न अन्य पुद्गल द्वारा हो सकता है और न जीव द्वारा।

2. जिस आकाश-प्रदेश पर अन्य पुद्गल है, वहाँ पर परमाणु की अवस्थिति अप्रतिघाती रूप से हो सकती है। अर्थात् परमाणु वहाँ अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रख सकता है।
3. परमाणु को अपनी गति को प्रारम्भ करने में या चालू रखने में उस आकाश-प्रदेश पर स्थित अन्य पुद्गलों द्वारा कोई प्रतिघात नहीं होता।

जिन अपवादों के कारण प्रतिघात हो सकता है वे हैं :-

1. उपकारभाव प्रतिघात। लोक की सीमा से परे गति-स्थिति माध्यम के अभाव से गति प्रतिहत होती है।
2. बन्धन-परिणाम-प्रतिघात। जब परमाणु किसी पुद्गल स्कंध के साथ बंधा हुआ है, तब उसकी गति प्रतिहत होती है।
3. अति वेग-प्रतिघात। अति तीव्र वेग वाले दो परमाणुओं के संघट्टन या टक्कर होने पर दोनों की गति में प्रतिघात पैदा हो जाता है।

कोई भी गतिशील परमाणु जब रूक्षता की चरम सीमा में पहुँच जाता है तब उसकी गति स्वत: कम हो जाती है। अर्थात् उच्च रूक्षता वाले परमाणु की गति निम्न रूक्षता वाले परमाणु की गति से कम होती है और उत्कृष्ट रूक्षता वाले परमाणु की गति निम्नतम होती है। स्नेह गुण गति में सहायक होता है और रूक्षगुण अवस्थिति में, स्निग्ध और रूक्ष गुण परमाणु में स्वत: बदलते रहते हैं। जब परमाणु जिस रूप में परिणत होता है तब वह तदनुरूप ही क्रिया करता है।

एक अपेक्षा से पुद्गल के दो प्रकार है - परमाणु पुद्गल और स्कंध। स्वतंत्र अस्तित्व स्कंध और परमाणु का ही होता है। क्योंकि स्कंध के जितने भी टुकड़े किये जाते हैं वे सब स्वतंत्र स्कंध हैं। स्कंध परमाणुओं से उत्पन्न है। वे दो परमाणुओं से लेकर अनंत परमाणुओं के संयोगज हैं। अनंत परमाणु स्कंध यावत् द्वयणुक स्कंध का विच्छेद संभव है। स्कंध के सब परमाणु स्वतंत्र कर दिए जाए तो स्कंध का नाश होगा पर उस स्कंध के परमाणु ज्यों के त्यों रहेंगे।

3.3 जीवों के पुद्गल परिवर्तन

पुद्गल द्रव्यों के साथ परमाणुओं का मिलन और भेद पुद्गल परिवर्तन है। जीवों के पुद्गल परिवर्तन सात प्रकार का है।

(1) औदारिक पुद्गल परिवर्तन (2) वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन (3) तैजस पुद्गल परिवर्तन (4) कार्माण पुद्गल परिवर्तन (5) मन: पुद्गल परिवतर्नन (6) वचन पुद्गल परिवर्तन (7) आनप्राण पुद्गल परिवर्तन

औदारिक शरीर में विद्यमान जीव के द्वारा जब लोकवर्ती औदारिक शरीर योग्य द्रव्यों का औदारिक शरीर के रूप में समग्रतया ग्रहण किया जाता है, तब उसे औदारिक पुद्गल परिवर्तन कहते हैं। इसी प्रकार वैक्रिय आदि पुद्गल परिवर्तन होते हैं। आशय यह है कि पूर्वोक्त पुद्गल परिवर्तन औदारिक आदि सात माध्यमों से होते है। प्रत्येक जीव या प्रत्येक नैरयिकादि जीव के अतीतकाल संबंधी औदारिक आदि पुद्गल परिवर्तन अनन्त है, क्योंकि अतीतकाल अनादि है और जीव भी अनादि है। भविष्यतकालिक पुद्गल परिवर्तन दुरभव्य या अभव्य जीवो के तो होते ही रहेंगे, किन्तु जो जीव नरकादि गति से निकलकर संख्यात या असंख्यात भवों में सिद्धि को प्राप्त करेगा, उसके पुद्गल परिवर्तन नहीं होगा। जिसका संसार परिभ्रमण अधिक होगा, वह एक या अनेक पुद्गल परिवर्तन करेगा, परन्तु वह एक पुद्गल परिवर्तन भी अनेक काल में पूरा होगा।

3.4 पुद्गल की विभाव पर्यायें

शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता आदि पुद्गल स्कंधो की दस विभाव पर्यायें या अवस्थायें हैं।

3.4.1 शब्द

जैन दर्शन के अनुसार शब्द पौद्गलिक, मूर्त और अनित्य है। शब्द का अर्थ है - पुद्गलों के संघात और विघात से होने वाला ध्वनि परिणाम। असंबंधित पुद्गलों का संबंध होने से और संबंधित पुद्गलों का संबंध विच्छेद होने से शब्द का जन्म होता है। शब्द के तीन भेद हैं - जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। जीव के द्वारा जो बोला जाता है, वह जीव शब्द है। यह आत्म प्रयत्न परिणाम है। वह भाषा या संकेतमय होता है। अजीव शब्द केवल अव्यक्त ध्वन्यात्मक होता है। मिश्र शब्द दोनों के संयोग से होता है।

शब्द के दो भेद प्रायोगिक और वैस्रसिक किए गये हैं। जो शब्द प्रयत्नजन्य है उसे प्रायोगिक कहते है। वह भाषात्मक और अभाषात्मक दोनों है। जो स्वभावजन्य है वह वैस्रसिक है। मेघ आदि से होने वाला शब्द ऐसा ही है। कोई भी प्राणी जब बोलने का प्रयत्न करता है तब वह सबसे पहले भाषा वर्गणा के परमाणु स्कंधो को ग्रहण करता है। उन्हें भाषा के रूप में परिणत करता है और उसके पश्चात् उनका विसर्जन करता है। इस विसर्जन को भाषा कहा जाता है। शब्द गतिशील है, इसलिए वक्ता के मुँह से निकलते ही लोक में फैलने लगता है। वक्ता का प्रयत्न तीव्र होता है तो शब्द के परमाणु स्कंध भिन्न होकर फैलते है और यदि उनका प्रयत्न मंद होता है तो शब्द के परमाणु

स्कंध अभिन्न होकर फैलते हैं। जो भिन्न होकर फैलते हैं वे सूक्ष्म हो जाते हैं और दूसरे अनंत परमाणु स्कंधों को प्रभावित कर लोकांत तक फैल जाते हैं। जो अभिन्न होकर फैलते हैं वे असंख्य योजन तक पहुँच कर नष्ट हो जाते हैं - भाषारूप से च्युत हो जाते हैं।

3.4.2 बंध

यह समूचा जगत परमाणुओं या प्रदेशों से निष्पन्न है। पुद्गल के परमाणु विश्लिष्ट हैं। शेष चारों अस्तिकायों के परमाणु श्लिष्ट है, परस्पर एक दूसरे से अविच्छिन्न हैं। वे अनादि विस्रसा बंध से बधे हुए हैं। वह बंध अनंतकालीन या सर्वकालीन है। सादि स्वाभाविक बंध केवल पुद्गलों का ही होता है। द्वयणुक आदि स्कंध बनते हैं वह सादि बंध है। स्कंध की उत्पत्ति परमाणु के संयोगमात्र से नहीं होती। पारस्परिक संयोग के अलावा जो प्रमुख अपेक्षा है वह स्निग्ध और रूक्ष परमाणुओं का परस्पर एकत्व है।

स्कंध निर्माण के कुछ विशेष नियम हैं -

- जघन्य गुण अंशवाले स्निग्ध और रूक्ष परमाणु मिलकर स्कंध नहीं बना सकते।
- अजघन्य (द्विगुण आदि) गुणों वाले स्निग्ध या रूक्ष परमाणुओं का उनसे सम या विषम द्विगुणादि स्निग्ध - रूक्ष परमाणुओं के साथ एकी भाव होता है, वह विसदृश बंध है।
- अजघन्य गुणवाले सदृश परमाणुओं का स्निग्ध का स्निग्ध के साथ व रूक्ष का रूक्ष के साथ द्वयधिक गुण होने पर बंध होता है।

इस प्रक्रिया में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परंपरा में कुछ मतभेद है।

		श्वेताम्बर परम्परा		दिगम्बर परम्परा	
	गुण	सदृश	विसदृश	सदृश	विसदृश
1.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
2.	जघन्य+एकाधिक	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
3.	जघन्य+द्वयधिक	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
4.	जघन्य+त्रयधिक	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
5.	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	हाँ	नहीं	नहीं
6.	जघन्येतर+एकाधिक जघन्येतर	नहीं	हाँ	नहीं	नहीं
7.	जघन्येतर+द्वयधिक जघन्येतर	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ

8.	जघन्यतर+त्रयधिकादि जघन्येतर	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ

सदृश से तात्पर्य स्निग्ध का स्निग्ध के साथ रूक्ष का रूक्ष के साथ बंध होना। विसदृश से तात्पर्य है स्निग्ध का रूक्ष के साथ बंध होना। बंध के समय सम और अधिक गुण, सम तथा हीन गुण के परिणमन कराने वाले होते हैं। बंधकाल में स्निग्ध परमाणु अपने समान गुणवाले रूक्ष परमाणुओं को अपने रूप में परिणत कर लेते हैं। एक गुण काला परमाणु अधिक गुणवाले शुक्ल परमाणु के योग से शुक्ल हो जाता है। एक गुण काला परमाणु एक गुण शुक्ल परमाणु के योग से कापोत वर्ण में परिणत हो जाता है।

3.4.3 सौक्ष्म्य और स्थौल्य

सूक्ष्मता और स्थूलता के अन्त्य और आपेक्षिक ये दो प्रमुख भेद हैं। परमाणु सूक्ष्म है और अचित महास्कंध स्थूल है। इसके मध्यवर्ती सौक्ष्म्य और स्थौल्य आपेक्षिक हैं। एक स्थूल वस्तु को किसी दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्म कहा जाता है। ये सापेक्ष वचन है। सर्वाधिक सूक्ष्म परमाणु है और सर्वाधिक स्थूल है संपूर्ण लोकव्यापी 'अचित महास्कंध' जो संपूर्ण लोकाकाश प्रदेशों को अवगाहित कर लेता है। केवली समुद्घात के पांचवे समय में आत्मा से छूटे हुए जो पुद्गल हैं वे संपूर्ण लोक में व्याप्त होते हैं, उनको अचित महास्कंध कहते हैं। सूक्ष्मता और स्थूलता के आधार पर पुद्गल स्कंधों के छह भागों का वर्णन पूर्व में किया गया है।

3.4.4 संस्थान

पुद्गल स्कंधों की आकृति को संस्थान कहते हैं। उसके दो भेद हैं - इत्थंस्थ और अनित्यंस्थ। जिस आकार की किसी के साथ तुलना की जा सके अथवा जिनका आकार नियत है वह इत्थंस्थ संस्थान है। अनित्यंस्थ संस्थान वह है जिसका कोई नियत आकार नहीं होता जैसे बादल आदि।

3.4.5 भेद

भेद का अर्थ है स्कंध रूप में परिणत पुद्गल पिंड का विश्लेष या विभाग। जैस उत्कर, चूर्ण, खंड, चूर्णिक, प्रतर और अनुचटन।

3.4.6 अंधकार

आचार्य पूज्यपाद के अनुसार जो प्रकाश का विरोधी है तथा वस्तुओं के दिखाई न देने में कारणभूत है, वह अंधकार है। अंधकार पुद्गल द्रव्य है क्योंकि इसमें गुण हैं। जो गुणवान होता है वह द्रव्य है जैसे आलोक आदि। वह प्रकाश की तरह भावात्मक द्रव्य है, अभावात्मक नहीं। जिस प्रकार प्रकाश का भास्कर रूप और

उष्ण स्पर्श है, उसी प्रकार अंधकार का कृष्ण रूप और शीत स्पर्श है। आचार्य नेमीचन्द्र ने इसे पुद्गल की पर्याय कहा है।

3.4.7 छाया

पुद्गलों का प्रतिबिम्ब रूप परिणमन छाया कहलाता है। प्रत्येक स्थूल पौद्गलिक पदार्थ चयउपचयात्मक एवं रश्मिवान होता है। उसमें से प्रति समय तदाकार रश्मियाँ निकलती रहती हैं। वे अनुकूल सामग्री मिलने पर उसी रूप में परिणत हो जाती हैं। इस प्रतिबिम्ब को छाया कहते हैं। छाया के दो प्रकार हैं - वर्णादि विकार रूप और प्रतिबिम्ब। दर्पण आदि स्वच्छ पदार्थों में ज्यों का त्यों आकार देखा जाता है उसे तद्वर्ण विकार छाया कहते हैं। अन्य द्रव्यों पर अस्पष्ट प्रतिबिम्ब मात्र पड़ना प्रतिबिम्ब रूप छाया है। अभास्कर वस्तु में पड़ने वाली छाया दिन में श्याम और रात को काली होती है। भाष्कर वस्तुओं में पड़ने वाली छाया वस्तु के वर्णानुरूप होती है।

3.4.8 आतप

सूर्य आदि की उष्ण किरणों को आतप कहते हैं। यह उष्ण किरणों का ताप है। यह स्वयं ठंडा होता है किन्तु इसकी प्रभा गर्म होती है। अग्नि आतप से भिन्न होती है। वह स्वयं गर्म होती है और इसकी प्रभा भी गर्म होती है।

3.4.9 उद्योत

तारक, ग्रह, चंद्र आदि की शीतल किरणों को उद्योत कहते हैं। चंद्रमा आदि से प्रति समय निकलता हुआ उद्योत पुद्गल प्रवाहात्मक होता है।

3.4.10 प्रभा

मणि, रत्न आदि से निसृत रश्मि प्रभा कहलाती है।

3.5 परिणमन और विश्व संचालन

परिणमन की अपेक्षा पुद्गल तीन प्रकार के होते हैं।

1. प्रयोग परिणत - ऐसे पुद्गल जो जीव द्वारा ग्रहण किए गये है वे प्रयोग परिणत पुद्गल कहलाते हैं। जैसे शरीर, इन्द्रियाँ, रक्त आदि।
2. मिश्र परिणत - ऐसे पुद्गल जो जीव द्वारा परिणत होकर पुनः मुक्त हो चुके हैं, उन्हें मिश्र परिणत कहा जाता है। जैसे - मृतशरीर, नख, केश आदि।
3. वैस्त्रसिक परिणत - ऐसे पुद्गल जिनमें जीव का सहाय नहीं और जो स्वयं परिणत हैं उन्हें विस्त्रसा परिणत कहा जाता है। जैसे - बादल, इन्द्रधनुष आदि।

सूक्ष्म परिवर्तन प्रत्येक द्रव्य में प्रतिक्षण होता है। स्थूल परिवर्तन जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में होता है। परिणमन के जगत में जैसा जीव है वैसा ही पुद्गल है

किन्तु इस विश्व में जितनी अभिव्यक्ति पुद्गल द्रव्य की है, उतनी किसी की नहीं। यह परिवर्तन विश्व संचालन का बहुत बड़ा रहस्य है। सृष्टि का आरंभ, विनाश और संचालन की व्यवस्था इसी स्वाभाविक परिवर्तन के सिद्धान्त पर आधारित है। स्वाभाविक परिवर्तन की दृष्टि से विश्व स्वयं संचालित है। वैभाविक परिवर्तन की दृष्टि से विश्व जीव और पुद्गल के संयोग-वियोग से प्रजनित विविध परिणतियों द्वारा संचालित है। जीव पुद्गल को प्रभावित करता है और पुद्गल जीव को अतः इनमें स्वाभाविक और वैभाविक दोनो प्रकार के परिवर्तन होते हैं। दृश्य जगत जो है, वह पौद्गलिक है किन्तु इसका निमित्त जीव है। जितने पुद्गल दृश्य हैं वे या तो जीव के शरीर रूप में परिणत हैं या तो हो चुके हैं। प्रयोग परिणत पुद्गल सबसे कम हैं, मिश्र परिणत पुद्गल अनन्तगुणें हैं और उनसे विस्रसा परिणत पुद्गल अनन्त-गुणे हैं।

* परमाणु पुद्गलों में कम्पन्न - अनन्त प्रदेशी स्कंध तक स्कंध के लिए कहा गया है कि यह कदाचित् कम्पित होता है, कदाचित् कम्पित नहीं होता। कदाचित उसका एकदेश कम्पित होता है। कदाचित एक देश कम्पित नहीं होता, कदाचित एकदेश कम्पित होता है और बहुत देश कम्पित नहीं होते, कदाचित् बहुतदेश कम्पित होते हैं और एक देश कम्पित नहीं होता, कदाचित बहुत देश कम्पित होते है और बहुत देश कम्पित नहीं होते हैं।
* परमाणु पुद्गल से लेकर असंख्य प्रदेशी स्कंध तक सूक्ष्म परिणाम वाला होने से उसका छेदन-भेदन नहीं हो पाता, किन्तु अनन्तप्रदेशी स्कंध बादर परिणाम वाला होने से वह कदाचित् छेदन-भेदन को प्राप्त हो जाता है, कदाचित् नहीं। इसी प्रकार की क्रिया अग्निकाय में प्रवेश करने तथा जल जाने आदि के फलस्वरूप होती है।
* जो एक द्रव्य दूसरे से स्पर्श को प्राप्त होता है वह सब द्रव्य स्पर्श है। यथा- परमाणु पुद्गल शेष पुद्गल द्रव्य के साथ स्पर्श को प्राप्त होता है। जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य का एक मेक संबंध होता है। सब द्रव्यों में दो प्रकार का संबंध दिखाई देता है - एक अनादि संबंध और दूसरा सादि संबंध। धर्म आदि चार द्रव्यों के साथ जीव और पुद्गल का तथा उनका परस्पर में अनादि संबंध है। तथा जीव जीव का, जीव पुद्गल का और पुद्गल पुद्गल का दोनों प्रकार का संबंध देखा जाता है। एक द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ जो एक देश स्पर्श होता है उसे देश स्पर्श कहते हैं, जैसे एक स्कंध का अन्य स्कंध के साथ बंध होने पर जो नया स्कंध बनता है वह देश स्पर्श उदाहरण है। सर्वस्पर्श में एक वस्तु का दूसरी

वस्तु के साथ पूरा स्पर्श लिया गया है। जब एक परमाणु का दूसरे परमाणु के साथ एक प्रदेशवगाही स्पर्श होता तब वह सर्वस्पर्श कहलाता है और जब दो प्रदेशवगाही स्पर्श होता है तब वह देश स्पर्श कहलाता है।

* कर्म स्पर्श - कर्मो का कर्मो के साथ जो स्पर्श होता है वह कर्म स्पर्श है। एक कर्म अपनी ही प्रकृति के कर्म से तथा अन्य प्रकृति के कर्म से स्पर्श करता है।

3.6 विज्ञान में मौलिक कण

पदार्थ अणुकुलों (Molecules) से बना है और अणुकुल अणुओं (Atoms) से बने हैं। एक अणु के केन्द्र में एक नाभिक होता है जिसमें धनात्मक आवेश वाले प्रोटोन और आवेशरहित न्यूट्रोन कण होते हैं। नाभिक के चारों ओर ऋणात्मक आवेश वाले इलेक्ट्रान कण परिक्रमा करते रहते हैं। चूंकि प्रकाश किरणों का तरंगदैर्ध्य अणु के आकार से बड़ा होता है, हम अणु को सामान्यतया नहीं देख सकते।

तालिका 3.1 मौलिक कण

गुण	इलेक्ट्रोन	प्रोटोन	न्यूट्रॉन
चिन्ह	e^-	p^+	n
द्रव्यमान(किलो)	9.109×10^{-31}	1.673×10^{-27}	1.675×10^{-27}
द्रव्यमान(MeV)	0.51	938.2	939.6
विद्युत आवेश	- 1	+1	0

1928 में वैज्ञानिक पॉल डिरेक ने घोषणा की कि हर पदार्थ कण का प्रतिकण होता है। इलेक्ट्रोन कण का प्रतिकण पॉजीट्रान है। जब इलेक्ट्रान और पॉजिट्रान संपर्क में आते हैं तो एक दूसरे को नष्ट कर देते है और समस्त पदार्थ द्रव्यमान आइन्स्टीन समीकरण के अनुसार ऊर्जा में बदल जाता है।

पदार्थ के स्थिर द्रव्यमान से संबंधित सम्पूर्ण ऊर्जा को सामान्यतया मुक्त नहीं किया जा सकता है और परंपरागत तरीकों से उस ऊर्जा का एक अंश ही प्राप्त हो सकता है। रासायनिक क्रियाओं में स्थिर द्रव्यमान ऊर्जा का एक अरबवां अंश ही मुक्त होता है, और नाभिकीय क्रियाओं में भी उस ऊर्जा का एक प्रतिशत भाग ही मुक्त होता है परन्तु कण और प्रतिकण के संयोग पर स्थिर द्रव्यमान की सौ प्रतिशत ऊर्जा मुक्त हो जाती है।

प्रोटोन और न्यूट्रोन के भी प्रतिकण होते हैं। इनका संयोग होने पर ये भी एक दूसरे को नष्ट कर देते है। वैज्ञानिक जानते हैं कि पदार्थ सामान्यतया कणों से ही बना होता

है (प्रतिकणों से नहीं)। प्रतिकणों से बने पदार्थ को प्रति पदार्थ कहते हैं। प्रति पदार्थ को प्रयोगशाला में बनाया जा सकता है परन्तु यह अत्यन्त अल्प समय तक ही उपलब्ध रहता है क्योंकि यह शीघ्र ही पदार्थ के सम्पर्क में आ जाता है और नष्ट हो जाता है।

अब यह ज्ञात है कि उपरोक्त छह प्रकार के मौलिक कणों के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के मौलिक कण हैं। इन्हें उच्च तकनीक वाले आधुनिक उपकरणों से बनाया गया है। इन मौलिक कणों की उनके गुणों के अनुसार कई श्रेणियों में विभाजित किया गया है। इन अधिकांश नये कणों के भी प्रतिकण होते हैं।

3.6.1 लेपटान कण

इलेक्ट्रान (e) सबसे सरल लेपटान कण है। इससे भारी दो लेपटान है जिन्हें म्यूआन (μ) और टाउ (τ) कहा जाता है। ये दोनो ही कण अस्थिर हैं और क्षरण को प्राप्त होकर स्थिर कणों में परिवर्तित हो जाते हैं। दोनों के प्रतिकण हैं। अंतरिक्ष किरणों के वातावरण में प्रवेश के समय हवा में अणु और अणुकुलों से टकराने पर म्यूऑन कण उत्पन्न होते हैं।

न्यूट्रीनों (ν)एक दूसरे प्रकार का लेपटान कण है। तीन प्रकार के न्यूट्रीनों होते हैं ये पूर्वोक्त तीन प्रकार के लेपटान (μ, τ) से संबंधित होते हैं। इन्हें इलेक्ट्रोन न्यूट्रीनों (ν_e) म्यूऑन न्यूट्रीनों (ν_μ)ओर टाउ न्यूट्रीनों (ν_τ) कहते हैं।

न्यूट्रीनों कण दूसरे प्रकार के पदार्थ कणों के साथ सामान्यतया कोई क्रिया नहीं करते। वे आसानी से पृथ्वी के पार चले जाते हैं। इन कणों में कोई विद्युत आवेश नहीं होता। हर न्यूट्रीनों का प्रतिकण होता है। न्यूट्रीनों का द्रव्यमान बहुत ही नगण्य होता है और एक न्यूट्रीनों कण आसानी से दूसरे न्यूट्रीनों कण में परिवर्तित हो सकता है। लेपटान कण अणु के नाभिक में कभी भी नहीं पाये जाते हैं। छह प्रकार के लेपटान कण तालिका 3.2 में दिए दिए गये हैं।

तालिका 3.2 लेपटान कण

लेपटॉन का नाम	चिन्ह	द्रव्यमान (MeV)
इलेक्ट्रोन	e	0.511
इलेक्ट्रोन न्यूट्रीनों	n_e	~0
म्यूऑन	m	106
म्यूऑन न्यूट्रीनों	n_m	~0
टाउ	t	1.777
टाऊ न्यूट्रीनों	n_t	~0

3.6.2 बेरियॉन कण

प्रोटोन और न्यूट्रोन ही सबसे सरल बेरियॉन कण हैं। दोनों का द्रव्यमान लगभग समान है परन्तु प्रोटोन में एक धन विद्युत आवेश होता है। इन दोनों कणों को न्यूक्लिऑन कहते हैं। दोनों कण अणु के नाभिक में पाये जाते हैं और वहां तीव्र नाभिकीय बल इन्हें परस्पर बांधे रखता है।

वैज्ञानिक अब मानते है कि बेरियॉन कण और छोटे कणों से बने होते है जिन्हें क्वार्क कहते है। क्वार्क कण छह प्रकार के होते हैं जिन्हें फ्लेवर कहते हैं। 1989 में वैज्ञानिकों ने कहा कि लेपटान और न्यूट्रीनों की तरह क्वार्क के भी तीन जोड़े ही हो सकते हैं। क्वार्क असाधारण कण हैं और इनमें आंशिक आवेश होता है। चूंकि क्वार्क प्रकाश किरणों के तरंग दैर्ध्य से बहुत छोटे होते हैं अत: सामान्य भाषा में इनका कोई रंग नहीं होता। छह प्रकार के क्वार्क तालिका-3.3 में दिखाये गये हैं।

तालिका 3.3-क्वार्क

क्वार्क का नाम	चिन्ह	आवेश	द्रव्यमान (MeV)
अप	u	+(2/3)	2-8
डाउन	d	-(1/3)	5-15
स्ट्रेन्जनेस	s	-(1/3)	100-300
चार्म	c	+(2/3)	1000-1600
बोटोम (या ब्यूटी)	b	-(1/3)	4100-4500
टॉप (या ट्रूथ)	t	+(2/3)	180,000

बेरियॉन कण तीन क्वार्क कणों से बने होते हैं। एक प्रोटोन कण दो अप क्वार्क और एक डाउन क्वार्क के संयोग से बनता है।

$$+\frac{2}{3}+\frac{2}{3}-\frac{1}{3}=1$$

एक न्यूट्रोन कण दो डाउन क्वार्क और एक अप क्वार्क के संयोग से बनता हैं।

$$-\frac{1}{3}-\frac{1}{3}+\frac{2}{3}=0$$

अधिकांश अणु नाभिकों में प्रोटोन और न्यूट्रोन स्थिर कण होते हैं। इनसे भिन्न दूसरे बेरियॉन कण भी होते है जिन्हें उच्च ऊर्जा प्रयोगों से बनाया जाता है परन्तु

ये अपेक्षाकृत कम स्थिर होते हैं। ये कण भी तीन क्वार्क कणों से बने होते हैं। ऐसे सैंकड़ो प्रकार के बेरियॉन कण प्रयोगशाला में बनाए गये हैं।

सभी छह: क्वार्क कणों के प्रतिकण होते हैं जिनका विद्युत आवेश कणों के विद्युत आवेश से विपरीत होता है। अप प्रति क्वार्क का विद्युत आवेश -(2/3) है और डाउन प्रति क्वार्क का विद्युत आवेश +(1/3) है। एक प्रति प्रोटोन कण दो अप प्रतिक्वार्क और एक डाउन प्रति क्वार्क से बनता है।

3.6.3 मेसन कण

एक अणु नाभिक में प्रोटोन और न्यूट्रोन वस्तुत: दो भिन्न प्रकार की अवस्थिति वाले कण नहीं हैं। वे बहुत तेजी से एक दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं। यह परिवर्तन एक पायन (π) नाम के कण के न्यूट्रॉन से प्रोटोन में और प्रोटोन से न्यूट्रोन में जाने से होता है। एक पायन कण सबसे सरल मेसन कण है।

मेसन कण क्वार्क कणों से बने होते हैं। मेसन कण में क्वार्क और प्रतिक्वार्क कण होते हैं। एक धन विद्युत आवेश वाला पायन कण (π^+) एक अप क्वार्क और एक डाउन प्रति क्वार्क से बना होता है। एक ऋण विद्युत आवेश वाला पायन (π^-) एक डाउन क्वार्क और एक अप प्रति क्वार्क से बनता है। केयॉन नामक कण अल्प जीवनकाल वाले मेसन कण होते हैं जो क्षरित होकर सरल स्थिर कणों में परिवर्तित हो जाते हैं। सामान्यतया कण और प्रतिकण की क्षरण विधि एक ही प्रकार की होती है।

पूर्वोक्त सभी कणों को फरमियॉन कहते है। हर कण में स्पिन नाम का एक गुण होता है। फरमियान कणों की स्पिन में आधी संख्या का गुणांक होता है जैसे 1/2, 3/2 आदि। स्पिन के इस गुण के कारण सभी फरमियॉन कण वैज्ञानिक पॉली के पृथकता सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कोई दो फरमीयोन कण एक ही अवस्था में नहीं रह सकते। इस सिद्धान्त के अनुसार एक अणु में इलेक्ट्रॉन कण भिन्न-भिन्न परिक्रमा पथ में स्थित होते हैं। इलेक्ट्रोन की इन्हीं परिक्रमा पथ के कारण अणुओं के रासायनिक गुण भिन्न-भिन्न होते हैं।

3.7. विज्ञान में बल

दो पदार्थ कणों के बीच में बल उनके बीच बल संवाहक कणों के आदान-प्रदान के कारण होता है। इन बल संवाहक कणों, बोसोन, को माया कण कहा जाता है क्योंकि अन्य पदार्थ कणों की तरह इनको प्रत्यक्ष नहीं पहचाना जा सकता। हमे उनकी उपस्थिति का पता, उनके प्रभाव से, उनक द्वारा उत्पन्न बल से लगता है। बल चार प्रकार के माने गये है परन्तु यह विभाजन मानव प्रदत्त ही है। ऐसा

विभाजन करने से हमें सिद्धान्तों की पुष्टि करने में सहायता मिलती है परन्तु यह विभाजन गहराई से विचार करने पर लुप्त हो सकता है। वैज्ञानिको का मानना है कि एक दिन इन चारो बलों को एक ही बल के अंग मानना सिद्ध हो जायगा।

प्रथम प्रकार का बल गुरूत्वाकर्षण बल है जो प्रत्येक पदार्थ द्वारा अनुभव किया जाता है। गुरूत्वाकर्षण बल चारों बलों में सबसे कमजोर है। इसके दो गुण है प्रथम यह लम्बी दूरी पर भी अनुभव किया जाता है और दूसरा यह हमेशा आकर्षण बल के रूप में होता है। इसलिए कमजोर होते हुए भी दो बड़े पिण्डों के बीच, जैसे सूर्य ओर पृथ्वी, इसका मान बहुत बड़ा हो जाता है। दूसरा बड़ा बल विद्युत चुम्बकीय बल है। यह बल विद्युत आवेशित कणों, जैसे इलेक्ट्रोन और क्वार्क के बीच ही होता है। यह गुरूत्वाकर्षण बल से बहुत बड़ा है, दो इलेक्ट्रोन के बीच विद्युत चुम्बकीय बल गुरूत्वाकर्षण बल से 10^{42} गुणा बड़ा होता है। दो असमान आवेशित कणों के बीच यह बल आकर्षण होता है और समान आवेशित कणों के बीच विकर्षण के रूप में होता है। पृथ्वी या सूर्य जैसे बड़े पिण्डों में समान और असमान आवेशित कणों की संख्या लगभग बराबर होती है और इसलिये उनके बीच विद्युत् आकर्षण और विकर्षण बल लगभग बराबर होते है, अत: उनके बीच विद्युत चुम्बकीय बल नगण्य होता है। परन्तु अणु के स्तर पर द्रव्य मान अत्यंत अल्प होने के कारण गुरूत्वाकर्षण बल नगण्य होता है और विद्युत चुम्बकीय बल ही प्रमुख होता है। इलेक्ट्रोन पर ऋण आवेश और नाभिक पर धन आवेश होने के कारण अणु में इलेक्ट्रोन नाभिक की परिक्रमा करते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे गुरूत्वाकर्षण बल के कारण पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। इलेक्ट्रोन और प्रोटोन के बीच विद्युत चुम्बकीय बल दोनों कणों के बीच फोटोन के आदान-प्रदान के कारण होता है।

तीसरा और सबसे बड़ा बल तीव्र नाभिकीय बल होता है। इसी बल के कारण प्रोटोन और न्यूट्रोन कणों में क्वार्क आपस में बंधे रहते हैं और नाभिक में प्रोटोन और न्यूट्रोन आपस में एक साथ रहते हैं। यह बल ग्लूआन कण के आदान-प्रदान के कारण होता है, यह कण केवल अपने से और क्वार्क से प्रतिक्रिया करता है।

चौथा बड़ा बल मन्द बल है। यह उन सभी कणों के बीच होता है जिनकी स्पिन 1/2 होती है और उन कणों के बीच नहीं होता जिनकी स्पिन 0,1 या 2 होती है जैसे फोटोन या ग्रेवीटोन कण।

बोसोन फरमियॉन से भिन्न प्रकार के कण हैं। बोसोन कणों की स्पिन पूर्ण संख्या के गुणांक में होती है। जैसे (0,1,2)। बोसोन कण पॉली पृथकता सिद्धान्त का अनुसरण नहीं करते। द्रव्यमान रहित फोटोन सबसे अधिक सुविज्ञात बोसोन

कण है, यह प्रकाश का एक पुंज है। जब कभी दो पदार्थ कण प्रतिक्रिया करते हैं वे आपस में बोसोन कण का आदान-प्रदान करते हैं। फोटोन कण विद्युत चुम्बकीय बल का संवाहक है। मन्द बल के संवाहक तीन बोसोन कण (W^+, W^-, Z^0) होते हैं। इस बल के कारण पदार्थ में बीटा क्षरण होता है। ग्लूआन तीव्र आणविक बल के संवाहक हैं। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि ग्रेवीटोन नामक बोसोन कण गुरूत्वाकर्षण बल का संवाहक है। बोसोन कण का प्रतिकण नहीं होता है। इन कणों में कोई द्रव्यमान नहीं होता है। फोटोन, ग्लूआन ओर ग्रेवीटोन कणों में कोई विद्युत आवेश नहीं होता। ग्रेवीटोन कण को अभी तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से देखा नहीं गया है।

प्रकृति में सभी पदार्थ कण बोसोन या फरमियाँन में से कोई एक होते हैं। कई बोसोन एक समय में एक अवस्था में रह सकते हैं। परन्तु फरमियन ऐसा नहीं करते, केवल एक फरमियोन ही एक समय में एक अवस्था में रह सकता है।

क्वांटम सिद्धान्त एवं आइन्सटीन के सापेक्षता सिद्धान्त, जिसके अनुसार यह माना जाता है कि विद्युत चुम्बकीय तरंगे शून्य में सभी दिशाओं में दृष्टा के सापेक्ष एक निश्चित गति से गमन करती है, ने क्वांटम फील्ड थ्योरी को जन्म दिया। यह सिद्धान्त आज अणु कणों के व्यवहार की व्याख्या करने का सफल आधार है।

आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षता का सिद्धान्त, जिसके अन्तर्गत न्यूटन का गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्त भी समाहित है, ने ऐसे बहुत से साक्ष्य प्रस्तुत किए जिससे प्रकृति की सफलतापूर्वक व्याख्या की जा सकी है। इस सिद्धान्त के दो परिणामों ने लोगो को और वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित कर दिया। ये दो परिणाम है दूर फैलता हुआ ब्रह्माण्ड और श्याम विवर। ये दोनो ही परिणाम प्रमाणित हो गये हैं और इस प्रकार आइन्स्टीन का सिद्धान्त प्रकृति की सत्यता को छूता है। इस सिद्धान्त ने प्रकृति के बारे में हमारी जानकारी को बहुत आगे बढ़ाया है जैसे ग्रहों के परिक्रमा पथ, तारों और नीहारिकाओ का बनना, बिग बैंग, श्याम विवर और गुरूत्वाकर्षण लेन्स आदि।

सापेक्ष क्वांटम फिल्ड थ्योरी अणु कणों के व्यवहार और गुणों की बहुत अच्छी व्याख्या करती है। लेकिन यह सिद्धान्त तभी ठीक से व्याख्या करता है जब गुरूत्वाकर्षण बल अनुपस्थित है या नगण्य है।

3.8 फील्ड थ्योरी

वैज्ञानिको का यह प्रयास रहा है कि उन्हें एक ऐसी थ्योरी मिल जाय जो चारो प्रकार के बल तथा सभी पदार्थ कणों के गुणों और क्रियाओं को प्रदर्शित करे।

इस दिशा में प्रारम्भ बलों को लेकर हुई। बीसवीं सदी में पदार्थ कणों के गुणों की व्याख्या के लिए सफल प्रयास हुए। अब यह प्रयास चल रहे हैं कि बल और कण दोनो के लिए संयुक्त थ्योरी का विकास हो।

भौतिक शास्त्र में वस्तुओं के बीच बल को एक गणितीय फील्ड के माध्यम से दर्शाया जाता है। जब हम अणु के स्तर पर कार्य करते हैं तो ये गणितीय फील्ड क्वांटम मेकेनिक्स के नियमों के अनुसार क्वांटम फील्ड में बदल जाते हैं। दूसरी ओर क्वांटम मेकेनिक्स के द्रव्य अवस्थिति नियम, कि कोई भी कण तरंग रूप में या कण रूप में अवस्थित हो सकता है, के अनुसार गणितीय फील्ड उस अवस्था के समकक्ष हो जाता है जिसमें दो वस्तुओं के बीच बल उनके बीच बोसोन कणो की अदला-बदली से प्रकट होता है, जो उनके बीच संवेग और ऊर्जा स्थानान्तरित करते हैं।

फील्ड थ्योरी के इतिहास को देखें तो पाते है कि माइकल फेरेडे से पूर्व विद्युत और चुम्बक दो पृथक बल माने जाते थे। 1831 में फेरेडे ने प्रयोगों से बताया कि चुम्बकीय फील्ड से बिजली उत्पन्न की जा सकती है। 1864 मे जेम्स क्लार्क मेक्सवेल ने विद्युत और चुम्बकीय बल थ्योरी को सम्मिलित कर विद्युत चुम्बकीय बल थ्योरी प्रतिपादित की। यह विज्ञान की बड़ी प्रगति थी। 1940 के दशक मे इस थ्योरी में आगे विकास कर इसे इस लायक बनाया गया कि यह अणु स्तर पर भी सफलता से कणों के व्यवहार की व्याख्या करें। इस रूप में मूल कणों के बीच फोटोन कण का आदान-प्रदान माना गया। 1967 में दो अमेरिकी वैज्ञानिक शेल्डन ग्लाशो और स्टीवन वीनबर्ग तथा एक पाकिस्तानी वैज्ञानिक अब्दुस सलाम ने स्वतंत्र रूप से एक थ्योरी का आविष्कार किया जिसमे विद्युत चुम्बकीय बल और मन्द बल को शामिल कर दिया गया। यह भौतिक शास्त्र का स्टेण्डर्ड मॉडल प्रदान करता है। इनकी थ्योरी को 1983 में कारलो रूबिया की टीम द्वारा प्रसिद्ध प्रयोगशाला (CERN) में किये गये प्रयोगों से बल मिला। अपनी नई खोज के लिए पूर्वोक्त तीनों वैज्ञानिकों को 1979 में भौतिक विज्ञान का नोबल पुरस्कार दिया गया और कारलो रूबिया ओर उसके साथी साइमन वॉन डर मीर केा 1984 का नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया।

1970 के दशक में तीव्र नाभिकीय बल की क्वांटम थ्योरी का विकास हुआ। इस थ्योरी के आधार पर 1974 में शेल्डन ग्लाशो और हावर्ड गोर्गी ने तीव्र नाभिकीय बल और मन्द बल को शामिल करते हुए ग्रांड संयुक्त थ्योरी का प्रतिपादन किया। इसके पश्चात् इस दिशा में कुछ ओर ग्रांड संयुक्त थ्योरी का विकास हुआ है।

इन थ्योरी का प्रायोगिक प्रमाण बहुत कठिन है क्योंकि तीव्र नाभिकीय बल को प्रयोगशाला में उत्पन्न करना अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है। इन थ्योरी के आधार पर वैज्ञानिकों ने एक अनुमान यह लगाया है कि प्रोटोन अस्थिर कण है और उसका क्षरण सम्भव है। वर्तमान प्रयोग यह सिद्ध करते हैं कि प्रोटोन का जीवनकाल कम से कम 10^{35} वर्ष तो है। इसलिए अभी तक ग्रांड संयुक्त थ्योरी का प्रमाणीकरण नहीं हो पाया है।

गुरूत्वाकर्षण बल दूसरे तीन बलों से अलग है। भौतिक शास्त्री अभी तक क्वांटम मेकेनिक्स और गुरूत्वाकर्षण बल (सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के माध्यम से) को शामिल नहीं कर पाये हैं। स्ट्रींग थ्योरी के माध्यम से एक ऐसा प्रयास अवश्य चल रहा है। स्ट्रींग थ्योरी क्वांटम मेकेनिक्स और गुरूत्वाकर्षण बल दोनों की व्याख्या करने में सक्षम है। इस थ्योरी को समझने के लिए एक गिटार के तार की कल्पना करें। इस तार का खिंचाव सेट करके इसकी ट्यूनिंग की जाती है। इस तार में विभिन्न खिंचाव देकर और इसको विभिन्न प्रकार से छेड़ने से भिन्न-भिन्न प्रकार का संगीत स्वर पैदा किया जा सकता है। इसी प्रकार स्ट्रींग थ्योरी में मूल स्ट्रींग की विभिन्न प्रकार की उत्तेजना से कई प्रकार के स्वर निकाले जा सकते है और ये स्वर विभिन्न अणु कणुओं के गुणों को प्रदर्शित करते हैं। एक स्ट्रींग का औसत आकार 10^{-35} मीटर है। यह स्ट्रींग इतनी छोटी है कि इसे किसी भी ज्ञात तकनीक से या भविष्य में होने वाली तकनीक से देखा जाना सम्भव नहीं होगा।

स्ट्रींग थ्योरीज कई प्रकार की हैं। इनके वर्गीकरण के दो आधार है। पहला, क्या स्ट्रींग खुली है या वर्तुल बनाती है और दूसरा क्या इससे बनने वाले अणुकणों में फरमियोन भी शामिल है। यदि फरमियोन को भी सम्मिलित किया जाता है तो स्ट्रींग में एक प्रकार की प्रतिबिम्ब समानता होनी चाहिए जिसे सुपरसिमेट्री कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रति बोसोन कण के समानान्तर एक फरमियोन कण है। अभी तक वैज्ञानिकों को इस प्रकार की सुपरसिमेट्री देखने को नहीं मिली है परन्तु उन्हें इसकी शीघ्र खोज की आशा है।

बोसोन स्ट्रींग थ्योरी केवल बोसोन कणो से संबंध रखती है। सुपर स्ट्रींग थ्योरी दोनों फरमियोन ओर बोसोन के व्यवहार का अध्ययन करती है। सुपरस्ट्रींग थ्योरी भी पांच प्रकार की है। बोसोन स्ट्रींग थ्योरी क्वांटम मेकेनिक्स को तभी अच्छी प्रकार समझाती है जब इसके 26 आकाश-काल आयाम होते है। सुपरस्ट्रींग थ्योरी में आकाश-काल आयाम 10 ही होते हैं। वैज्ञानिक दोनों प्रकार की स्ट्रींग थ्योरी को

एक थ्योरी में सम्मिलित करने का प्रयास कर रहे हैं जिसको एम (Mother) थ्योरी कहते हैं। हमें अभी तक मूल एम थ्योरी ज्ञात नहीं है परन्तु ग्यारह आयाम वाली एम थ्योरी के बारे में काफी जानकारी प्राप्त हुई है और यह भी जाना जा सका है किस प्रकार यह थ्योरी 10 आकाश-काल आयाम वाली सुपरस्ट्रींग थ्योरी से संबंध बनाती है।

यदि हमें किसी प्रकार एक समग्र समर्थ संयुक्त सिद्धान्त मिल भी जाय तो भी इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं होगा कि हम सभी साधारण घटनाओं की पूर्व घोषणा कर सकेंगे। इसके दो कारण हैं। प्रथम, क्वांटम मेकेनिक्स का अनिश्चितता का सिद्धान्त हमारे पूर्व अनुमान को सीमित करता है। यह सीमा दूसरे कारण की सीमा से फिर भी कम है। इस दूसरे कारण के अनुसार हम जटिल समीकरणों का सही और पूर्ण हल केवल कुछ सरल परिस्थितियों को छोड़ कर प्राप्त करने में असमर्थ हैं। आज भी हमें अति विकट पारिस्थितियों में नहीं बल्कि सरल परिस्थितियों में ही अधिकांश प्राकृतिक पदार्थों के नियम मालूम हैं। जैसे हमें रासायनिक और जैविक क्रियाओं के नियम मालूम है फिर भी हम जीव के बारे में बहुत सी बातें नहीं जानते हैं। आज भी हम मानव व्यवहार का गणितीय समीकरणों द्वारा पूर्व अनुमान नहीं लगा सकते। इसलिये यदि हमें प्रकृति के सारे नियम मालूम हो भी जाय तो भी हमारे सामने यह चुनौती बनी रहेगी कि कैसे हम उन सरल उपायों को खोजें जिससे हम जटिल और सापेक्षिक परिस्थितियों में संभावित और अर्थपूर्ण व्यवहार का पूर्व अनुमान कर सकें। एक समग्र पूर्ण सिद्धान्त को प्राप्त करना केवल प्रथम चरण है, हमारा लक्ष्य है प्रकृति के पूर्ण सत्य को और अपने आप को जानना।

3.9 द्रव्यमान क्या है ?

1687 में प्रथम बार आइजक न्यूटन ने द्रव्यमान की वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत की। न्यूटन ने कहा किसी पदार्थ की मात्रा उसके घनत्व और आकार पर निर्भर करती है। यह परिभाषा न्यूटन और अन्य वैज्ञानिकों के लिए लगभग 200 वर्षों तक सही थी। उनका मानना था कि वैज्ञानिक समझ के लिए पहले यह मालूम होना चाहिए कि कोई वस्तु कैसे काम करती है और बाद में क्यों का कारण जानना चाहिए। हाल के वर्षों में वस्तु का द्रव्यमान क्यों होता है यही खोज का विषय हो गया है।

द्रव्यमान की हमारी आधुनिक समझ न्यूटन की परिभाषा से बहुत गहरी है। यह समझ अणु भौतिकी के स्टेण्डर्ड मॉडल पर आधारित है। सभी मूलकणों का एक

स्वाभाविक द्रव्यमान होता है जिसे गतिहीन द्रव्यमान कहते हैं (शून्य गतिहीन द्रव्यमान वाले कणो को अमूर्त कहते हैं)। किसी योगिक कण का द्रव्यमान उसके घटक कणों के द्रव्यमान तथा उनकी गति ऊर्जा और प्रभव ऊर्जा के योग के बराबर होता है। स्टेण्डर्ड मॉडल हमें बताता है कि प्रोटोन और न्यूट्रोन का लगभग सम्पूर्ण द्रव्यमान उनके घटक क्वार्क और ग्लुआन की गतिऊर्जा के बराबर होता है (शेष द्रव्यमान क्वार्क का गतिहीन द्रव्यमान होता है)। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का 4 से 5 प्रतिशत द्रव्यमान प्रोटोन और न्यूट्रोन के घटक क्वार्क और ग्लुआन की गतिऊर्जा के कारण है।

प्रोटोन ओर न्यूट्रॉन की तरह क्वार्क और ग्लुआन किसी अन्य कणों से नहीं बने हैं। फिर उनका गतिहीन द्रव्यमान कैसे होता है यह एक मूल प्रश्न है। वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न के समाधान रूप में कहा है कि इन मूल कणों का द्रव्यमान उनकी हिग्स फील्ड से प्रतिक्रिया होने के कारण होता है। हिग्स फील्ड को एक क्वांटम फील्ड माना गया है। परन्तु प्रश्न होता है कि ब्रह्माण्ड में सर्वत्र हिंग्स फील्ड क्यों उपस्थित है? विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र की तरह ब्रह्माण्ड स्तर पर हिग्स फील्ड की शक्ति शून्य क्यों नहीं है?

वैज्ञानिकों का मानना है कि जो कण हिग्स फील्ड से प्रतिक्रिया करते हैं वे ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे कि उनका द्रव्यमान हिग्स फील्ड की शक्ति और प्रतिक्रिया की शक्ति के गुणनफल के अनुपात में है। इस सबके बारे में अभी हमारी समझ पूर्ण नहीं हैं और अभी तक हमें सही रूप से ज्ञात नहीं है कि हिग्स फील्ड कितने प्रकार के हैं। एक सुपर सिमेट्रिक स्टेण्डर्ड मॉडल के साथ कम से कम दो भिन्न प्रकार के हिग्स फील्ड की आवश्यकता होती है। ये दो हिग्स फील्ड पांच प्रकार के हिग्स बोसोन बनाते हैं, इनमें से तीन विद्युत आवेश रहित है और दो विद्युत आवेश सहित है। न्यूट्रीनों कण का द्रव्यमान अप्रत्यक्ष रूप से इन प्रतिक्रियाओं के कारण हो सकता है या फिर एक तीसरे प्रकार के हिग्स फिल्ड के कारण हो सकता है। एक न्यूट्रीनों कण का द्रव्यमान एक इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान के दस लाखवें अंश से भी कम है।

एक कण और हिग्स फील्ड के बीच प्रतिक्रिया से द्रव्यमान कैसे उत्पन्न होता है इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है। हिग्स फील्ड से भरा खाली आकाश बच्चों से भरे एक समुद्री बीच की तरह है। उस आकाश से गुजरता एक कण उस बीच से गुजरता एक आइसक्रीम विक्रेता की तरह है। बच्चों के साथ प्रतिक्रिया के कारण उस आइसक्रीम विक्रेता की गति धीमी हो जाती है जैसे कि उसका द्रव्यमान बढ़ गया हो।

मौलिक कणों में द्रव्यमान कैसे होता है, हिग्स फील्ड इसकी व्याख्या करते हैं। परन्तु ब्रह्माण्ड में विद्यमान द्रव्यमान का कारण अकेला हिग्स फील्ड ही नहीं है। विश्व में लगभग 70 प्रतिशत द्रव्यमान डार्क ऊर्जा के रूप में हैं जिसका मूलभूत कणो से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। डार्क ऊर्जा की खोज 1998 में हुई और 2003 में इसकी पुष्टि हो गई। डार्क ऊर्जा में गुरूत्वाकर्षण विरोधी गुण होता है। वैज्ञानिक डार्क ऊर्जा का अनुमान इस बात से लगाते हैं कि ब्रह्माण्ड का फैलाव तीव्रतर होता जा रहा है। डार्क ऊर्जा का वास्तविक स्वरूप क्या है यह आज भौतिक शास्त्र का चुनौती भरा प्रश्न है। ब्रह्माण्ड का शेष 30 प्रतिशत द्रव्यमान पदार्थ कणों के द्रव्यमान के कारण है। सबसे अधिक विज्ञात पदार्थ प्रोटोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन के रूप में हैं और ये ब्रह्माण्ड का 4 से 5 प्रतिशत द्रव्यमान ही बनाते है। न्यूट्रीनों द्रव्यमान का अनुपात आधे प्रतिशत से भी कम है।

ब्रह्माण्ड का शेष 25 प्रतिशत द्रव्यमान ऐसे पदार्थ के कारण है जिसे हम देख या जान नहीं सकते । इस पदार्थ को डार्क पदार्थ कहा गया है। डार्क पदार्थ का अस्तित्व उसके ज्ञात पदार्थ पर गुरूत्वाकर्षण प्रभाव से जाना जाता है। हम अभी तक नहीं जानते है कि वास्तव में डार्क पदार्थ क्या है ? प्रयोग यह संकेत देते है कि डार्क पदार्थ विशाल पिण्ड के रूप मे होना चाहिए क्योंकि गुरूत्वाकर्षण बल के कारण ये नीहारिका के आकार की रचना करते है। कई प्रकार के तर्क यह बताते है कि डार्क पदार्थ सामान्य स्टेण्डर्ड मॉडल कणों से नहीं बना है। वैज्ञानिकों के अनुसार डार्क पदार्थ सबसे हल्के सुपर पार्टनर (LSP) के रूप में हो सकता है। एक (LSP) कण का द्रव्यमान लगभग एक सौ प्रोटोन के द्रव्यमान के बराबर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्रव्यमान के तीन कारण हैं। द्रव्यमान का प्रमुख प्रकार जिससे हम परिचित है अणु के रूप में है और यह क्वार्क की गति ऊर्जा के कारण है। प्रोटोन और न्यूट्रोन का यह द्रव्यमान हिग्स फील्ड के बिना भी उतना ही होगा। परन्तु क्वार्क और इलेक्ट्रोन का द्रव्यमान पूर्णत: हिग्स फील्ड के कारण है। सुपर पार्टनर या डार्क पदार्थ का द्रव्यमान मूल हिग्स फील्ड के कारण नहीं बल्कि किसी अन्य कारण से है। जैन मत के अनुसार द्रव्यमान पुद्गल, का आपेक्षिक स्पर्श गुण है। इस पर विचार अध्याय 5 में महास्कंध वर्गणा के अन्तर्गत किया गया है।

अन्त में उस प्रश्न को लेते है जिसे परिवार प्रश्न कहा गया है। पिछली आधी शताब्दी में वैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया है कि ज्ञात ब्रह्माण्ड छह कणों से बना है, तीन पदार्थ कण-अप क्वार्क, डाउन क्वार्क और इलेक्ट्रोन, दो बल कण फोटोन

और ग्लूआन और हिंग्स बोसोन। इसके अतिरिक्त भी चार क्वार्क कण है, इलेक्ट्रोन के समान दो और कण है और तीन न्यूट्रीनों कण हैं। ये सब अत्यन्त अल्प जीवनकाल वाले कण हैं और पहले छह कणों से इनकी प्रतिक्रिया नहीं के बराबर है। इन कणों को तीन परिवार में विभाजित किया जा सकता है। अत: परिवार प्रश्न के दो भाग है - ये तीन परिवार क्यों है जबकि ज्ञात विश्व की व्याख्या एक परिवार से ही की जा सकती है। इन परिवारों के द्रव्यमान में अंतर क्यों है और मूलत: इनमें द्रव्यमान ही क्यों है?

भौतिकी का स्टेण्डर्ड मॉडल और सुपर सिमेट्रिक मॉडल परिवार व्यवस्था को समाहित कर सकते हैं पर उनकी व्याख्या नहीं कर सकते। स्ट्रींग थ्योरी इन प्रश्नों का समाधान कर सकती है। स्ट्रींग थ्योरी बता सकती है कि मूल कण क्या हैं और उनके तीन परिवार क्यों है। स्ट्रींट थ्योरी के साथ समस्या यह है कि आज तक इसे प्रमाणित नहीं किया जा सका है। स्ट्रींग थ्योरी ने ऐसा कुछ नहीं बताया है जो अन्य सिद्धान्तों से भिन्न हो कम से कम ऐसी कोई जानकारी जिसको प्रयोगों से सिद्ध किया जा सके। इस दृष्टि से स्ट्रींग थ्योरी अभी तक भ्रूण अवस्था में है। इस थ्योरी में गणीतीय दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण गुण हैं और यह विश्व के बारे में समझ प्राप्त करने में बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है लेकिन इसे स्वीकारने या नकारने से पहले इसके और आगे विकास की आवश्यकता है।

उपलब्ध तकनीकी ज्ञान के आधार पर स्ट्रींग को अभी नहीं देखा जा सकता है। परन्तु वैज्ञानिकों की आशा है कि हम एक दिन स्ट्रींग को देख पायेंगे या ऐसी ब्रह्माण्डीय घटना की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जो स्ट्रींग थ्योरी की पुष्टि करे।

3.10 इन्द्रिय संज्ञा

3.10.1 वर्ण

न्यूटन ने प्रथम बार स्पष्ट तौर पर कहा कि हमारे वर्ण संज्ञान का कारण प्रकाश है। गोइथ ने भी वर्ण सिद्धान्त का अध्ययन किया और 1801 में थॉमस यंग ने त्रिवर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो बाद में हरमान वॉन हेलमोट्ज द्वारा संशोधित किया गया। इस सिद्धान्त को 1960 के दशक में प्रमाणित किया गया। 1931 में अन्तर्राष्ट्रीय दि एक्लेरेज कमीशन के अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों के दल ने गणितीय वर्ण मॉडल का विकास किया। इस दल के अनुसार वर्ण तीन चीजों का सामूहिक परिणाम है - प्रकाश का स्रोत, वस्तु और दृष्टा।

प्रकाश की एक किरण कई प्रकार की साइन किरणों का मिश्रण है और प्रत्येक साइन किरण की एक आवृत्ति और तरंगदैर्ध्य होता है। वर्ण, किरण की

आवृत्ति (या तरंग दैर्ध्य) द्वारा किया गया अनुभव है उसी प्रकार जैसे किसी संगीत का अनुभव ध्वनि की आवृत्ति या तरंगदैर्ध्य द्वारा होता है। यह अनुभव हमारी आँख की उस क्षमता द्वारा होता है जिससे आँख दृश्य के विश्लेषण (सामान्यतया तीन) में भेद करती है। वर्ण का यह संज्ञान जैविक संरचना, दृष्टा का दीर्घ इतिहास और वर्तमान परिस्थिति जैसे वस्तु के निकट उपस्थित दूसरे रंग, से प्रभावित होता है। वस्तु से आने वाली विकिरणों का पूरा स्पेक्ट्रम वस्तु का आकार और वर्ण निर्धारित करता हैं। स्पेक्ट्रल वर्ण की तीव्रता इसके अनुभव को बदल सकती है। प्रकाश स्पेक्ट्रम में लाल, नारंगी, पीला, हरा, क्यान, नीला और बैंगनी रंग होते हैं। इन स्पेक्ट्रल रंगों के अतिरिक्त भी बहुत से रंग हमारे अनुभव में आते हैं जिन्हें गैर स्पेक्ट्रल रंग कहा जाता है। गैर स्पेक्ट्रल रंगों के उदाहरण है एक्रोमेटिक रंग जैसे काला, धूसर, सफेद तथा अन्य रंग जैसे गुलाबी, तांबा, आदि।

मानव की आँख के रेटिना में तीन भिन्न प्रकार की वर्ण संग्रहक कोशिकाएं या कोन होती हैं। (1) एस कोन, लघु तरंग दैर्ध्य कोन। ये कोन बैंगनी किरणों जिनका तरंग दैर्ध्य लगभग 420 नेनोमीटर है, के प्रति संवेदनशील होती है। (2) एल-कोन, दीर्घ तरंग दैर्ध्य कौन। ये कोन पीले हरे रंग की किरणें, जिनका तरंग दैर्ध्य लगभग 564 नेनोमीटर है, के प्रति संवेदनशील हैं। (3) एम-कोन, मध्य तरंग दैर्ध्य कोन। ये कोन हरे रंग की किरणों, जिनका तरंग दैर्ध्य लगभग 534 नेनोमीटर है, के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। इन कोन की संवेदनशीलता बिल्कुल भिन्न-भिन्न न होकर कई तरंग दैर्ध्य पर समान है। किसी वस्तु से आने वाला किरण स्पेक्ट्रम आंख में तीन प्रकार की कोन द्वारा तीन वर्ग में विभाजित हो जाता है। और यही विभाजन वस्तु का वर्ण निर्धारित करता है। एक अनुमान के अनुसार मनुष्य की आंख लगभग एक करोड़ रंगों में भेद कर सकती है, यद्यपि किसी एक रंग की पहचान बहुत निश्चित नहीं होती क्योकि किसी व्यक्ति की दो आंखे भी रंग की पहचान भिन्न-भिन्न करती हैं।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक पौद्गलिक पदार्थ में - चाहे वह परमाणु के रूप में हो, चाहे परमाणुओं से बने स्कंध के रूप में हो- स्पर्श ,रस , गधं और वर्ण नामक गुण रहते हैं। वस्तु निष्ठ होने के कारण ये गुण ज्ञाता से सर्वथा स्वतंत्र हैं। जब ज्ञाता किसी भी पुद्गल को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करता है, तब ऐन्द्रिय ज्ञान की सीमितता के कारण यदि वह वस्तु को मूल स्वरूप में न भी जाने, तो भी इससे वस्तु का स्वरूप नही बदल जाता । उदारहणार्थ -यह माना गया है कि प्रत्येक चक्षुग्राह्य

पदार्थ अनन्त परमाणुओं का स्कंध होता है। इसमें सभी वर्ण विद्यमान होते हैं। किन्तु जब हम उस पदार्थ को देखते हैं , तब यह आवश्यक नही होता कि उसमें रहे हुए सभी वर्ण हमें दिखाई दे। जैसे भ्रमर के पाँचों ही वर्ण होते हैं, फिर भी हमें वह काला ही दिखाई देता है। यह ऐन्द्रिय ज्ञान की सीमितता के कारण होता है। अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा भ्रमर के सभी वर्णों का ज्ञान सम्भव हो सकता है। जैन दर्शन की परिभाषिक शब्दावली में इस तथ्य को कहें तो निश्चय नय की दृष्टि से तो भ्रमर पांचों वर्णो से युक्त है, किन्तु व्यवहार नय की दृष्टि से भ्रमर काला है। ज्ञेय और ज्ञाता का अपना -अपना स्वतंत्र अस्तित्व और महत्व है तथा ज्ञाता के हस्तक्षेप (विषय -ग्रहण) से ज्ञेय पदार्थ के स्वरूप में परिवर्तन नही होता , यह जैन दर्शन का स्पष्ट मन्तव्य है। इसी प्रकार हरे रंग की दूब के परमाणुओं में सभी वर्ण वाले परमाणु मौजूद हैं, इसलिए वस्तुत: तो दूब का रंग हरा ही नहीं है , किन्तु हरे रंग वाले परमाणुओं की संख्या अधिक होने के कारण दूब हमें हरी दिखाई देती है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जैन दर्शन के दृष्टिकोण में अधिक अन्तर नही है क्योंकि पदार्थ का वर्ण दोनों दृष्टिकोणों के अनुसार पदार्थ की रचना में ही निहित है। पदार्थ के द्वारा कौन -कौन से तरंग - दैर्ध्य का शोषण होता है, इसका आधार पदार्थ की रचना है, पदार्थ - स्थित परमाणुओं का मूल वर्ण ही है। पदार्थ प्रकाश तरगों को किस कारण से शोषित करता है इसका समाधान भौतिक विज्ञान अब तक नही दे पाया है और तब तक नही दे पायेगा , जब तक कि भौतिक पदार्थ का चरम रूप स्पष्ट नही हो जाता । वर्तमान में इस विषय में अनेक प्रकार की उपधारणाएं और परिकल्पनाएं विज्ञान जगत में प्रचलित हैं। जैन दर्शन के अनुसार वर्ण आदि गुण वस्तुत: वस्तु निष्ठ होते हैं और इस वस्तु स्वरूप को एन्द्रिय ज्ञान के द्वारा जाना ही नहीं जा सकता। अत: भौतिक विज्ञान केवल ऐन्द्रिय ज्ञान के आधार पर कभी भी इसको जानने में समर्थ नही बनेगा, ऐसा जैन दर्शन के आधार पर कहा जा सकता है।

3.10.2 रस

किसी भी खाद्य पदार्थ में विशेष अणुकुल और आयन घुले रहते है और इनको पहचानने की क्षमता ही स्वाद (रस) कहलाता है। मनुष्य स्वाद की पहचान रस संवेदनशील कोशिकाओं से करता है। ये कोशिकाएं रस तल में स्थित होती हैं। हर रस तल में एकछिद्र होता है जो जिव्हा की सतह पर खुलता है। खाद्य पदार्थ में उपस्थित अणुकुल और आयन इन छिद्रो से संवेदनशील कोशिकाओं तक पहुँचते हैं। एक रस तल में 50 से 100 संवेदनशील कोशिकाएं होती है जो पाँचों रसों के प्रति

संवदेनशील होती हैं। हर रस कोशिका स्नायु के द्वारा मस्तिष्क से जुड़ी रहती है। पाँच प्रकार के मुख्य रस हैं। (1) नमकीन (2) खट्टा (3) मीठा (4) कड़वा (5) चरपरा

3.10.3 गंध

वायु में घुले हुए (या उन जीवों के लिए जो पानी का श्वास लेते हैं, पानी में घुले हुए) रसायनों का संज्ञान गंध संज्ञा है। रीढ़धारी जीवों मे नाक में स्थित ओलफेक्टरी एपीथेलियम द्वारा गंध का संज्ञान किया जाता है और फिर ओलफेक्टरी सिस्टम द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। गंध छोटे अणुकुल के रूप में होती है जिनका आकार 300 आणविक द्रव्यमान से न्यून होता है।

लिंडा बी. बक और रिचर्ड एक्सेल की खोज के अनुसार स्तनधारी जीवों में गंध के संज्ञान के लिए लगभग एक हजार जीन होते हैं। मनुष्य में 347 गंध संज्ञान जीन कार्य करते हैं। एक थ्योरी के अनुसार गंध संज्ञान स्नायु कोशिका एक ताला - चाबी सिस्टम की तरह कार्य करती है। यदि गंध अणुकुल ताले में फिट हो जाता है तो स्नायु कोशिका संवेदन करती है। ब्रिटिश जैव भौतिक विज्ञानी लुका टुरीन (1990, 2002) द्वारा एक तरंग थ्योरी का प्रतिपादन किया गया है। इस थ्योरी के अनुसार गंध कोशिकाएं गंध अणुकुल की कंपन आवृत्ति का संज्ञान करती हैं और यह आवृति इलेक्ट्रोन की इन्फ्रारेड आवृत्ति रेंज में होती है। टुरीन का तर्क है कि हमारी दो अन्य संज्ञा, वर्ण और ध्वनि, हमारे मस्तिष्क द्वारा तरंगों की पहचान पर निर्भर करती है तो फिर गंध क्यों नहीं। यह थ्योरी इस बात की व्याख्या कर सकती है कि क्यों कई बार विभिन्न संज्ञाएं आपस में मिल जाती है। बहुत से संगीत रचनाकार कहते हैं कि वे वर्णों के माध्यम से सुनते हैं या ध्वनि को सूंघते हैं। बहुत से शिशुओं को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे सभी संज्ञाओं को एक साथ ग्रहण करें ऐसी दशा में मस्तिष्क वर्ण, ध्वनि और गंध संज्ञाओं को अलग-अलग नहीं देखता। इस थ्योरी द्वारा किए गये पूर्वानुमान अभी तक कई माने में सही नहीं पाये गये हैं।

गंध और रस दोनों मिल कर स्वाद की रचना करते हैं। मनुष्य की जिव्हा पाँच रस का भेद ही कर सकती है परंतु नाक सैंकड़ों प्रकार की गंध का संज्ञान कर सकती है। यही कारण है कि जब नाक बंद होता है (जैसे जुकाम में) तो भोजन में ठीक स्वाद नहीं आता।

गंध की संवेदनशीलता और महत्व विभिन्न प्राणियों में अलग-अलग होती है। अधिकांश स्थनधारी जीवों की गंध संज्ञा अच्छी होती है परन्तु पक्षियों में ऐसा

नहीं होता (किवी पक्षी को छोड़ कर)। स्तनधारियों में गंध संज्ञा मांसाहारी और अंगुलेट जीवों में अच्छी विकसित होती है। कुछ अन्य जीवों में जिनमें गंध संज्ञा कम या विकसित नहीं होती उनमें रस संज्ञा अच्छी विकसित होती है। कीट पतंग अपने एन्टीना से गंध की पहचान करते हैं।

3.10.4 श्रवण

किसी वस्तु में कंपन्न से ध्वनि उत्पन्न होती है। ध्वनि तरंगे वायुमंडल में गमन करती हैं। कान को पहुँचने वाली ध्वनि तरंगें या तो सीधे प्रवेश करती हैं या पिन्ना से परावर्तित होकर ऑडीटरी केनाल में प्रवेश करती हैं और तीन ऑसीकल्स के माध्यम से कोचली तक पहुँचती हैं। फिर इयर केनाल में होते हुए कान के पर्दे पर पहुँचती हैं। ऑडीटरी केनाल लगभग 2000 हर्ट्ज और 5500 हर्ट्ज आवृत्ति के बीच की ध्वनि तरंगों को 10 गुणा बढ़ा देती है। इन ध्वनि तरंगों से कान के पर्दे में कंपन्न होता है जो तीन छोटी हड्डियों के माध्यम से कोचली पहुँचता है। ये तीन छोटी हड्डियाँ भी ध्वनि की कुछ आवृत्तियों को 20 गुणा तक और बढ़ा सकती हैं। कोचली में बाल जैसे रेशे होते है जिनमें कंपन से विद्युत संकेत उत्पन्न होते हैं जो स्नायु के माध्यम से मस्तिष्क को पहुँचते हैं। हमारा मस्तिष्क ध्वनि की दिशा का और स्थान की दूरी का संज्ञान करने में सक्षम है।

हम 20 हर्ट्ज से 20,000 हर्ट्ज आवृत्ति की ध्वनि सुन सकते हैं। परन्तु हमारी संवेदनशीलता 500 हर्ट्ज और 4000 हर्ट्ज के बीच अधिक है जो भाषा की आवृत्तियां हैं। ध्वनि की कम ज्यादा आवाज कान की क्षमता पर निर्भर करती है, यह ध्वनि की तीव्रता पर भी निर्भर करती है। तीव्रता का माप डेसीबल है।

4. जीव द्रव्य

4.1 जैन दर्शन में जीव

4.2 जीवों का वर्गीकरण

- 4.2.1 भव संसरण की अपेक्षा जीव विभाग
- 4.2.2 षड्जीव निकायवाद्
  - 4.2.2.1 पृथ्वीकाय
  - 4.2.2.2 अप्काय
  - 4.2.2.3 तेजसकाय
  - 4.2.2.4 वायुकाय
  - 4.2.2.5 वनस्पतिकाय
  - 4.2.2.6 त्रसकाय

4.3 जीव योनि और आहार

- 4.3.1 वनस्पति
- 4.3.2 मनुष्य
- 4.3.3 पंचेन्द्रिय तिर्यंच
- 4.3.4 विकलेन्द्रिय त्रय जीव
- 4.3.5 स्थावर जीव
- 4.3.6 गर्भ विज्ञान
- 4.3.7 उत्पत्ति स्थान

4.4 पर्याप्ति

4.5 प्राण

4.6 पश्चिम में चेतना की अवधारणा

4.7 जीव विज्ञान में जीवों का वर्गीकरण

4.8 कोशिका

4.9 विकास क्रम-जीवों की श्रेणी

4.10 सूक्ष्म जीव

- 4.10.1 बेक्टीरिया
- 4.10.1 वायरस
- 4.10.1 आर्किया

4.11 समीक्षा

4.1 जैन दर्शन में जीव

जीव के लक्षण की प्ररूपणा करते हुए आगमकारों ने उसे उपयोग लक्षण बताया है। ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण हैं। जीव द्रव्य के प्रमुख दो भेद हैं :- द्रव्य जीव और भावजीव। द्रव्य जीव आत्मा का मूल स्वरूप है। वह चैतन्यमय असंख्य परमाणुओं (प्रदेशों) का पिंड है। असंख्य प्रदेशों का एक संघात है। चैतन्य आत्मा नहीं है, वह आत्मा का मूल गुण है। मूल द्रव्य बहुत सूक्ष्म है। हमारी पकड़ से बाहर है। जो मूल द्रव्य है, वह शाश्वत है। जो सामयिक है वह भाव अथवा पर्याय है।

जीव अनंत हैं। प्रत्येक जीव असंख्य प्रदेशात्मक है और उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। संसार में जीव द्रव्य जितने हैं, उतने ही रहेंगे। जीवों की संख्या में कभी वृद्धि नहीं होती। वे अवस्थित हैं।

संपूर्ण लोक में कोई ऐसा भाग नहीं है जहाँ जीव द्रव्य अवस्थित न हो। समग्र लोक जीवों से परिपूर्ण है। एक जीव की दृष्टि से जीव आकाश के असंख्येय प्रदेशों में अवगाहन किए हुए है। चूंकि जीव असंख्यात प्रदेशी है उसे अवगाहन के लिए आकाश की कम से कम असंख्यात वां भाग चाहिए। यह अमूर्त है, अतः इन्द्रियों एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म उपकरणों से भी जाना नहीं जा सकता। यह वर्ण, गंध, रस आदि पुद्गल लक्षणों से रहित है। शरीर रहित जीव को सर्वज्ञ ही जान सकता है छद्मस्थ व्यक्ति नहीं जान सकता। आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि में सहायक कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं -

1. स्व संवेदन / अहं प्रत्यय - मैं हूँ, मैं सूखी हूँ, मैं दुःखी हूँ - यह अनुभव शरीर को नहीं होता। मैंने किया, मैं करता हूँ, मैं करूंगा, इस त्रिकालवर्ती व्यपदेश से होने वाले अहं प्रत्यय से आत्मा प्रत्यक्ष सिद्ध होती है।
2. संशय - संशय, जिज्ञासा आदि विज्ञान जीव-चेतना में होते हैं, इसलिए जीव प्रत्यक्ष सिद्ध है। अवस्तु का कभी संशय नहीं होता। मैं हूँ या नहीं यह संशय भी जीव को ही होता है।
3. सत् प्रतिपक्ष-यदि अचेतन पदार्थ है तो उसके प्रतिपक्षी चेतन की उपस्थिति स्वंय सिद्ध है। जिसके प्रतिपक्ष का अस्तित्व नहीं है, उसके अस्तित्व को तार्किक समर्थन नहीं मिल सकता। विज्ञान ने प्रति पदार्थ की खोज की है। कण है तो प्रतिकण भी है। धूप के साथ छाया, प्रकाश के साथ अंधकार, ध्वनि के साथ प्रतिध्वनि होती है। वैसे ही अजीव के साथ जीव, अचेतन के साथ चेतन जुड़ा हुआ है।

जैन परम्परा के अनुसार जीव के बारे में निम्नांकित मुख्य तथ्य ज्ञातव्य हैं।

1. जीव अनादि-निधन है, न उसका आदि है और न अन्त ही है। वह अविनाशी है, अक्षय है। द्रव्य-दृष्टि से उसका स्वरूप तीनों कालों में एक-सा रहता है इसलिए वह नित्य है और पर्याय दृष्टि से वह भिन्न-भिन्न रूपों में परिणत होता रहता है, अत: अनित्य है।
2. संसारी जीव- तिल और तेल की तरह जीव और शरीर एक प्रतीत होते हैं परन्तु जीव और शरीर अलग हैं।
3. शरीर के अनुसार जीव का संकोच और विस्तार होता है। जो जीव हाथी के विराट्काय शरीर मे होता है वही जीव चींटी के नन्हे शरीर में उत्पन्न हो सकता है। संकोच और विस्तार दोनों ही अवस्थाओं में उसकी प्रदेश संख्या न्यूनाधिक नहीं होती, समान ही रहती है।
4. जीव अमूर्त है और वह विज्ञान गुण से जाना जाता है।
5. जीव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य का आधार है।
6. जीव अनेकानेक शक्तियों का पुंज है उसमें मुख्य शक्तियाँ ये हैं - ज्ञान-शक्ति, वीर्य-शक्ति, संकल्प-शक्ति।
7. जीव के दिखलाई नहीं देने पर भी उसका ग्रहण ज्ञान गुण के द्वारा होता है। शरीर में रहे हुए जीव को हास्य, नृत्य, सुख-दु:ख, बोलना-चलना आदि विविध चेष्टाओं से जाना जाता है।
8. जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-योग्य पुद्गल स्वत: ही कर्मरूप में परिणत हो जाते हैं।
9. जीव जिस प्रकार का विचार और व्यवहार करता है वैसा ही संस्कार उसमें गिरता है और उस संस्कार को धारण करने वाला एक सूक्ष्म पौद्गलिक शरीर भी उसके साथ निर्मित होता है, जो देहान्तर धारण करते समय भी साथ ही रहता है।
10. जीव और कर्म का संयोग अनादि है। संवर-तपस्या आदि द्वारा जीव कर्मो से पृथक हो जाता है। जीव और कर्म की परम्परा में पौर्वापर्य नहीं है, दोनों अनादि काल से साथ-साथ हैं।
11. जीव अमूर्त है, तथापि अपने द्वारा संचित मूर्त शरीर के योग से जब तक शरीर का अस्तित्व रहता है, तब तक मूर्त-जैसा बन जाता है।

12. सम्पूर्ण जीवराशि में सहज योग्यता एक सदृश है, तथापि प्रत्येक का विकास एक सदृश नहीं होता। वह उसके पुरूषार्थ एवं अन्य निमित्तों के बलाबल पर अवलम्बित है।

13. लोक में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर सूक्ष्म या - स्थूल - शरीर जीवों का अस्तित्व न हों।

धर्म, अधर्म, लोकाकाश और जीव इन चारों की प्रदेश संख्या समान है किन्तु अवगाहन की दृष्टि से समान नहीं है। धर्म, अधर्म और लोकाकाश के परिमाण में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। संसारी जीव का परिमाण सदा सर्वदा समान नही रहता। उसमें संकोच और विस्तार होता रहता है। तथापि अणु के समान संकुचित और केवली समुद्घात को छोड़कर लोकाकाश जितना विकसित नहीं होता, एतदर्थ ही जीव को मध्यम परिमाण वाला कहा है। संसार अवस्था में जीव शरीर की मर्यादा में आबद्ध होता है, एतदर्थ उसका जो परिमाण है वह स्वतंत्र उसका अपना नहीं है। कार्मण शरीर का छोटापन या बड़ापन चारों गति की अपेक्षा से है। मुक्त दशा में वह नहीं होता। आत्मा के जो असंख्य प्रदेश बताये गये हैं वह केवल आत्मा का परिमाण जानने के लिए हैं। वह आरोपित है, वास्तविक नहीं । वास्तव में आत्मा अखण्ड द्रव्य रूप है। उसमें कभी भी संघात-विघात नहीं होता।

निश्चय-दृष्टि से जीव का लक्षण चेतना है। सभी प्राणियों में सत्ता के रूप में चैतन्य शक्ति अनन्त है। किन्तु उसका विकास सभी जीवों में समान नहीं होता। ज्ञान के आवरण की अधिकता या न्यूनता के अनुसार उसका विकास कम-ज्यादा होता है। अत: जीव और अजीव का भेद बताते हुए कहा है-केवल ज्ञान का अनन्तवाँ भाग तो सभी जीवों मे विकसित रहता है। यदि वह भी आवृत हो जाये तो जीव अजीव हो जाए, किन्तु ऐसा कभी होता नहीं है।

चैतन्य आत्मा का विशिष्ट गुण है। यह गुण आत्मा के अतिरिक्त किसी भी द्रव्य में नहीं है, अतएव आत्मा को एक स्वतंत्र द्रव्य माना गया है। उसमे पदार्थ के व्यापक लक्षण-अर्थ-क्रिया कारित ओर सत् दोनों घटते हैं। आत्मा का ज्ञान-प्रवाह निरन्तर प्रवाहित है। वह उत्पाद-व्यय युक्त होने पर भी ध्रुव है।

मुक्त अवस्था को प्राप्त आत्मा स्व-स्वरूप को प्राप्त कर लेने से परमात्मा हो जाता है। आत्मा और परमात्मा का भेद मिट जाता है। सभी मुक्त आत्मा पृथक-पृथक अस्तित्व रखती हैं, किन्तु अद्धैत वेदान्त के समान एकरूप नहीं होते। ज्ञान और दर्शन रूप चेतना का, जो जीव का स्वभाव है, अभाव नहीं होता। कर्म का पूर्ण

अभाव हो जाने से तज्जन्य शरीर, जरा, व्याधि, रूप, दु:ख, वृद्धि-ह्रास आदि कुछ भी नहीं रहता, वे सभी कर्मो के सम्पर्क से होते हैं। अतएव मुक्तात्मा को सत्-चित-आनन्द कहा जाता है। उनका निवास ऊँचे लोक के चरम भाग में होता है। मुक्त जीव अशरीरी होते हैं। उसमें कम्पन्न नहीं होता, अकम्पित दशा में ही जीव की मुक्ति होती है और वे हमेशा उसी स्थिति में रहते हैं। मुक्त अवस्था में अलौकिक आत्मिक सुख की अनुभूति होती है। मुक्त आत्माओं से संसारी आत्मा संख्या की दृष्टि से अनन्तानन्त गुनी अधिक है। मुक्त आत्माओं में कर्मरहित होने से किसी प्रकार का भेद नहीं है। सभी सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सकल कर्मो के बन्धन से रहित हैं। मुक्त आत्मा की सर्वतन्त्र स्वतंत्र सत्ता है। वह किसी दूसरी सत्ता का अवयव व विभिन्न अवयवों का संघात नहीं है। मुक्त जीवों के विकास की स्थिति में भेद नहीं होता। आत्मा अपने आप में पूर्ण है अत: उसे अन्य किसी दूसरे पर आश्रित रहने की आवश्यकता नही। मुक्त आत्मा का पुनरावर्तन नहीं होता।

योग

जैन परम्परा में योग शब्द वैदिक परम्परा से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैनागम में मन, वचन और कायिक प्रवृत्ति को योग कहा है। आत्मा में रही हुई शक्ति (वीर्य) तो एक ही है पर उसका उपयोग करने के साधन तीन हैं - मन, वचन और काया। इनके आलम्बनरूप योग के भी तीन प्रकार हैं।

1. काय योग - काया के आलंबन से आत्मशक्ति का उपयोग । इसके सात उपभेद है : औदारिक काय योग, औदारिक मिश्र काय योग, वैक्रियिक काय योग, वैक्रियिक मिश्र काय योग, आहार काय योग आहारक मिश्र काय योग, कार्मण काय योग।
2. वचन योग - वचन के आलंबन से आत्मशक्ति का उपयोग। इसके भी चार उपभेद हैं: सत्य, असत्य, उभय, अनुभय।
3. मनोयोग - मन के आलंबन से आत्मशक्ति का उपयोग। इसके भी चार उपभेद हैं : सत्य, असत्य उभय, अनुभय।

इनमें मनोयोग या मानसिक प्रवृत्ति तीनों का केन्द्र है। क्योकि कर्म का बन्ध वचन और काया की प्रवृत्ति से नहीं होता बल्कि परिणामों (भावों) से होता है जो मानसिक प्रवृत्ति का प्रतिफल है।

आत्मा में अनन्त वीर्य है जिसे लब्धि-वीर्य कहा जाता है। यह शुद्ध आत्मिक सामर्थ्य है, इसका बाह्य जगत में कोई प्रयोग नहीं होता। आत्मा और

शरीर के संयोग से जो सामर्थ्य पैदा होती है, उसे करण-वीर्य या क्रियात्मक शक्ति कहते हैं। शरीर-धारी जीव में यह सत्ता बनी रहती है। इसके द्वारा जीव में भावनात्मक या चैतन्य-प्रेरित क्रियात्मक कम्पन्न होता है। यह कम्पन्न अचेतन वस्तुओं में होने वाले कम्पन्न से भिन्न है। चेतना में कम्पन्न का प्रेरक गूढ़ चैतन्य होता है जिसके द्वारा एक विशेष स्थिति का निर्माण होता है। क्रियात्मक शक्ति जनित कम्पन्न के द्वारा आत्मा और कर्म-परमाणुओं का संयोग होता है, जिसे आस्रव कहा जाता है। शुभ और अशुभ परिणाम आत्मा की क्रियात्मक शक्ति के प्रवाह हैं। ये अजस्र बने रहते है। दोनों एक साथ तो नहीं, दोनों में एक एक अवश्य रहता है। शुभ परिणति के समय शुभ और अशुभ परिणति के समय अशुभ कर्म-परमाणुओं का आकर्षण होता है।

पुद्गलों को आकृष्ट करना, उनसे सम्बद्ध होना आत्मा की योग्यता है। ऐसा न हो तो आत्मा और पुद्गल का संयोग घटित नहीं होता। आत्मा अनादि है अत: यह योग्यता तथा संयोग भी अनादि है। कर्म में आत्मा के परिणामों के अनुरूप परिणत होने की योग्यता है, इसी कारण आत्मा का कर्मों पर कर्तृत्व घटित होता है।

अध्यात्म, भावना, ध्यान, समता तथा वृतिसंक्षय - ये योग हैं। क्योंकि ये आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़ते हैं। ये पाँचों उत्तरोत्तर श्रेष्ठ-उत्कृष्ट हैं। अर्थात् अध्यात्म से भावना, भावना से ध्यान, ध्यान से समता तथा समता से वृतिसंक्षय-क्रमश: एक-एक से उच्चतर यौगिक विकास के सूचक हैं।

आत्मा का कर्म के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार से संयोग होता है। अतएव उसके भिन्न रूप देखने में आते हैं। इस भिन्नता का कारण जीव के अपने स्वभाव या प्रकृति को छोड़कर और दूसरा नहीं है। वास्तव में यही यथार्थ कारण है, ऐसा मानना चाहिए।

उपयोग-उपयोग शब्द आत्मा के ज्ञान-दर्शन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस उपयोग के साथ आत्मा के अन्य लक्षण भी आगम में बताये गये हैं। ये आठ प्रकार के हैं - (1) अनंत ज्ञान (2) अनंत दर्शन (3) अनन्त चारित्र (यथाख्यात स्वरूप), (4) अनंत वीर्य (शक्ति), (5) अनामी (अरूपीपना), (6) अगुरूलघुत्व, (7) अनंत सुख (अव्याबाध सुख) और (8) अक्षय स्थिति। आत्मा के ये गुण कार्मण वर्गणा से ढक गये है अत: जीव द्वारा अनुभव नहीं किए जाते हैं। जीव द्वारा आत्म-विकास की प्रक्रिया अपनाने पर ही कार्मण वर्गणा के ये आवरण हटाये जा सकते हैं और तब आत्मा की शुद्ध अवस्था प्रकट होती है।

जितनी भी शरीरधारी आत्माएं हैं उन्हें शुद्ध आत्मा नहीं कहा जा सकता है। वे अशुद्ध आत्माएं हैं। शुद्ध आत्मा में कोई भी आवरण नहीं होता, अशुद्धि नहीं होती। संसारी जीवों की आत्मा बंधन युक्त हैं, आवरण युक्त हैं, इसलिए अशुद्ध हैं, लौकिक आत्माएं हैं। इनमें आत्मा और पुद्गल दोनों का योग है।

संसार की सब आत्माओं को कर्मों के उदय, क्षयोपशम और क्षय के आधार पर तीन वर्गों में बांटा जा सकता है - (1) बहिरात्मा (2) अंतरात्मा (3) परमात्मा। बहिरात्मा और अंतरात्मा सैद्धांतिक शब्द हैं। व्यवहार में इसके लिए दुरात्मा और महात्मा शब्दों का प्रयोग किया जाता है। दुरात्मा या बहिरात्मा औदयिक भाव है। महात्मा अथवा अंतरात्मा क्षायोपशमिक भाव है। स्वरूप उपलब्धि ही परमात्मा है। अंतरात्मा के तीन भेद किये गये हैं :-

जघन्य अंतरात्मा	-	चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव
मध्यम अंतरात्मा	-	पंचम से 11 वें गुणस्थान तक
उत्कृष्ट अंतरात्मा	-	12वें गुणस्थान में स्थित आत्मा

सशरीर परमात्मा अर्हत है (13 वां गुणस्थान)। शरीर रहित परमात्मा सिद्ध है। प्रथम तीन गुणस्थानवर्ती जीव बहिरात्मा है।

4.2 जीवों का वर्गीकरण

जीवों के सर्वप्रथम दो भेद होते हैं - सिद्ध ओर संसारी। संसारी जीव वे हैं जो संसरण करते हैं। यह आत्मा की कर्मबद्ध अवस्था है। संसारी जीवों का वर्गीकरण अनेक प्रकारों से किया गया है।

व्यवहार राशि	अव्यवहार राशि
भव्य जीव	अभव्य जीव
त्रसजीव	स्थावरजीव
सूक्ष्म जीव	बादर (स्थूल) जीव
समनस्कजीव	अमनस्कजीव

व्यवहार का अर्थ है -भेद या विभाग। जो जीव अनेक भेदों में विभक्त है वे व्यवहार राशि के जीव हैं। जो जीव निगोद से निकलकर अन्य योनियों में घूम रहे हैं वे व्यवहार राशि के अंतर्गत हैं। व्यवहार राशि में जीव संख्या में अनंत है, पर वे अव्यवहार राशिगत जीवों के अनंतवें भाग में भी नहीं आते हैं। अव्यवहार राशि जीवों का अक्षयकोष है। इस वर्ग में केवल वनस्पति के जीव हैं। वनस्पति में भी ये साधारण वनस्पति में सूक्ष्म निगोद के जीव हैं। सभी जीवों की विकास यात्रा यहीं

से प्रारंभ होती है। ये ऐसे जीव हैं जो अनादिकाल से जीवों के इसी वर्ग में उत्पन्न होते हैं ओर मरते हैं। ये संपूर्ण लोक में व्याप्त हैं। षट्खंडागम, राजवर्तिक आदि में नित्य-निगोद एवं अनित्य निगोद रूप में दो प्रकारों का वर्णन आता है। अव्यवहार राशि के सब जीव समान हैं। इनकी अवगाहन, स्थिति, आहार, उच्छवास-नि:श्वास आदि में कोई अंतर नहीं होता। इनका जन्म-मरण साथ-साथ होता है। नाड़ी के स्पंदन जितने समय में वे सत्रह बार जन्म-मरण करते हैं। अव्यवहार राशि से जीवों का निर्यात तो होता हैं, पर आयात नहीं। अव्यवहार राशि से जीव काललब्धि के योग से व्यवहार राशि में संक्रांत होते रहते हैं।

4.2.1 भवसंसरण की अपेक्षा जीव विभाग

जन्म परंपरा के परिभ्रमण के आधार पर जीवों के चार भेद बनते हैं - नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव।

1. नारक । नरक गति में रहने वाले जीव नारक कहलाते हैं। नारक जीवों का आवास स्थल रत्नप्रभा, शर्करप्रभा आदि सात पृथ्वियाँ हैं जो कि नीचे लोक में हैं। यहाँ वे लोग जाते हैं जो अत्यंत क्रूरकर्मा एवं बुरे विचार वाले होते हैं। इन भूमियों में शीत-आतप जनित वेदना बहुत होती है। मानसिक एवं दैहिक दुखों की अधिकता रहती है।
2. तिर्यंच। यह व्यवहार राशि के जीवों का सबसे बड़ा वर्ग है। एक इंद्रिय से लेकर चार इंद्रिय तक के सभी जीव निश्चित रूप से तिर्यंच होते हैं। पंचेन्द्रिय में भी समनस्क और अमनस्क के रूप में तिर्यंच का एक बड़ा विभाग है।
3. मनुष्य। विकास की सर्वाधिक क्षमता रखने वाला प्राणी मनुष्य है। मनुष्य के तीन प्रकार हैं। कर्मभूमिज, अकर्म भूमिज और सम्मूर्च्छिम। कर्म भूमि मनुष्य कर्मक्षेत्रों में उत्पन्न होते हैं एवं असि, मसि, और कृषि के आधार पर अपना जीवन यापन करते हैं। अकर्म भूमिज मनुष्य यौगलिक कहलाते हैं एवं उनके जीवनयापन के आधार कल्पवृक्ष होते हैं। ये मृदुभाषी, सहज, एवं सरल होते हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्य नाम से तो मनुष्य हैं, पर उनमें मनुष्य जैसा कुछ भी नहीं हैं। ये मनुष्यों के मल-मूत्र आदि में उत्पन्न होते हैं।

मनुष्य के कुल 303 प्रकार बताए गये हैं। कर्म भूमिज मनुष्य - 15, अकर्म भूमिज मनुष्य - 30 और अंतर्द्वीपज मनुष्य 56 प्रकार के हैं। ये प्रत्येक पर्याप्त और अपर्याप्त दो प्रकार के हैं। सम्मुर्च्छिम मनुष्य 101 प्रकार के हैं। अत: कुल योग 303 होता है।

मनुष्य सृष्टि का नियंता है। वह एक और प्रकृति के अज्ञात रहस्यों की खोज कर संसार को चमत्कृत कर रहा है वहीं दूसरी और अपने शारीरिक ओर मानसिक सुख के लिए वैज्ञानिक उपकरणों का निर्माण भी कर रहा है। साधना के द्वारा विशिष्ट शक्तियाँ और सिद्धियां पाने वाला प्राणी भी मनुष्य ही है।

4. देव। भौतिक सुख एवं समृद्धि की अपेक्षा देवों की द्यूति और ऋद्धि विशेष मानी गई है। उनके शरीर प्रकाशमान, दिव्य परमाणुओं से निष्पन्न होते हैं। देवों के चार निकाय हैं - भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्य और वैमानिक।

देवगति का आयुष्य पूरा करने के बाद कोई भी देव तत्काल पुनः देव नहीं बन सकता। इसी प्रकार नारक जीव भी मृत्यु प्राप्त कर तत्काल नरक गति में उत्पन्न नहीं होता। इन दोनों गतियों में पारस्परिक संक्रमण भी नहीं होता। देव नरकगति में उत्पन्न नहीं होते और नारक स्वर्ग में उत्पन्न नहीं होते। मनुष्य और तिर्यंच मृत्यु के बाद किसी भी गति में उत्पन्न हो सकते हैं। मोक्ष की प्राप्ति मनुष्य गति से ही संभव है।

4.2.2 षड्जीवनिकायवाद

शारीरिक परमाणुओं की भिन्नता के आधार पर जीव के छह वर्ग बनते हैं। जीवों के छह निकाय इस प्रकार है - पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। जिनका शरीर काठिन्य आदि लक्षणों वाली पृथ्वी है वे जीव पृथ्वीकायिक हैं। जिन जीवों का शरीर जल ही है वे अपकायिक जीव हैं। अग्नि, वायु और वनस्पति जिन जीवों का शरीर है वे क्रमशः अग्निकायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीव हैं। जिन जीवों के शरीर में सुख की प्राप्ति एवं दुःख की निवृत्ति हेतु चलने-फिरने की क्षमता है वे जीव त्रस कहलाते हैं। द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी जीव इस विभाग में आते हैं।

पृथ्वी, पानी आदि पांचों निकायों को जीव मानना जैन दर्शन की मौलिक स्थापना है। भगवान महावीर ने इन छह निकायों की जो व्यवस्था की उसका आधार उनका अतीन्द्रिय ज्ञान था। उन्होंने प्रत्येक जीव निकाय को देखा। यह साक्षात्कारपूर्वक किया गया वर्गीकरण है। एक पृथ्वीकाय का जीव सचित हैं, सजीव है। मिट्टी के एक ढेले में असंख्य जीव होते हैं। वे श्वास लेते हैं, आहार करते हैं। उनका आयुष्य कितना होता है? वे कहाँ से आते हैं? मरकर कहाँ जाते हैं? उनका आगमन किन-किन गतियों से होता है? किन-किन गतियों में गमन होता है ? उनमें कितना ज्ञान है? कितना कषाय होता है? आदि-आदि अनेक पहलुओं से प्रत्येक जीवनिकाय के संदर्भ में विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

4.2.2.1 पृथ्वीकाय। काठिन्य आदि लक्षणों वाली पृथ्वी ही जिनका शरीर है वे पृथ्वीकायिक जीव हैं। मिट्टी, लवण, सोना, अभ्रक आदि समस्त खनिज पृथ्वीकायिक (बादर) जीव हैं। शस्त्र परिणति से पूर्व पृथ्वी चितवती (सचित/चेतनायुक्त) कही जाती है। पृथ्वीकायिक जीवों की संख्या असंख्य है। उसके मुख्य दो भेद हैं - सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्मजीव चर्मचक्षुओं से दृष्टिगत नहीं होते । बादर जीवों के शरीर स्थूल परमाणुओं से निष्पन्न होते हैं।

पृथ्वीकाय का आयुष्य कम से कम अंतर्मुहुर्त एवं अधिक से अधिक 42000 वर्ष है। पृथ्वी कायिक जीवों का शस्त्र - शीत शस्त्र, उष्ण शस्त्र, अग्नि, उष, लवण, अम्ल और स्नेह है। इनसे अपहत होने पर पृथ्वीकायिक जीव अचित हो जाते हैं। दोनों सूक्ष्म ओर बादर पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त प्रकार से दो-दो भेद होते हैं।

4.2.2.2 अप्काय। प्रवाहशील द्रव्य जल ही जिनका शरीर है वे जीव अप्काय कहलाते हैं। ओस, हिम, कुहासा आदि जलकायिक (बादर) जीव हैं। ये संख्या की दृष्टि से असंख्य हैं। शस्त्र परिणति से पूर्व पानी सचित है। पानी के शस्त्र पृथ्वीकायवत हैं। अप्काय का आयुष्य मान जघन्यत: अंतर्मुहूर्त हैं एवं उत्कृष्ट सात हजार वर्ष है। सूक्ष्म अप्कायिक जीवों में कोई अवांतर भेद नहीं होते वे एक ही प्रकार के होते हैं। वे समग्र लोक में व्याप्त हैं। बादर जीवों में नानात्व है। दोनों सूक्ष्म और बादर अपकायिक जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त प्रकार से दो-दो भेद होते हैं।

4.2.2.3 तेजस्काय । उष्ण लक्ष्ण तेज ही जिनका शरीर है वे तेजस्कायिक जीव हैं। अंगार अग्नि, अर्चि, ज्वाला, उल्का आदि विद्युत तेजस्कायिक (बादर) जीव हैं। वे संख्या की दृष्टि से असंख्य हैं।

शस्त्र परिणति से पूर्व अग्नि सचित है। अग्निकाय के शस्त्र पृथ्वीकायवत् है। तेजस्काय का आयुष्यमान जघन्यत: अंतर्मुहूर्त एवं उत्कृष्टत: तीन दिन रात है। सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवों मे कोई अवान्तर भेद नहीं होते। बादर जीवों में नानात्व है। दोनो सूक्ष्म ओर बादर तेजस्कायिक जीव के पर्याप्त और अपर्याप्त प्रकार से दो-दो भेद होते हैं।

4.2.2.4 वायुकाय। चलनधर्मा वायु ही जिनका शरीर होता है, उन जीवो को वायुकाय कहते हैं। उत्कलिका आदि वायुकायिक (बादर) जीव हैं। वायुकाय के जीव संख्या की दृष्टि से असंख्य हैं। शस्त्र परिणति से पूर्व वायु सचित होती है।

वायुकाय की आयुस्थिति जघन्यत: अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टत: तीन हजार वर्ष की है। दोनों सूक्ष्म और बादर वायुकाय जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त प्रकार से दो-दो भेद होते हैं।

4.2.2.5 वनस्पतिकाय। लता आदि वनस्पति ही जिनका शरीर है, वे वनस्पतिकाय जीव हैं। वनस्पतिकाय के मूलत: दो भेद हैं - प्रत्येक और साधारण। जिसके एक-एक शरीर में एक-एक जीव हो उसे प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। प्रत्येक वनस्पति में शरीर का निर्माण करने वाला मूलत: एक ही जीव होता है, किन्तु उसके आश्रित असंख्य जीव होते हैं। जैसे -

वृक्ष - आम, नीम आदि
लता - करेला, ककड़ी आदि।
तृण - दूब आदि
हरित - चौलाई आदि पत्ते वाले शाक
जलरूह - कमल आदि।

सभी प्रकार के कंदमूल आदि साधारण वनस्पति हैं। सारे किसलय उत्पत्ति के समय अनंतकायिक साधारण शरीर होते हैं। वनस्पति कायिक जीवों के उत्पन्न होने के मुख्यत: आठ प्रकार माने गये हैं -

1. अग्रबीज - वह वनस्पति, जिसका सिर ही बीज हो। जैसे - कारेट आदि।
2. मूलबीज - वह वनस्पति, जिसका मूल ही बीज हो। जैसे - मूली आदि।
3. पर्वबीज - वह वनस्पति, जिसकी गाँठें ही बीज हो। जैसे ईख आदि।
4. स्कंध बीज - वह वनस्पति, जिसके स्कंध ही बीज हो। जैसे - थूहर, आलू आदि।
5. बीजरूह - वह वनस्पति, जो बीज से उत्पन्न हो। जैसे - गेहूँ आदि।
6. सम्मुच्छिम - वह वनस्पति, जो स्वयंमेव पैदा होती हो। जैसे- अंकुर आदि।
7. तृण - तृणादि घास।
8. लता - चम्पा, चमेली, तरबूज आदि की बेलें।

वनस्पति की दस अवस्थाऐं हैं - मूल, कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

वनस्पतिकाय सूक्ष्म ओर बादर दो प्रकार की होती है। बादर के दो भेद है साधारण और प्रत्येक। तीनों सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक प्रकार की वनस्पति पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार की होती है। पर्याप्त के कई भेद - प्रभेद हैं।

सूक्ष्म वनस्पति को निगोद भी कहते हैं। एक शरीर में अनंत जीवों के साथ रहने की प्रवृति को परिभाषित करते हुए उस शरीर को निगोद कहा जाता है। उन जीवों को निगोद जीव कहा जाता है। निगोद के जीवों की सघनता प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि सूई के अग्रभाग जितने अनंतकाय में असंख्य श्रेणियां है। एक श्रेणी में असंख्य प्रतर हैं। एक प्रतर में असंख्यगोलक हैं। एक गोलक में असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में अनंत जीव हैं। इनके एक ही शरीर में रहने की प्रमाणिकता इस बात से सिद्ध होती है कि वे एक साथ जन्म लेते हैं, एक साथ मरते हैं, एक साथ ही श्वास-उच्छवास एवं आहार लेते हैं। तीन शरीर में तैजस और कार्मण शरीर प्रत्येक जीव का अपना-अपना होता है। औदारिक शरीर सबका एक ही होता है।

ये सूक्ष्म निगोद के जीव जैन विज्ञान की दृष्टि से जब अव्यवहार राशि से उत्क्रमण या उद्वर्तन करते हैं तो वे स्थूल वनस्पति में विकास करते हैं। यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह परिवर्तन ऐसी स्थिति में होता हैं जब लोक में किसी प्रकार के संतुलन में परिवर्तन होता है। जब कोई जीव मोक्ष प्राप्त करता है तो संसार के जीवों के संतुलन हेतु अव्यवहार राशि के जीव उत्क्रमण करते हैं। जितने जीव मोक्ष जाते हैं उतने ही जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आ जाते हैं।

वनस्पतिकायिक जीवों की आयु जघन्यत: अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टत: दस हजार वर्ष की है। शस्त्र परिणति से पूर्व वनस्पति जीव (मूल से बीज तक) चितवान् कहे गये हैं। वनस्पति जीव में 10 प्रकार की संज्ञा पाई जाती है। संज्ञा शब्द अभिलाषा या अनुभव का वाचक है।

1. आहार संज्ञा। सभी प्रकार के वनस्पति जीव जल आदि को ग्रहण कर जीवित रहते हैं। अत: उनमें आहार संज्ञा है। अमरबेल अपने आस-पास के वृक्षों से सार खींच लेती है। कई वृक्ष रक्त शोषक भी होते हैं। ये सब आहार संज्ञा के निदर्शन हैं।
2. भय संज्ञा। कुछेक वल्लियां हाथ का स्पर्श होते ही भयभीत हो सिकुड़ जाती है। जैसे छुई-मुई आदि।
3. मैथून संज्ञा। तिलक, चंपक आदि वृक्ष स्त्रियों के पादाघात, आलिंगन आदि से पुष्पित और फलित होते हैं। कुरूम्बुक वृक्ष स्त्री के आलिंग्र से पल्लवित होता है। अशोकवृक्ष स्त्री के पादाघात से प्रमुदित होता है, अत: वनस्पति में मैथून संज्ञा है।
4. परिग्रह संज्ञा। विल्व, पलाश आदि वृक्षों की जड़ें भूमि में गड़े हुए धन पर छितर जाती हैं। लताएं अपने तंतुओं से वृक्षों को बींट लेती हैं। अत: उनमें परिग्रह संज्ञा है।
5-8 क्रोध, मान, माया और लोभ संज्ञा। कोकनद (रक्तोत्पल) क्रोध से हुंकार

करता है। सिदती बेल मान से झरने लगती है। लताएं अपने फलों को माया से ढक लेती हैं। बिल्व और पलाश लोभ से अपने मूल निधान पर फैला देता है। इन उदाहरणों से वनस्पति में क्रोध, मान, माया और लोभ संज्ञा का ज्ञान होता है।

9. औघसंज्ञा। लताएं वृक्षों पर चढ़ने के लिए अपना मार्ग पहले ही तय कर लेती हैं। वनस्पति में इसलिए औघसंज्ञा है।

10. लोकसंज्ञा। रात्रि में कमल सिकुड़ते हैं, इसलिए वनस्पति में लोकसंज्ञा है।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पांचों में अग्नि और वायु गति त्रस हैं। इन पांचों में शरीर तीन-औदारिक, तैजस् और कार्मण होता हैं, वाय में वैकिय भी होता हैं। इनमें पर्याप्ति चार - आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास पाई जाती है तथा कायबल, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य एवं स्पर्शन इंद्रिय ये चार प्राण पाए जाते हैं। उपयोग तीन हैं-मति, श्रुत अज्ञान एवं अचक्षुदर्शन। इन जीवों का चैतन्य इतना अव्यक्त होता है कि उनके दु:ख-सुख, वेदना आदि को हम नहीं जान पाते। पृथ्वी आदि स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों की अवगाहना अंगुल के असंख्येय भाग मात्र होती है। फिर भी उनमें सूक्ष्म अंतर इस प्रकार है -

अनंत वनस्पतिकायिक जीवों के शरीर	-	एक वायुकायिक जीव का शरीर।
असंख्य वायुकायिक जीवों के शरीर	-	एक तेजस्कायिक जीव का शरीर।
असंख्य तेजस्कायिक जीवों के शरीर	-	एक अप्कायिक जीव का शरीर।
असंख्य अप्कायिक जीवों के शरीर	-	एक पृथ्वीकायिक जीव का शरीर।

4.2.2.6 त्रसकाय

द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के समस्त हिलने - चलने, घूमने - फिरने वाले जीव त्रसकायिक जीव कहलाते हैं। जिन किन्हीं प्राणियों में सामने जाना, पीछे हटना, संकुचित होना, फैलना, शब्द करना, इधर-उधर जाना, भयभीत होना, दौड़ना आदि क्रियाएं है तथा जो आगति और गति के विज्ञाता हैं, वे त्रस हैं। त्रसकाय में चारों गति के जीव समाविष्ट हैं।

त्रसजीवों के प्रमुख दो भेद हैं - विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय। विकलेन्द्रिय के तीन भेद हैं - द्वीन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय। त्रसजीवों का अधिवास लोक का एक देश है, संपूर्ण लोक नहीं। त्रसजीव लोक में त्रसनाड़ी में ही रहते हैं।

द्वीन्द्रिय - जिनके स्पर्शन ओर रसन ये दो ही इन्द्रियां है वे द्वीन्द्रिय जीव हैं। कृमि, सीप, शंख, अलस, गिंडोले, पेट के कीड़े आदि द्वीन्द्रिय हैं। द्वीन्द्रिय का आयुष्य जघन्य अंतर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट 12 वर्ष है।

त्रीन्द्रिय-जिनके स्पर्शन, रसन और घ्राण ये तीन इन्द्रियां हैं वे त्रीन्द्रिय जीव हैं। चींटीं, मकोड़ा, खटमल, कुम्भी, बिच्छु, घुनका कीड़ा, चीलर- जुवा, आदि त्रीन्द्रिय जीव हैं। उनका जघन्य आयुष्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट उनपचास दिन है।

चतुरिन्द्रिय - जिनके स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु इन्द्रियां है वे चतुरिन्द्रिय जीव हैं। मक्खी, मच्छर, भंवरा, पतंग, कीट बई, टिड्डी आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं। चतुरिन्द्रिय का आयुष्य जघन्य अंतर्मुहूर्त ओर उत्कृष्ट छह मास है।

पंचेन्द्रिय-जिनके श्रोत्र आदि पांचों इन्द्रियां होती हैं वे पंचेन्द्रिय जीव हैं। पंचेन्द्रिय त्रस चार प्रकार के हैं-नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच के प्रमुख दो भेद हैं-सम्मुर्च्छिम और गर्भज। ये दोनों ही जलचर, स्थलचर और खेचर के भेद से तीन-तीन प्रकार के होते हैं। मत्स्य, कच्छप, सुसुमार, ग्राह और मकर जलचर तिर्यंच हैं। स्थलचर के दो भेद है - चतुष्पाद और परिसर्प। चतुष्पाद में एक खुर (घोड़ा आदि), द्विखुर (बैल आदि), गंडीवद (हाथी आदि) और सनखपद (सिंह आदि) प्रकार के तिर्यंच जीव होते हैं। परिसर्प में भुजपरिसर्प (गोह आदि) और उर परिसर्प (सर्प आदि) प्रकार के जीव होते हैं। चर्म पक्षी (चमगीदड़ आदि), रोमपक्षी (हंस आदि), समुद्रपक्षी (समुद्र के आकारवाले पंखों के पक्षी), विततपक्षी (फैले हुए पंखों वाले) ये चार प्रकार के खेचर जीव होते हैं।

जलचर जीवों का आयुष्य जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टत: एक करोड़ पूर्व है। स्थलचर जीवों का आयुष्य जघन्यत: अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टत: करोड़ पूर्व अधिक तीन पल्योपम है। नभचर जीवों का आयुष्य जघन्यत: अंतर्मुहूर्त एवं उत्कृष्टत: पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

उत्पत्ति के आधार पर त्रसजीवों के आठ प्रकार हैं।

1. अंडज । जो अंडो से पैदा होते हैं, जैसे-पक्षी आदि।
2. पोतज। जो जन्म के समय खुले अंगों सहित होते है, जैसे हाथी आदि।
3. जरायुज। जो जन्म के समय मांस की झिल्ली से लिपटे रहते हैं, जैसे-गाय, मनुष्य आदि।
4. रसज । जो दही आदि रसों में उत्पन्न होते हैं, जैसे - कृमि आदि।
5. स्वदेज । जो पसीने से उत्पन्न होते हैं, जैसे - जूं, लीख आदि।
6. सम्मूर्च्छिम। जो नर-मादा के संयोग के बिना पैदा होते हैं, जैसे - मक्खी, चिंटी आदि।

7. उद्भिज। जो पृथ्वी को फोड़कर बाहर निकलते हैं, जैसे-टिड्डी आदि।
8. औपपातिक। गर्भ में रहे बिना ही स्थान विशेष में पैदा होते हैं, जैसे देव और नारक।

इन जीवों में एकेन्द्रिय से लेकर असंघी पंचेन्द्रिय तक तथा नरकगति के जीव ये सब नित्य नपुंसक ही होते हैं। देवता में नपुंसक का भेद नही पाया जाता है। संज्ञी मनुष्य व संज्ञी तिर्यंच स्त्री, पुरूष और नपुंसक तीनों ही होते हैं।

उपयुक्त जल, वायु, उष्णता एवं शरीरादि के योग्य पुद्गल परमाणुओं का समवाय जब एक स्थान में होता है, उस समय अन्य स्थान से विग्रह गति से आकर जीव उत्पन्न होता है उसको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं। जो माता-पिता के रजवीर्य के बिना चारों ओर से पुद्गल को ग्रहण कर और गंदे स्थान पर जहाँ मूत्र-वीर्यादि पड़ा हुआ है, वहां उत्पन्न होते हैं वे सम्मूर्च्छन जीव हैं। वे मनुष्य की आंख से दिखाई नहीं देते। वे एक श्वासोच्छवास में 18 बार जन्म और 18 बार मरण करते हैं।

कर्म भूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यन्च, गर्भज और सम्मूर्च्छन दोनों होते हैं। भोग भूमिज तिर्यन्च गर्भज होते हैं। पर्याप्त मनुष्य गर्भज ही होते हैं। उपपाद और गर्भ जन्मवालों में नियम से लब्ध पर्याप्तक नहीं होते और और सम्मूर्च्छन मनुष्य भी नियम से लब्धपर्याप्तक होते हैं। मर्यादा दही में, आहार में, आटे में, पापड़ में, आचार में, फलों में उत्पन्न होने वाले जीव, बीज को उपयुक्त जल, वायु मिलने पर जो अंकुर उत्पन्न होता है वह जीव, गोबर में, मल में, पेट में उत्पन्न होने वाले कृमि तथा चींटी, लट, पतंग, खटमल, जोंक, बिच्छु, पटेर, शंख, सीप, तितली आदि सम्मर्च्छन जीव हैं।

4.3 जीव योनि और आहार

4.3.1 वनस्पति

वनस्पतिकायिक जीवों के मुख्यतया निम्नोक्त भेदों का उल्लेख है - बीजकायिक, पृथ्वीयोनिक वृक्ष, वृक्षयोनिक वृक्षो में वृक्ष, वृक्षयोनिक वृक्षों से उत्पन्न मूल आदि से लेकर बीज तक, वृक्षयोनिक वृक्षों से उत्पन्न अध्यारूह, वृक्षयोनिक अध्यारूहों में उत्पन्न अध्यारूह, अध्यारूहयोनिकों में उत्पन्न अध्यारूह, अध्यारूहयेानिकों अध्यारूहों में उत्पन्न मूल से लेकर बीज तक अवयव, अनेकविध पृथ्वीयोनिक तृण, पृथ्वीयोनिक तृणों में उत्पन्न तृण, तृणयोनिक तृण में उत्पन्न तृण, तृणयोनिक तृणों के मूल से लेकर बीज तक अवयव, तथा औषधि हरित, अनेकाधिक पृथ्वी में उत्पन्न आर्य वाय से लेकर कूट तक की वनस्पति, उदकयोनिक वृक्ष (अध्यारूह, तृण औषधि तथा हरित आदि), अनेकविध उदकयोनि में उत्पन्न उदक से लेकर पुष्कराक्षिभग तक की वनस्पति आदि।

पूर्वोक्त विविध प्रकार की वनस्पतियों की योनि (मुख्य उत्पत्ति स्थान) भिन्न-भिन्न हैं, पृथ्वी, वृक्ष, जल, बीज आदि में जिस वनस्पति की जो योनि है, वह वनस्पति, उसी योनि से उत्पन्न कहलाती है। वृक्षादि जिस वनस्पति के लिए जो प्रदेश उपयुक्त होता हैं, उसी प्रदेश में वह उत्पन्न होती हैं, अन्यत्र नहीं, तथा जिसकी उत्पत्ति के लिए जो काल, भूमि, जल, आकाश प्रदेश और बीज आदि आपेक्षित है, उनमें से एक के भी न होने पर वह उत्पन्न नहीं होता। तात्पर्य यह है कि वनस्पति काय विविध प्रकार के जीवों की उत्पत्ति के लिए जो काल, भूमि, जल, बीज आदि तो बाह्य निमित्त कारण है साथ ही अंतरंग कारण कर्म भी एक अनिवार्य कारण है। कर्म से प्रेरित होकर ही विविध वनस्पतिकायिक जीव नानाविध-योनियों में उत्पन्न होता है। कभी यह पृथ्वी से वृक्ष के रूप में उत्पन्न होती है, कभी पृथ्वी से उत्पन्न हुए वृक्षों से वृक्ष के रूप में उत्पन्न होती हैं, और कभी वृक्षयोनिक वृक्ष के रूप में उत्पन्न होती है और वृक्षयोनिक वृक्षों के मूल, कन्द, फल, मूल त्वचा, पत्र, बीज, शाखा, बेल, स्कंध आदि रूप में उत्पन्न होती है। इसी तरह कभी वृक्षयोनिक वृक्ष से अध्यारूह आदि चार रूपों में उत्पन्न होती है। कभी नानायोनिक पृथ्वी से तृणादि चार रूपों में, कभी औषधि आदि चार रूपों में, तथा कभी हरित आदि चार रूपों में उत्पन्न होती है। कभी वह विविधयोनिक पृथ्वी से सीधे आर्य, वाय से लेकर कूट तक की वनस्पति के रूप में उत्पन्न होती है। कभी वह उदकयोनिक उदक में वृक्ष आदि चार रूप में उत्पन्न होती है, कभी उदक से सीधे ही उदक, अवक से लेकर पुष्कराक्षिभग नाम के वनस्पति के रूप में उत्पन्न होती है।

अध्यारूह - वृक्ष आदि के ऊपर एक के बाद एक चढ़ कर जो उग जाते हैं, उन्हें अध्यारूह कहते हैं, इन अध्यारूहों की उत्पत्ति वृक्ष, तृण, औषधि एंव हरित आदि के रूप में होती है।

आहार के बिना किसी जीव की स्थिति एवं संवृद्धि (विकास) नही हो सकते। जो वनस्पतिकायिक जीव जिस पृथ्वी आदि की योनि में उत्पन्न होता है वह उसी में स्थित रहता है, और उसी से संवर्द्धन पाता है। मुख्यतया वह उसी के स्नेह (स्निग्धरस) का आहार करता है। इसके अतिरिक्त यह पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं वनस्पतिकाय के शरीर का आहार करता है। पूर्वोक्त वनस्पतिकायिक जीव जब अपने से संसृष्ट या सन्निकट किसी त्रस या स्थावर जीवों का आहार करते हैं, तब वे पूर्व युक्त त्रस या स्थावर के शरीर को उसका रस चूसकर अचित कर डालते हैं। इस

प्रकार के अनेक वृक्ष व वनस्पतियां पायी जाती है, जो मनुष्य या अन्य त्रस प्राणियों को अपने निकट आने पर खींच कर उसका आहार कर लेते हैं तत्पश्चात् त्वचा द्वारा मुक्त पृथ्वी आदि या त्रस शरीर को वे अपने रूप में परिणित कर लेते हैं। यही समस्त वनस्पतिकायिक जीवों के आहार की प्रक्रिया है। जो वनस्पति जिस प्रकार के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाले जल, भूमि आदि का आहार लेती है, उसी के अनुसार उसका वर्णादि बनता है, या आकार -प्रकार आदि बनता है। जैसे आम एक ही प्रकार की वनस्पति होते हुए भी विभिन्न प्रदेश की मिट्टी, जल, वायु एवं बीज आदि के कारण विभिन्न प्रकार के वर्णादि से युक्त, विविध आकार-प्रकार से विशिष्ट नाना शरीरों को धारण करता है।

स्नेह - प्रस्तुत प्रकरण में स्नेह शब्द का अर्थ शरीर का सार, या स्निग्ध तत्व। जिसे अमुक-अमुक वनस्पति कायिक जीव पी लेता है, या ग्रहण कर लेता है। (स्नेह का अर्थ पुरूष और स्त्री के परस्पर गात्रसंस्पर्श से जनित पदार्थ।) जब पुरूष का स्नेह-शुक्र नारी के उदर में प्रविष्ट होकर नारी के ओज (रज) के साथ मिलता है तब वह स्नेह दूध ओर पानी की तरह परस्पर एकरस हो जाता है, उसी स्नेह को गर्भस्थ जीव सर्वप्रथम ग्रहण करता है।

4.3.2 मनुष्य

कई मनुष्य कर्मभूमि में उत्पन्न होते हैं, कई अकर्म भूमि में और कई अन्तर्द्वीपों (56 अन्तर्द्वीपों) में उत्पन्न होते हैं। कोई आर्य है, कोई म्लेच्छ (अनार्य)। उन जीवों की उत्पत्ति अपने-अपने बीज और अपने-अपने अवकाश के अनुसार होती है। इस उत्पत्ति के कारण रूप पूर्व कर्म निमित योनि में स्त्री-पुरूष का मैथूनहेतुक संयोग उत्पन्न होता है। इस संयोग के होने पर उत्पन्न होने वाले वे जीव तैजस और कार्मण शरीर द्वारा दोनों के स्नेह का आहार ग्रहण करते हैं तत्पश्चात् वे जीव वहाँ स्त्रीरूप में, पुरूष रूप में और नपुंसकरूप में उत्पन्न होते हैं। सर्वप्रथम वे माता के रज और पिता के वीर्य का, जो परस्पर मिले हुए (संसृष्ट) कलुष (मलिन) और घृणित होते हैं, ओज-आहार करते हैं। उसके पश्चात् माता, जिन अनेक प्रकार की सरस वस्तुओं का आहार करती है वे जीव उसके एक देश (अंश) का ओज आहार करते हैं। क्रमशः वृद्धि एवं परिपाक को प्राप्त वे जीव माता के शरीर से निकलते हुए कोई स्त्री रूप में, कोई पुरूष रूप में, कोई नपुंसक रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव बालक होकर माता के दूध और घी का आहार करते हैं। क्रमशः बड़े होकर वे जीव चावल, कुल्माष एवं त्रस, स्थावर प्राणियों का आहार

करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी जल, तेज, वायु ओर वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं। फिर वे उनके शरीर को अचित करके उन्हें अपने रूप में परिणत कर लेते हैं। अनेकविध मनुष्यों के शरीर नानावर्ण गंध, रस और स्पर्श एवं संस्थान वाले नाना पुद्गलों से रचित होते हैं।

स्त्री, पुरूष या नपुंसक होने का सबसे प्रधान कारण प्राणी का स्वकृत कर्म है। ऐसा सिद्धान्त नहीं है कि स्त्री मर कर अगले जन्म में स्त्री ही हो, पुरूष मर कर पुरूष ही हो यह सब कर्माधीन है। कर्मानुसार ही वैसे बीज और वैसे अवकाश का संयोग मिलता है। सामान्यतया स्त्री, पुरूष या नपुंसक की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न बीज के अनुसार होती है। स्त्री का रज और पुरूष का वीर्य दोनों अविध्वस्त हों, यानी संतानोंत्पत्ति की योग्यता वाले हों- दोषरहित हों और रज की अपेक्षा वीर्य की मात्रा अधिक हो तो पुरूष की, रज की मात्रा अधिक और वीर्य की मात्रा कम हो तो स्त्री की एवं दोनों समान मात्रा में हो तो नपुंसक की उत्पत्ति होती है। सामान्यतया माता की दक्षिण कुक्षि से पुरूष की एवं वामकुक्षि से स्त्री की तथा दोनो की कुक्षि से नपुंसक की उत्पत्ति होती है।

देव ओर नारकों का आहार-नारक जीव अपने पापकर्मों का फल भोगने वाले जीव हैं, और देव प्रायः अपने शुभकर्मों का फल भोगने वाले जीव हैं। नारक जीवों का आहार एकान्त अशुभपुद्गलों का होता है, जबकि देवों का आहार शुभ पुद्गलों का होता है। देव और नारक दोनो ही ओज आहार को ग्रहण करते है कवलाहार नहीं करते। ओज आहार दो प्रकार का होता है - पहला अनाभोगकृत, जो प्रतिसमय होता रहता है, दूसरा अभोगकृत, जो जघन्य चतुर्थभक्त से लेकर उत्कृष्ट 33 हजार वर्ष में होता है।

4.3.3 पंचेन्द्रिय तिर्यंच

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पांच प्रकार के है - जलचर, स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर। इनकी सारी प्रक्रिया प्रायः मनुष्यों की उत्पत्ति आदि की प्रक्रिया के समान है। अन्तर इतना ही है कि प्रत्येक की उत्पत्ति अपने-अपने बीज और अवकाश के अनुसार होती है, तथा प्रथम आहार-ग्रहण में अन्तर है।

1. जलचर जीव सर्वप्रथम जन्म लेते ही आप्काय का स्नेह का आहार करते हैं।
2. स्थलचर जैसे चौपाये पशु सर्वप्रथम माता-पिता के स्नेह का ओज आहार करते हैं।
3. उरः परिसर्प जैसे सर्प, अजगर आदि जीव सर्वप्रथम वायु काय का आहार करते हैं।
4. भुजपरिसर्प जैसे गोह, नेवला, छिपकली, चूहा आदि जीव उरः परिसर्प के समान वायुकाय का आहार करते हैं।

5. खेचर जैसे चर्म पक्षी, लोमपक्षी आदि जीव माता के शरीर की गर्मी (स्निग्धता) का आहार करते हैं। शेष सब प्रक्रिया प्राय: मनुष्यों के समान है। वितत पक्षी और समुद्रपक्षी ढाई द्वीप से बाहर पाये जाते हैं।

4.3.4 विकलेन्द्रिय त्रस जीव

मनुष्यों एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय के सचित शरीर मे पसीने आदि में जूँ, लीख, चींचड़, (चर्मकील) आदि सचित शरीर संस्पर्श से खटमल आदि पैदा होते हैं, तथा मनुष्य के एवं विकलेन्द्रिय प्राणियों के अचित शरीर (कलेवर) में कृमि आदि उत्पन्न होते हैं। सचित अग्निकाय तथा वायुकाय से भी विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है। वर्षाऋतु में गर्मी के कारण जमीन से कुंथुआ आदि संस्वेदज तथा मक्खी, मच्छर आदि प्राणियों की उत्पत्ति होती है। वनस्पतिकाय से भ्रमर आदि विकलेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। पंचेन्द्रिय प्राणियों के मलमूत्र, मवाद आदि में भी विकलेन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं। सचित-अचित वनस्पतियों में भी घुण, कीट आदि उत्पन्न हो जाते हैं। ये जीव जहाँ-जहाँ उत्पन्न होते हैं, वहाँ-वहाँ के पार्श्ववर्ती या आश्रयदायी सचित या अचित प्राणियों के शरीरों से उत्पन्न मल, मूत्र, पसीना, रक्त, जल मवाद, आदि का ही आहार करते हैं।

4.3.5 स्थावर जीव

1) अप्कायिक जीवो के चार प्रकार हैं।

(1) वायुयोनिक अप्काय - मेंढक आदि त्रस तथा नमक और हरित आदि प्राणियों के सचित-अचित नानाविध शरीरों मे वायुयोनिक अप्काय के रूप में जन्म धारण करते हैं। इनके स्थिति, संवृद्धि और प्राथमिक आहारग्रहण का आधार वायुकाय है।

(2) अप्योनिक अप्काय - जो पूर्वकृत कर्मानुसार एक अपकाय में ही दूसरे अप्काय के रूप मे उत्पन्न होते हैं, वे अप्योनिक अप्काय कहलाते हैं। जैसे शुद्ध पानी से बर्फ के रूप में अप्काय उत्पन्न होता है। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् है।

(3) त्रस स्थावर योनिक अप्काय - ये प्राणी त्रस और स्थावरो में उत्पन्न होते हैं।

(4) उदकयोनिक उदकों में उत्पन्न त्रसकाय - उदकयोनिक उदक पानी, बर्फ आदि में कीड़े आदि के रूप में कई जीव उत्पन्न हो जाते हैं।

2) अग्निकाय जीव - चार प्रकार

(1) त्रसस्थावरयोनिक अग्निकाय

(2) वायुयोनिक अग्निकाय

(3) अग्नियोनिक अग्निकाय

(4) अग्नियोनिक अग्नि में उत्पन्न त्रसकाय

3) वायुकाय जीव - चार प्रकार

(1) त्रसस्थावर योनिक वायुकाय

(2) वायुयोनिक वायुकाय

(3) अग्नियोनिक वायुकाय

(4) वायुयोनिक वायुकाय में उत्पन्न त्रसकाय

4) पृथ्वीकाय जीव- मिट्टी से लेकर सूर्यकान्तरत्न तक अनेक प्रजाति। चार प्रकार

(1) त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर में उत्पन्न पृथ्वीकाय

(2) पृथ्वीकाय योनिक पृथ्वीकाय

(3) वनस्पतियोनिक पृथ्वीकाय

(4) पृथ्वीकाययोनिक पृथ्वीकाय में उत्पन्न त्रसकाय।

4.3.6 गर्भ विज्ञान

भगवान् महावीर ने बताया कि जो प्राणी अगले जन्म में उत्पन्न होने वाला है, वह आयुष्य सहित संक्रमण करता है। वह आयुष्य बंध पूर्वभव में कर लेता है। एक जीवन से दूसरे जीवन में प्रवेश करते समय जीव द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा अनीन्द्रिय एवं भावेन्द्रिय की अपेक्षा सइन्द्रिय होता है। अर्थात् इन्द्रिय ज्ञान की शक्ति गर्भकाल में भी होती है। पर तदनुकूल रचना तब निष्पन्न नहीं होती। जीव पूर्व शरीर को छोड़ गर्भ में प्रवेश करता है। वह सर्वप्रथम माता के ओज और पिता के शुक्र के मिश्रण का आहार लेता है। वही उसके वर्तमान जीवन का आधार है। आहार तीन प्रकार है - ओज आहार, रोम आहार, कवल आहार या प्रक्षेप आहार। उत्पत्ति के प्रथम समय में शरीर आदि प्रवृत्तियों के योग्य पुद्गलों का ग्रहण किया जाता है, वह ओज आहार है। ओजस् का अर्थ है तेजस्। यह आहार कार्मण शरीर युक्त तैजस शरीर से लिया जाता है, इसलिए इसका नाम ओज आहार है। रोम आहार पूरे शरीर से ग्रहण किया जाता है। दिन-रात, सोते-जागते, घूमते-ठहरते प्रतिक्षण रोम आहार का ग्रहण होता है। अवयवों का विकास होने के बाद गर्भावस्था में ही रोम आहार शुरू हो जाता है। जीवन के अंत तक वह चलता रहता है।

तीसरा आहार कवला आहार है। सब प्रकार के खाद्य, पेय और लेह्य पदार्थों का समावेश इसमें होता है। गर्भस्थ जीव कवलाहार नहीं करता। गर्भ में विद्यमान जीव माता के आहार पर निर्भर करता है। गर्भस्थ शिशु इस आहार से

संपोषण प्राप्त कर गर्भाशय के भीतर अपना जीवन व्यतीत करता है। गर्भस्थ शिशु के उच्चार-प्रसवण क्रियाएं नहीं होती। वह माता के भोजन का सार-अंश ही ग्रहण करता है। मल के अत्यल्प होने से तथा वायु एवं पक्वाशय का परस्पर संयोग न होने से गर्भ वायु, मल, मूत्र का त्याग नहीं करता। गर्भ का उच्छ्वास - नि:श्वास माता के उच्छ्वास - नि:श्वास पर निर्भर है। आयुर्विज्ञान के अनुसार माता द्वारा गृहीत ऑक्सीजन, पोषक तत्व अपरा (Placentra) के माध्यम से गर्भ तक पहुँचते हैं। उत्सर्जनीय पदार्थ - कार्बन डाईऑक्साइड, यूरिया आदि गर्भ से पुन: माता तक पहुँचाए जाते हैं। गर्भ द्वारा आहार एवं श्वासोच्छवास का कार्य स्वतंत्र रूप से नहीं होता।

गर्भाधान की स्वाभाविक पद्धति स्त्री-पुरूष का संयोग है। कृत्रिम रीति से भी गर्भाधान हो सकता है। स्थानांग में उसके पांच कारण बताए गये हैं। उन सबका तात्पर्य कृत्रिम रीति से वीर्य प्रक्षेप है। तिर्यंच गर्भ की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ वर्ष है। मनुष्य गर्भ की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष है। स्त्री के गर्भ में एक दो यावत् नौ लाख तक जीव उत्पन्न हो सकते हैं। वे सब निष्पन्न नही होते। अधिकांश जीव निष्पन्न हुए बिना ही मर जाते हैं।

4.3.7 उत्पत्तिस्थान (योनि)

प्राणियो के उत्पत्तिस्थान 84 लाख हैं। एक उत्पत्ति स्थान में अनेक कुल होते हैं। जैसे गोबर एक योनि हैं। उसमें कृमि कुल, कीट कुल , वृश्चिक कुल आदि अनेक कुल हैं। प्राणियों के कुल एक करोड़ साढ़े सतावन लाख हैं। जीव भांति-भांति के वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-संस्थान से युक्त होते हैं। 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श और 5 संस्थान से प्रत्येक योनि के 2000 (5x2x5x8x5) विभाग हो जाते हैं।

	स्थान	उत्पत्ति स्थान	कुल कोटि
1.	पृथ्वीकाय	350x2000= 7 लाख	12 लाख
2.	अप्काय	350x2000= 7 लाख	7 लाख
3.	तेजस्काय	350x2000= 7 लाख	7 लाख
4.	वायुकाय	350x2000= 7 लाख	7 लाख
5.	साधारण वनस्पति	500x2000= 10 लाख	
6.	प्रत्येक वनस्पति	700x2000= 14 लाख	28 लाख
7.	द्वीन्द्रिय	100x2000= 2 लाख	7 लाख
8.	त्रीन्द्रिय	100x2000= 2 लाख	8 लाख
9.	चतुरिन्द्रिय	100x2000= 2 लाख	9 लाख

10.	तिर्यंच पंचेन्द्रिय	200x2000= 4 लाख	जलचर 121/2 लाख खेचर 12 लाख स्थलचर 10 लाख उरपरिसर्प 9 लाख भुजपरिसर्प 9 लाख
11.	मनुष्य	700x2000= 14 लाख	12लाख
12.	नारक	200x2000= 4 लाख	25 लाख
13.	देव	200x2000= 4 लाख	26 लाख
		योग 84 लाख	1571/2 लाख

4.4 पर्याप्ति

जन्म के प्रारम्भ में जीवनोपयोगी पौद्गलिक शक्ति का निर्माण पर्याप्ति है। जब जीव एक स्थूल शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है, तब भावी जीवन यात्रा के निर्वाह के लिए अपने नवीन जन्म क्षेत्र में एक साथ आवश्यक पौद्गलिक सामग्री का निर्माण करता है। इसे या इससे उत्पन्न होने वाली शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्त नामकर्म के उदय से पर्याप्तियों का निर्माण होता है। पर्याप्ति के छह प्रकार हैं।

1. आहार पर्याप्ति। जिससे आहार-प्रायोग्य पुद्गलों का ग्रहण, परिणमन (खल भाग और रस भाग में) और उत्सर्जन की क्षमता हो वह आहार पर्याप्ति है। इससे औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर का निर्माण होता है।
2. शरीर पर्याप्ति। जो रस में परिणत आहार को सात धातुओं - रक्त, मांस, वसा आदि के रूप में परिणत करती है वह शरीर पर्याप्ति है। खल भाग से अस्थि और कठोर अवयव रूप और रस भाग से रक्त आदि द्रव अवयव का परिणमन होता है।
3. इन्द्रिय पर्याप्ति। जिससे इन्द्रिय के योग्य पुद्गलों का चय होता है जो धातुरूप में परिणत आहार को इन्द्रियों के रूप में परिणत करती है, वह इन्द्रिय पर्याप्ति है।
4. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति। श्वासोच्छ्वास के योग्य पुद्गलों की ग्रहण और विजर्सन की शक्ति का नाम है श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति।
5. भाषा पर्याप्ति। भाषा के योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें भाषा रूप में परिणत कर वचनयोग से उनका निःसरण करने की पौद्गलिक शक्ति का नाम है भाषा पर्याप्ति।

6. मन: पर्याप्ति। जिस शक्ति से मनन के योग्य पुद्गलों का ग्रहण, द्रव्य मन रूप में परिणमन और विसर्जन होता हैं, वह मन: पर्याप्ति है। द्रव्यमन की सहायता से और नोइन्द्रियावरण तथा वीर्यन्तराय कर्म का क्षयोपशम होने से गुणदोष का विचार व स्मरण आदि व्यापाररूप भावमन की शक्ति की पूर्णता भी मन: पर्याप्ति है।

पर्याप्तियों का आरम्भ तो एक साथ होता है किन्तु उनकी समाप्ति क्रम से होती है। तथा प्रत्येक पर्याप्ति के पूर्ण होने में अन्तर्मुहूर्तकाल लगता है और वह अंतर्मुहूर्त उत्तरोत्तर अधिक-अधिक होता है। किन्तु सामान्य से एक अंतर्मुहूर्त काल में सब पर्याप्त्यिाँ पूर्ण हो जाती हैं।

जो जीव अपने जन्म के योग्य सभी पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेता है, वह पर्याप्त कहलाता है। अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से जो जीव अपनी सारी पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाता, वह अपर्याप्त कहलाता है। द्वीइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं असंज्ञी पंचेन्द्रिय में पांच पर्याप्तियां होती हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय में छहों पर्याप्तियाँ होती हैं। सभी जीवों में पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनो भेद पाए जाते हैं।

4.5 प्राण

जिनके संयोग से जीवन और वियोग से मरण होता हैं उन्हें प्राण कहते हैं। प्राणी का जीवन प्राण शक्ति पर अवलंबित रहता है। प्राण शक्तियां दस हैं।

1. स्पर्शन इन्द्रिय प्राण	2. रसन इन्द्रिय प्राण
3. घ्राण इन्द्रिय प्राण	4. चक्षु इन्द्रिय प्राण
5. श्रोत्र इन्द्रिय प्राण	6. मनबल प्राण
7. वचनबल प्राण	8. कायबल प्राण
9. श्वासोच्छ्वास प्राण	10. आयुष्य प्राण

ये द्रव्य प्राण है जो संसारी जीवों मे पाये जाते हैं। भाव प्राण - सता, चैतन्य, सुख और ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राण हैं। ये भाव प्राण ही जीव के असली प्राण हैं। इनके बिना जीव का अस्तित्व ही नही रह सकता। संसारी जीवो में द्रव्य प्राण और अशुद्ध भाव प्राण होते हैं। मुक्त जीवों में केवल शुद्ध भावप्राण होते हैं।

प्राण शक्तियाँ सब जीवों में समान नहीं होती, कम से कम चार प्राण सबमें होते हैं- शरीर, श्वास-उच्छ्वास, आयुष्य और स्पर्शन इंद्रिय प्राण। ये जीवन शक्तियां जीवन के मौलिक आधार हैं। प्राणशक्ति और पर्याप्ति का कार्य-कारण संबंध है। जीवनी शक्ति को पौद्गलिक शक्ति की अपेक्षा रहती है। जिस प्राणी में जितनी प्राण शक्ति की योग्यता होती हैं, वह उतनी ही पर्याप्तियों का निर्माण कर सकता है।

आहार, चिंतन, जल्पन आदि सभी क्रियाऐं प्राण और पर्याप्ति - इन दोनों के सहयोग से निष्पन्न होती हैं। पर्याप्ति के पूर्ण हो जाने पर इन्द्रिय वगैरह का विषयों को ग्रहण करना आदि रूप अपने कार्य में प्रवृत्ति करना प्राण है।

एकेन्द्रिय आदि जीवों में प्राण का क्रम इस प्रकार है -

1. एकेन्द्रिय - स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण, आयुष्य प्राण -4
2. द्वीन्द्रिय - स्पर्शन प्राण, रसन प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छवास प्राण, आयुष्य प्राण और वचनबल प्राण - 6
3. त्रीन्द्रिय - पूर्वोक्त 6 और घ्राण प्राण - 7
4. चतुरिन्द्रिय - पूर्वोक्त 7 और चक्षु प्राण - 8
5. असंज्ञी पंचेन्द्रिय - पूर्वोक्त 8 और श्रोत्र प्राण - 9
6. संज्ञी पंचेन्द्रिय - पूर्वोक्त 9 और मनोबल प्राण - 10

4.6 पश्चिम में चेतना की अवधारणा

पश्चिम में चेतना को मन का गुण माना गया है। मान्यता है कि चेतना के द्वारा अनुभव किया जा सकता है, भाव और विचार उत्पन्न होते हैं, स्वयं का बोध होता है, मनोभाव बनते हैं और नष्ट हो जाते है तथा व्यक्ति अपने और वातावरण के बीच संबंध का ज्ञान करता है। कुछ दार्शनिकों के अनुसार चेतना दो प्रकार की होती है- अनुभव चेतना (Phenomenal Consciousness) और ज्ञान चेतना (Access Consciousness)। अनुभव चेतना से व्यक्ति बोध करता है कि " मैं चेतन हूँ, बोध करता हूँ । ज्ञान चेतना से हम अन्य वस्तुओं या विचारों का संज्ञान करते हैं जैसे "मुझे इन शब्दों का ज्ञान है।" सामान्य भाषा में चेतना अंत: जागरूकता है और वातावरण के प्रति संवेदनशीलता प्रकट करती है। चेतना का अभाव अचेतन अवस्था है। इसाई धर्म में चेतना को नैतिक अंत:करण माना गया है जिसमें हमारे कर्म और संकल्प अंकित रहते हैं और इन्हें केवल ईश्वर ही जानता है।

अनुभव चेतना इंद्रिय रूप है जिसके द्वारा हम वर्ण , ध्वनि , गति , संवेदन, मनोभाव आदि का अनुभव करते हैं। इन अनुभवों को जो व्यवहार से परे हैं, को क्वालिया (Qualia) कहा जाता है। ज्ञान चेतना के द्वारा हमारे मस्तिक में संग्रहित सूचना का प्रयोग, मौखिक अभिव्यक्ति, चिंतन और व्यवहार नियंत्रण के लिए किया जाता है। किसी वस्तु या विचार का संवेदन करने पर उस वस्तु या विचार संबंधी सुचना प्राप्त करना, स्व-निरीक्षण करने पर स्वयं के विचारों का ज्ञान करना,

भूतकाल की स्मृति करना, आदि ज्ञान चेतना है। कुछ विद्वान मानते हैं कि ज्ञान चेतना को समझना अनुभव चेतना से अधिक सरल है। डेनियल डेनेट (1996) के अनुसार अनुभव चेतना को ज्ञान चेतना के माध्यम से समझा जा सकता है।

अनुभव चेतना का स्थान कहाँ है और इसका स्वरूप क्या है? इसके बारे में दार्शनिकों और वैज्ञानिकों में बहुत मतभेद है। रेने डेसकार्ट का मत है कि अनुभव चेतना मस्तिष्कीय क्रिया के माध्यम से कार्य करती है और यह आत्म स्वरूप है। जार्ज बर्कले के अनुसार चेतना मन है और अमूर्तिक है। लिबनीज का मानना है कि चेतना ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है, पत्थरों में भी चेतना है। डेविड आर्मस्ट्रांग और डेनियल डेनेट मानते हैं कि अनुभव चेतना हमारें विश्वास और मान्यताओं के रूप में है और इसलिए इन्हें हमारे व्यवहार से अलग नहीं किया जा सकता है। परतुं सभी विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। कुछ विद्वान मानते है कि चेतना मस्तिष्कीय क्रिया का ही परिणाम है। कोलिन मेकगिन के अनुसार अनुभव चेतना की व्याख्या नहीं की जा सकती है। चामर्स(1996) मानते हैं कि मानसिक अनुभव भौतिक भी है और दार्शनिक भी है।

चेतना की आधुनिक धारणा मनोविज्ञान पर आधारित है। इसके अनुसार मन की संरचना बहुत जटिल है, यह कई घटकों से बनी है परन्तु जागरूकता रूपी सूत्र से बंधी हुई है। कई अध्ययन बताते हैं कि मनोवैज्ञानिक, मस्तिष्कीय या शारीरिक आघातों से चेतना आहत होती है और लुप्त भी हो सकती है। कई प्रकार के मादक द्रव्य भी मस्तिष्क और चेतना को सुप्त कर देते हैं।

पिछले कुछ सौ वर्षों से चेतना भौतिक सिद्धान्तों के रूप में मानी जाती रही है। चेतना के आधुनिक भौतिक सिद्धान्त तीन वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं।

(1) ज्ञान चेतना और व्यवहार संबंधी सिद्धान्त, (2) अनुभव चेतना के सिद्धान्त और, (3) क्वांटम उर्जा रूपी मन के सिद्धान्त । कुछ क्वांटमं –मन सिद्धान्त दोनों अनुभव चेतना और ज्ञान चेतना की व्याख्या करते हैं पर इन सिद्धान्तों की अभी तक प्रायोगिक पुष्टि नहीं हुई है।

क्रिस किंग (2003) ने चेतना के दो स्तर बताये हैं। पहले स्तर में स्वतंत्र इच्छा शक्ति के कारण सूचना मन से मस्तिष्क में प्रवेश करती है और दूसरे स्तर पर सूचना मस्तिष्क से मन में प्रवेश करती है। किंग के अनुसार मन अभौतिक है और चेतना को समझने के लिए इच्छा शक्ति को समझना आवश्यक है।

सामान्यतया यह सोचा जाता है कि मनुष्य में चेतना है परन्तु जीवाणु जैसे निम्न जीव में चेतना नहीं है । क्या पशुओं में चेतना है? इस प्रश्न पर बहुत अध्ययन

हुआ है और पाया गया है कि उनमें चेतना है। इसमें ऐसा लगता है कि चेतना जीवन से जुडी है। इसलिए कुछ विद्धानों का ध्यान चेतना के कार्य और उपयोग की ओर गया है । बरनार्ड बार्स (1997)का मानना है कि चेतना बहुआयामी है और कई प्रकार के कार्यों जैसे विकल्पों का चयन, समस्या का हल, निर्णय करना, मस्तिष्कीय उपयोग, क्रिया का नियंत्रण, दोषों की पहचान, नियोजन करना , सीखना , स्वंय को ढालना , संदर्भ बोध करना और सूचना प्राप्त करना आदि में इसका उपयोग होता है। एंटानियो दमासियो (1999) के अनुसार चेतना जीव की आत्म सुरक्षा का भाग है और कारण भी है। उसके अनुसार चेतना का व्यवहार से क्या संबंध है यह सोच का विषय है। कुछ विद्धान सोचते हैं कि व्यवहार की व्याख्या कृत्रिम ज्ञान जैसी अचेतन प्रक्रियाओं से की जा सकती है और इसका संबंध चेतना से कम ही है।

इरविन लाजलो का विचार है कि जीव में समय के साथ स्व संवेदनशीलता का विकास हुआ है। एलाइल दुरखीम ने समूह चेतना का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो मानविकी और सामाजिक संबंधों के लिए आवश्यक है। समूह चेतना और सामूहिक ज्ञान से ही मानव अनुसंधान, ज्ञान और समझ का विकास तथा वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक प्रगति करने में सफल हुआ है।

4.7 जीव विज्ञान में जीवों का वर्गीकरण

आधुनिक जीव वैज्ञानिकों ने जीव तथा उसकी आंतरिक एवं बाह्य संरचना, क्रियाओं आदि की दृष्टि से उसे अनेक वर्गों में विभाजित किया है। जीव विज्ञान को प्राणी विज्ञान एव वनस्पति विज्ञान में विभाजित किया गया है। प्राणी जगत मुख्यत: दो भागों में विभक्त है (1) प्रोटोजोआ (2) मेटोजोआ। प्रोटोजोआ बहुकोशिकीय जीव हैं वे आंखों से दिखाई देते हैं। मेरूदंड के आधार पर प्राणियों के दो विभाग हैं। (1) पृष्ठवंशीय (Vertebrate) (2) अपृष्ठवंशीय (Invertebrate)। पृष्ठवंशीय में मत्स्य वर्ग, उभयचर वर्ग, पक्षी वर्ग और स्तनधारी प्राणी हैं। अपृष्ठवंशीय में अमीबा, हायड्रा, समुद्रपुष्प, कृमि-चपटे, गोल कृमि, संघीपाद, सीपी और सितारा मछली आदि हैं। इसके अतिरिक्त शारीरिक विशेषताओं के आधार पर भी प्राणियों का वर्गीकरण किया जाता है। जैसे प्रोटोजोआ, पोरिफेरा, प्लेटीहेलमिंथिस, नेमेटोड़ा, आर्थोपोड़ा, क्रस्टेशिया, इन्सेक्ट, मायरिया, पोड़ा, एरेक्राड़ा मॉलस्का, एविनोडोरमेटा आदि।

पृष्ठवंशीय जीवों की विशेषता मेरूदण्ड के अतिरिक्त केन्द्रीय स्नायुतंत्र और आन्तरिक अस्थि तंत्र है। स्नायुतंत्र में मस्तिष्क और मेरूदण्ड में स्थित स्नायु रचना होती है। जीव का एक सिर होता है जिसमें मस्तिष्क और आंखे और कान जैसे

कोमल इन्द्रियों का वास होता है। अस्थितंत्र प्राणी को शारीरिक विकास में सहायता करता है। उच्च स्तर के पृष्ठवंशीय जीवों में निम्न स्तर के पृष्ठवंशीय जीवों की तुलना में मस्तिष्क के विभिन्न विभागों के बीच सूचना का आदान-प्रदान अधिक तीव्र हो जाता है। पृष्ठवंशीय जीवों को ही आगम में संज्ञीय (मनस्क) जीव कहा गया है।

वनस्पति जगत भी बहुत विशाल है। शरीर रचना के आधार पर उसे सपुष्प और अपुष्प दो भागों में बांटा जाता है। सपुष्प वनस्पति दो प्रकार की है। आवृत बीज और अनावृत बीज। अनावृत बीज वनस्पति एक बीज पत्री और द्वीबीज पत्री के रूप में होती है। अपुष्प वनस्पति के तीन वर्ग हैं - थैलोफाइटा (जड़, पत्ती रहित), ब्रायोफाइटा (असली जड़, मूल रहित) और टेरिडोफाइटा (सावयव-जड़-तना युक्त)। थेलोफाइटा में विषाणु, जीवाणु, कवक, शैवाल और लायकेन आदि होते हैं।

अनावृत बीजी वनस्पति में बीजांड खुले रहते हैं। इस वनस्पति विभाग में फल नहीं लगते क्योंकि उनमें फूल नहीं आते। जैसे - सायकस, मयूरपंख आदि। आवृतबीजी वनस्पति पौधे जगत् के सर्वाधिक विकसित पौधे हैं। इनके बीजांण्ड पुष्प में सुरक्षित रहते हैं। इनमें बीज बीजांडो से बनते हैं। अनाज, दाल, सब्जियाँ, फल, तेल के बीज आदि ये सभी आवृत बीज सपुष्प वनस्पति हैं।

जीव विज्ञान में करीब दो करोड़ जातियां मानी गई हैं। कई जातियां तो लुप्त हो गई हैं। यह संख्या भिन्न-भिन्न रूप में मिलती है। वह क्रम इस प्रकार है।

1) पृष्ठ वंशीय प्राणी

मत्स्य वर्ग	1500	22000
उभयचर	1900	2200
सरीसृप	4000	9000
पक्षी	25000	4600
स्तनधारी	15000	4400

2) अपृष्ठवंशीय प्राणी

प्रोटोजोआ (आदि जंतु वर्ग - अमीबा, पेराशियम)	30000
पोरिफेरा (छिद्र देही जंतु - स्पंज आदि)	10000
सीलेंटरेटा (जलचर जंतु - हाइड्रा, समुद्र पुष्प)	39000
नेमेटोडा (गोलकृमि)	5500
संखंड कृमि (केंचुआ, जोंक आदि)	6000

आर्थोपोड़ा (संधिपाद, झिंगा, केंकड़ा आदि)	892000
क्रस्टेशिया	26000
इन्सेक्ट	800000
मायरियापोडा	11000
अरेकिडा	55000
मौलस्का (सीपी, घोंघा)	45000
एविनोडोर्मेटा (कांटेदार त्वचा)	48000

4.8 कोशिका

कोशिका जन्तु एवं पौधो की संरचनात्मक इकाई है । यह वह सूक्ष्मतम संरचना है जिसका स्वतंत्र जीवन संभव है। प्रत्येक कोशिका जीव द्रव्य से भरी होती है। पादप कोशिका एक निर्जीव कोशिका भित्ति से गिरी रहती है जिसमें कई छिद्र होते हैं जिनके द्वारा एक कोशिका का दूसरी कोशिका के साथ सम्बन्ध स्थापित रहता है। ऐसे सम्पर्क सूत्रों को प्लाजमोडेस्मेटा कहते हैं। अत: कोशिका का जीव द्रव्य एक इकाई होने पर भी अन्य कोशिकाओं से संबंधित होता है। जीवद्रव्य में कई कोशिकांग धंसे हुए रहते हैं जिसमे केन्द्रक, हरितलवक, माइटोकॉन्ड्रिया गाल्जीकाय, अन्त: प्रदव्यीजालिका आदि मुख्य हैं। ये अंग दोहरी झिल्ली से संरक्षित रहते हैं। कोशिका की ऐसी संरचना केवल विकसित जीवों में देखी जा सकती है ।आद्य कोशिकाओं में ऐसी संरचनाओं का अभाव होता है। सूक्ष्मदर्शी व अभिरंजक तकनीकों में हुए विकास के फलस्वरूप जीव वैज्ञानिको ने केन्द्रक की संरचना व उपस्थिति को आधार मानकर समस्त जीवों की कोशिकाओं को दो वर्गों में बांटा है,

(1) प्रोकेरियोटिक (Prokaryotic) तथा यूकेरियोटिक (Eukaryotic)

प्रोकेरियोटिक कोशिकाएं रचना के आधार पर आद्य (Primitive) होती है क्योंकि इनमे केन्द्रक झिल्ली (Nuclear Membrane) का अभाव होता है जिससे केन्द्रक के पदार्थ (मुख्य रूप से डीएनए) कोशिका द्रव्य के सम्पर्क में रहते हैं। अर्थात् यूकेरियोटिक कोशिका की तरह जीव द्रव्य, कोशिका द्रव्य तथा केन्द्रक द्रव्य में केन्द्रक झिल्ली द्वारा विभाजित नहीं रहता है। प्रोकेरियोटिक कोशिका में कोशिकांगों का अभाव होता है तथा आनुवांशिक द्रव्य स्वतंत्र डी एन ए (बिना प्रोटीन या हिस्टोन के) के रूप में होता है जिसे न्यूक्लियोटाइड कहते हैं जो तन्तुमय पदार्थ के रूप में असंगठित रहता है। अत: गुण सूत्रों जैसी संरचना नहीं पाई जाती है। ऐसी कोशिकाओं की शरीर क्रियाएं किसी अंगों द्वारा सम्पन्न नहीं होकर कोशिकाओं में

कोशिका-कला व उसके अन्तर्वलनों (Infolding) द्वारा होती है। कोशिकाएं सूत्री विभाजन (Mitosis) द्वारा विभाजित नहीं होती हैं। इनमें अर्धसूत्री विभाजन (Merosis) का सही अर्थ में अभाव होता है। इस प्रकार की कोशिकाएं बैक्टीरिया तथा नील हरित शैवाल (Blue-green algae) में पायी जाती हैं।

यूकेरियोटिक कोशिका पूर्ण विकसित केन्द्रक वाली संरचना होती है। इनके केन्द्रक में केन्द्रक-झिल्ली विकसित व सुसंरचित होती है तथा गुण सूत्र में प्रोटीन या हिस्टोन पायी जाती है। कोशिकांग, जैसे हरित तवक (केवल पौधों में), माइटोकॉन्ड्रिया, गाल्जीकॉय, अन्तप्रदव्यी जालिका विकसित रचना के रूप में पाये जाते है। ऐसी कोशिका में श्वसन, प्रकाश संश्लेषण, उपापचय आदि क्रियाऐं सुचारू रूप से सम्पन्न होती हैं। सूत्री व अर्धसूत्री विभाजन प्रारूपिक रूप से पाया जाता है। ऐसी कोशिकाएं बीज युक्त पौधे फर्न, पर्णाज, मोसेज लीवर वर्टस, कवक, शैवाल तथा प्राणियों में पायी जाती हैं।

4.9 विकास क्रम - जीवों की श्रेणी

जीव विकास क्रम के आधार पर पृथ्वी के जीवों को चार श्रेणी में बांटा गया है।

(1) यूबेक्टेरिया - जैसे ट्रूबेक्टेरिया, मिटोकोन्ड्रिया, क्लोरोप्लास्ट्रस
(2) यूकेरियोट्स - जैसे प्रोटिस्ट्स, वनस्पति, कवक, पशु
(3) आर्किया - जैसे मिथानोजिन्स, हेलोफाइल्स, सल्फोलोबस आदि।
(4) वायरस

कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार उपरोक्त जीवन विभाग और उनके परस्पर संबंध अभी विवादास्पद हैं। आर्किया के बारे में अनिश्चितता बनी हुई है। प्राचीन काल में हुए परस्पर जीन बदली के संबंध में हाल में प्राप्त हुए साक्ष्य यह बताते हैं कि जीव विकास क्रम को समझने के लिए और जटिल मॉडल की आवश्यकता है।

उपरोक्त वर्गीकरण में वनस्पति के अंतर्गत पृथ्वी पर उगने वाले सभी पौधे, हरी काई आदि आते हैं। कवक के अन्तर्गत मशरूम, जंग, स्मट, यीस्ट, पेनिसिलीयम, सभी प्रकार के कवक, डबल रोटी के मोल्ड जीव आदि जीव हैं। पशुओं में सभी प्रकार के पशु जैसे पृष्ठवंशी जीव ऑरथोपोड, मोलुसेस, जेली मछली, समुद्र पुष्प, हाइड्रा, स्पंज आदि जीव आते हैं।

जीवाणु (यूबेक्टेरिया), आर्किया और विषाणु (वायरस) सूक्ष्म जीव हैं। इन जीवों की संख्या यूकेरियोट्स जीवों की अपेक्षा असंख्यात गुणी है और इनकी

प्रजाति भी अनेक हैं। जीव जगत को समझने के लिए सूक्ष्म जीवों का विस्तृत ज्ञान अपेक्षित है।

4.10 सूक्ष्म जीव

सूक्ष्मजीवी एक या बहुकोशीय, सूक्ष्मदर्शी से दिखने वाले जीव होते हैं। ये वायु, जल, भूमि, मृत कार्बनिक पदार्थों, जीवित या मृत पौधो या प्राणियों आदि में पाये जाते हैं। इन्हें अल्प विकसित पादप समुदाय (Lower plants) में सम्मिलित किया जाता है।

सूक्ष्म जीव प्रकृति में सर्वव्यापी हैं। ये छोटी से छोटी दराए से लेकर प्राणियों के पेट (उदर) में बहुतायत से पाये जाते हैं क्योंकि सभी प्रकार की जलवायु इनकी वृद्धि को प्रोत्साहित करती है। इन्हें भूमि, जल, वायु, आदि किसी भी पर्यावरण से एकत्र किया जा सकता है। सूक्ष्मजीव शीतोष्ण, समशीतोष्ण, तथा, उष्ण, शुष्क आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं। नमी युक्त जंगलों में इनकी अधिकता होती है। हम जैसे-जैसे वायुमण्डल की विभिन्न परतों की ओर बढ़ते हैं इनकी संख्या में निरन्तर गिरावट आती है। सूक्ष्मजीव वायु प्रवाह द्वारा भूमि से वायुमण्डल में पहुँचते हैं। ये समुद्र की अथाह गहराइयों मे भी पाये जाते हैं। भूमि में बहुतायत से पाये जाते हैं, जैसे एक ग्राम मिट्टी में लगभग 50 लाख से भी अधिक सूक्ष्मजीवी हो सकते हैं। जल के प्रवाह व नदियों द्वारा झीलों तथा समुद्रों तक पहुँचते हैं जिससे इनका वितरण अत्यधिक व्यापक हो जाता है। अत: इनकी उपस्थिति यहाँ, वहाँ व सर्वत्र होती है। प्राणियों व पौधों के शरीर मे ये स्वयं को सुरक्षित पाकर सरलता से पनपते हैं। पृथ्वी पर जो सजीव जल पीता है, खाना खाता है, श्वास लेता है वह किसी न किसी रूपमें सूक्ष्मजीवो का स्वयं के शरीर में प्रवेश करता है। इस प्रकार के प्रवेश को रोकना असंभव प्राय है। वस्तुस्थिति यह है कि समस्त सजीव व निर्जीव सूक्ष्मजीवों से पूर्णत: ढके हुए हैं। ये जीव एक और सच्चे साथी की भूमिका निभाते हैं तो दूसरी ओर विनाशकारी दुश्मन की।

4.10.1 बेक्टीरिया (जीवाणु)

जीवाणुओं के गुण अन्य सजीवों से भिन्न अवश्य हैं फिर भी कुछ गुणों में वे उनसे समान होते हैं। कई वैज्ञानिकों ने तर्क दिये हैं कि ये पादप नहीं हैं क्योंकि उनकी कोशिका भित्ती तथा उपापचयी क्रियाएं एक प्रारूपीय पादप से भिन्न हैं। परन्तु निम्न गुणों के आधार पर यह सुनिश्चित हो जाता है कि बेक्टीरिया मूलत: पादप सूक्ष्मजीव है।

पौधों को, प्राणियों से कोशिका भित्ति के आधार पर विभेदित किया जाता है। जीवाणुओं में भी सुस्पष्ट कोशिका भित्ती उपस्थित रहती है जो म्यूरेमिक अम्ल की बनी होती है। पौधों में कोशिका भित्ति सेल्यूलोस की बनी होती है।

जीवाणुओं की कतिपय जातियाँ तन्तुमय होती हैं। जीवाणु तथा पौधे स्वपोषी होते हैं और वे अपना भोजन स्वयं बनाने में सक्षम होते हैं तथा श्वसन के उत्पाद के रूप में कार्बन डाईऑक्साइड तथा जल का निर्माण करते हैं। दोनों ही जीव समूह अपना भोजन घुलनशील अवस्था में कोशिका भित्ति द्वारा अवशोषित करते हैं। जीवाणु अकार्बनिक नाइट्रोजन से सभी प्रकार के एमीनो अम्लों का संश्लेषण कर सकते हैं। यह गुण पौधो में व्यापक रूप से पाया जाता है।

बेक्टीरिया प्रकृति के सर्वव्यापी जीव हैं। ये मुख्य रूप से भूमि, जल तथा वायु में रहते हैं। ज्वालामुखी व उसके लार्वे, अत्यधिक गहरे गड्ढों तथा स्वस्थ प्राणियों के रूधिर में इनका अभाव होता है। इनकी अधिक संख्या भूमि तथा प्राणियो के आंत्र तंत्र में होती है। इसकी कतिपय जातियाँ अत्यधिक ठंडे या गर्म झरनों में पाई जाती हैं। कुछ जातियाँ 78 डि.से. पर जीवित रहती है और कुछ जातियाँ -190 डि.से. को सहन करने की क्षमता रखती हैं। कुछ जीवाणु अत्यधिक अम्लीय (1.0 पीएच से कम) तथा अत्यधिक क्षारीय (13 पी एच से अधिक) माध्यम में जीवित रह सकती हैं। जीवाणु हमारी त्वचा, मुख, आंत्र तंत्र में बहुतायत से पाये जाते हैं। वायु-मण्डल में हम जैसे-जैसे ऊपर तथा भूगर्भ में नीचे जाते हैं तब इनकी संख्या में निरन्तर गिरावट आती है।

जीवाणु किसी भी मृदा के भौतिक तथा रासायनिक गुणों का निर्धारण करते हैं। मृदा की उपरी सतह से प्राप्त एक ग्राम मिट्टी में दस लाख से एक करोड़ जीवाणुओं को देखा जा सकता है। अधिकांशत: मृदा जीवाणु भूमि की ऊपरी एक इंच मोटी परत में निवास करते हैं। बरसात का पानी सामान्यत: जीवाणु रहित होता है। जबकि भूमि की परत के एक मिली पानी में असंख्य जीवाणु पाये जाते हैं। वायु में इनकी संख्या तथा प्रकार वायु के वेग, मौसम तथा स्थान पर निर्भर करती है। जीवाणु दूध से उत्पादित उत्पाद जैसे मक्खन, दही, चीज आदि में भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार खाने योग्य मांस, आलू तथा अन्य खाद्य पदार्थों में इसकी उपस्थिति ज्ञात है। बेक्टीरिया का माप 0.5 से 5 मा.मी. तक हो सकता है। जल की एक बूंद में लगभग 50 लाख बेक्टीरिया देखे जा सकते हैं।

4.10.2 वायरस (विषाणु)

विषाणु या वायरस एक लेटिन शब्द है जिसका अर्थ है लसदार तरल विष। विषाणु प्रकृति में सर्वत्र विद्यमान हैं। ये प्राणियों, कीटों, पौधों तथा जीवाणु में विभिन्न रोग उत्पन्न करते हैं। अब तक कई सौ विषाणुओं का पता लग चुका है।

विषाणु सरल प्रकार के जीवाणु हैं जिनमें धीरे-धीरे आकारकीय व उपापचयी तंत्रों की जटिलता नष्ट हो गई जिससे ये अधिक से अधिक परपोषी कोशिकाओं पर निर्भर रहने लगे। अत: इनकी अन्तिम रचना केवल जीवन मात्र या जीन समुदाय ही रह गई जिसमें प्रोटीन्स सहचारी के रूप में पाये जाते हैं। एक अन्य धारणा के अनुसार विषाणु कोशिका द्रव्यी या केन्द्रकीय कण हैं जिन्होने परिस्थितियों के अनुसार अपना अलग से अस्तित्व बनाया है। ये कण एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक तथा एक जीव से दूसरे जीव तक स्थानान्तरित होते हैं।

विषाणुओं के कुछ कणों का आकार बडे प्रोटीन अणुओं से भी छोटा होता है। लम्बाई के आधार पर कुछ विषाणु के कण बहुत ही छोटे होते है लेकिन कुछ लम्बे विषाणुओं के कण की लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी या तिगुनी होती है जैसे अल्फा अल्फा मोजेक वायरस, आदि। गोल दिखने वाले विषाणु वास्तव में बहुतलीय होते हैं जिनका व्यास 17-60 मा.मी. तक होता है। बहुतलीय नील हरित शैवाल वायरस एल.पी.पी.-1 का व्यास 56 मा.मी. होता है तथा इसकी पूंछ 14 मा.मी. की होती है। सबसे छोटा विषाणु माप खुर-मुख पाक रोग (Foot & mouth disease) विषाणु का 10 मा.मी. का होता है। चेचक विषाणु का माप लगभग 250 मा.मी. होता है।

प्रोफेसर गेराल्ड फेनवर्ग ने टार्डिग्रेड समुदाय के जीवों का उदाहरण दिया है। ये नग्न आँखों से छोटे कीड़े की आकृति जैसे दिखाई पड़ते है पर इन्हें बोतल में कई वर्षों तक सुखाकर सुरक्षित रखा जा सकता है। इतने समय बाद भी यदि उसमें जल मिलाया जाय तो वह निर्जीव दिखाई पड़ने वाला जीव अपनी सामान्य स्थिति के रूप में हलचल करने लगता है। यह क्रिप्टोबायोसिस - गुप्त जीवन का जीता-जागता एक ऐसा उदाहरण है जो वैज्ञानिकों के लिए आज भी रहस्यमय बना हुआ है। टार्डिग्रेड वर्ग की तरह ही अन्य कई वायरस पाउडर अवस्था में वर्षों तक सुरक्षित रह सकते हैं। वे जल के प्रभाव से अपनी क्षमता को हासिल तो नहीं कर सकते पर परजीवी कोशों की सहायता से पुन: अपनी जीवन प्रक्रिया आरम्भ कर सकते हैं तथा प्रजनन कार्य में भी संलग्न हो सकते हैं।

जीव विज्ञानियों ने उन्हें सजीव माना है, जिनमें न्यूक्लिक एसिड तथा प्रोटीन जैसे योगिक हों। पर कुछ वैज्ञानिकों ने इस परिभाषा को अपूर्ण मानते हुए यह कहा है कि यह जरूरी नही कि जीवन के जो आवश्यक घटक पृथ्वी की परिस्थितियों के लिए अनिवार्य हैं, दूसरे ग्रहों के लिए भी हों। सम्भव है वहाँ जीवन का कोई और स्वरूप हो। यह भी हो सकता है कि अन्यान्य ग्रहों पर जीवन की खोज बीन करने वाले वैज्ञानिकों की मूलभूत दिशाधारा ही गलत हो। कारण कि उन पर किसी और रूप मे जीवन क्रीड़ा-कल्लोल कर रहा हो और मनुष्य अपनी सीमित जानकारियों के कारण उन्हें देखने - समझने में असमर्थ सिद्ध हो रहा हो।

विषाणु परजीवी स्वभाव का होता हें। जब वह अपने आश्रयदाता के शरीर से बाहर होता है तो वह निर्जीव होता है। लेकिन जब वह अपने आश्रयदाता के भीतर प्रवेश कर जाता है तो वह सजीव हो जाता है। ऊर्जा पैदा करने वाले तंत्र के अभाव के कारण ऐसा होता है। वह जीवनहीनता और जीवन की लकीर पर खड़ा सृष्टि का सबसे सरल जीव है। प्रोटीन के ढांचे में आर.एन.ए. और डी.एन.ए. भर होता है। इसीलिए जब विषाणु बाहर होता है तो निष्क्रिय होता है और अपने आश्रयदाता के भीतर प्रवेश करने के बाद उससे ऊर्जा प्राप्त कर सक्रिय हो जाता है और उसके भीतर रोग पैदा करने लगता है। सृष्टि की शुरूआत में पाए जाने वाले विषाणु बहुत मारक हुआ करते थे। वे जिसमे प्रवेश करते, उन्हे पुरी तरह खत्म कर देते। विकास के साथ विषाणु मारकता कम होती गई ओर वह केवल हानिकारक रह गए। सृष्टि के नवीनतम विषाणु तो सहजीवता की ओर भी अग्रसर हो रहे हैं।

4.10.3 आर्किया

आर्किया की खोज 1977 में कार्ल वूज ओर जार्ज फॉक्स द्वारा की गई। कोशिका संरचना और चयापचय प्रक्रिया की अपेक्षा आर्किया अन्य प्रोकेरियोट्स के समान ही है। परन्तु आर्किया के जीनेटिक मानचित्र और अनुवाद, जो आणविक जीव विज्ञान की मुख्य प्रक्रिया है, जीवाणुओं से नही मिलते, वे यूकेरियोट्स में मिलते जुलते हैं। एक आर्किया का व्यास में 0.1 से 15 माइक्रोमीटर होता है और कुछ आर्किया मिलकर 200 माइक्रोमीटर लम्बा धागा बना सकते हैं। जीवाणु की तरह आर्किया में भी एक ही कोशिका होती है।

पृथ्वी पर अरबों वर्ष पूर्व प्रारंभ होने वाले जीवन में आर्किया भी एक जीव है। अब यह विश्वास किया जाने लगा है कि 4 अरब वर्ष पूर्व एक ही पूर्वज से आर्किया और जीवाणु अलग-अलग रूप से विकसित हुए। करोड़ों वर्ष बाद आज

के यूकेरियोट्स के पूर्वज आर्किया से अलग हुए। वैज्ञानिक वूज का मानना है कि जीवाणु, आर्किया और यूकेरियोट्स ये तीनों ही अपने पूर्वज प्रोजीनोट नामक जीव से विकसित हुए जिसकी जिनेटिक संरचना बहुत ही अविकसित प्रकार की थी।

बहुत प्रकार के आर्किया ऐसी परिस्थिति में पनपते हैं जहाँ दूसरे प्राणी जीवित नहीं रह सकते जैसे उबलता हुआ पानी, अति क्षारीय जलाशय, गंधक वाले ज्वालामुखी, अम्लीय पानी और अति शीतोष्ण ध्रुवीय प्रदेश।

आर्किया अपना पोषण और शक्ति हाइड्रोजन गैस, कार्बन डाई ऑक्साइड और गंधक जैसे तत्वों से प्राप्त करते हैं। एक किस्म का क्षारीय वातावरण में रहने वाला आर्किया सूर्य प्रकाश से अपनी शक्ति प्राप्त करता है परन्तु इसकी प्रक्रिया अन्य वनस्पति की प्रक्रिया से भिन्न है। इस आर्किया की कोशिका के चारों ओर विद्यमान झिल्ली में एक सूर्य प्रकाश की संवेदना वाला पिगमेंट होता है। यह पिगमेंट सूर्य प्रकाश से क्रिया करके कोशिका को एटीपी बनाने की क्षमता प्रदान करता है।

4.11 समीक्षा

जीव द्रव्य की मान्यता जैन दर्शन की विशिष्टता है। भारत के अन्य दर्शन आत्मा का निरूपण तो करते है परन्तु इसकी स्वंतत्र सता केा स्वीकार नहीं करते । जीब द्रव्य और कर्म सिद्धान्त की मान्यता के बिना प्राणियों के जीवन को सही रूप में नही समझा जा सकता है। मन आत्मा का गुण नहीं है, यह आत्मा की शुद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली जीव की चिंतन और विवेक रूपी विशिष्ट क्षमता है। पंचेन्द्रिय जीव ही मन की क्षमता को प्राप्त करते हैं, इसके पूर्व जीव आत्मा अशुद्धता के कारण ऐसा नहीं करते। चेतना आत्मा का गुण है और सभी प्राणियों में विद्यमान है। पाश्चातय विद्वान चेतना को मन का गुण मानकर अनुसंधान करते हैं तो सत्य को प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार चेतना का अध्ययन करने से जीव के बारे में सतही जानकारी तो प्राप्त हो सकती है वास्तविकता को नहीं समझा जा सकता। चेतना को मस्तिष्कीय क्रिया के रूप में देखना चेतना को अमूर्त स्तर से मूर्त रूप में स्थापित करना है जो सत्य से और अधिक परे है। पाश्चात्य विद्वानों के साथ कठिनाई यह है कि वे हर तथ्य को प्रायोगिक रूप में सिद्ध करना चाहते हैं। आत्म चेतना जैसे तत्व को अनुभव तो किया जा सकता है परन्तु भौतिक उपकरणों से सिद्ध नही किया जा सकता। जब तक अनुभूति के स्तर पर उतर कर संवेदन नहीं किया जाता आत्म तत्व को जानना सभंव नही। अत: जब तक व्यक्तिगत प्रयोग और स्व-अनुभूति के साथ पुनर्जन्म सिद्धान्त को चिंतन में स्थान नहीं दिया जाता चेतना वैज्ञानिकों के लिए पहेली ही बनी रहेगी।

जैन दर्शन में जीवों का वर्गीकरण चेतना के विकास पर आधारित है और विज्ञान में यह मुख्यतया शरीर संरचना के आधार पर किया गया है। दोनो ही प्रकार के वर्गीकरण अपनी-अपनी विशिष्टताएं लिए हुए हैं और जैव विविधता की व्यवस्थित जानकारी प्रस्तुत करते हैं । दोंनो में एक विशेष समानता यह है कि जैन दर्शन सूक्ष्म निगोद जीवों को वनस्पति श्रेणी में रखता है और विज्ञान भी सूक्ष्म जीवों को पादप प्रजाति में सम्मिलित करता है। यद्यपि जैन दर्शन द्वारा मान्य सूक्ष्म निगोद जीव विज्ञान द्वारा मान्य सूक्ष्म जीवों से भी सूक्ष्म हैं फिर भी सूक्ष्म निगोद जीवों को सूक्ष्म वनस्पति मानना जैन दर्शन की वैज्ञानिकता का एक अनुपम उदाहरण है और अर्हन्त भगवान की अनन्त ज्ञान क्षमता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सूक्ष्म निगोद जीव की संरचना, कार्य और उनके प्रभाव के बारे में कुछ भी ज्ञात नही हैं क्योकि वे केवल केवलज्ञानगम्य हैं।

5. वर्गणा

5.1 वर्गणा
5.1.1 अणुवर्गणा
5.1.2 संख्याताणु वर्गणा
5.1.3 असंख्याताणु वर्गणो
5.1.4 अनंताणु वर्गणा
5.1.5 आहार वर्गणा
5.1.6 अग्राहय वर्गणा
5.1.7 तैजस वर्गणा
5.1.8 अग्राहय वर्गणा
5.1.9 भाषा वर्गणा
5.1.10 अग्राह्य वर्गणा
5.1.11 मनो वर्गणा
5.1.12 अग्राहय वर्गणा
5.1.13 कार्माण वर्गणा
5.1.14 ध्रुव वर्गणा
5.1.15 सान्तर निरन्तर वर्गणा
5.1.16 ध्रुव शून्य वर्गणा
5.1.17 प्रत्येक शरीर वर्गणा
5.1.18 ध्रुव शून्य वर्गणा
5.1.19 बादर निगोद वर्गणा
5.1.20 ध्रुव शून्य वर्गणा
5.1.21 सूक्ष्म निगोद वर्गणा
5.1.22 ध्रुव शून्य वर्गणा
5.1.23 महास्कंध वर्गणा
5.2 वर्गणा की उत्पत्ति
5.3 वर्गणा की वैज्ञानिक पहचान
5.3.1 महास्कंध वर्गणा और भौतिक पदार्थ

5.4 वर्गणा के उपकार
5.4.1 आहार वर्गणा
5.4.2 तैजस वर्गणा
5.4.3 भाषा वर्गणा
5.4.4 मनोवर्गणा
5.4.5 कार्माण वर्गणा
5.4.6 प्रत्येक शरीर वर्गणा
5.4.7 बादर निगोद वर्गणा और सूक्ष्म निगोद वर्गणा
5.5 समीक्षा

5.0 वर्गणा

5.1 वर्गणा

आचार्य मलयगिरी के अनुसार सजातीय वस्तुओं का समुदाय वर्गणा है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार समान जाति वाले पुद्गल स्कंध को वर्गणा कहते हैं। आचार्य कनकनंदी के अनुसार वर्गणा परमाणु समूह रूप में रहते हैं परन्तु परस्पर बंधते नहीं हैं अर्थात् अबंध अवस्था में रहते हैं।

एक मत के अनुसार वर्गणा के आठ प्रकार हैं : -

1. औदारिक वर्गणा - औदारिक वर्गणा से स्थावर और त्रस जीवों के शरीर का निर्माण होता हैं।
2. वैक्रिय वर्गणा - इस वर्गणा से छोटा -बड़ा, हल्का -भारी, दृश्य-अदृश्य आदि विविध क्रियाएं करने में समर्थ वैक्रिय शरीर का निर्माण होता है।
3. आहारक वर्गणा - इस वर्गणा से विचित्र शक्तिशाली पुतले का निर्माण होता है।
4. तैजस वर्गणा - इसे विद्युत परमाणु समूह कहा जा सकता है। तैजस शरीर इस पुद्गल समूह से निष्पन्न होता है।
5. कार्मण वर्गणा - कार्मण शरीर के योग्य पुद्गल समूह।
6. श्वासोच्छ्वास वर्गणा- आन-प्राण के योग्य पुद्गल समूह।
7. भाषा वर्गणा - भाषा के योग्य पुद्गल समूह।
8. मनो वर्गणा - चिंतन में सहायक बनने वाला पुद्गल समूह।

प्रथम चार वर्गणाएं स्थूल स्कंध रूप हैं अर्थात् अष्टस्पर्शी है गुरू-लघु हैं। कार्मण, भाषा और मनोवर्गणा चतु:स्पर्शी हैं, अगुरूलघु हैं। ये सूक्ष्म होती हैं। श्वासोच्छ्वास वर्गणा चतु:स्पर्शी एवं अष्टस्पर्शी (सूक्ष्म और बादर) दोनों प्रकार की हैं।

ये वर्गणाएं संपूर्ण लोक में व्याप्त हैं। जब तक इनका व्यवस्थित संगठन नहीं बनता, तब तक वे स्वानुकूल प्रवृति के योग्य रहती हैं किंतु उसे कर नहीं सकती। इनका व्यवस्थित संगठन करने वाला जीव है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में 23 प्रकार की वर्गणाएं हैं और ये सम्पूर्ण लोक में ठसाठस भरी हुई हैं। वे 23 वर्गणाएं निम्नांकित हैं।

1. अणु वर्गणा
2. संख्याताणु वर्गणा

3. असंख्याताणु वर्गणा
4. अनन्ताणु वर्गणा
5. आहार वर्गणा
6. अग्राहय वर्गणा
7. तैजस वर्गणा
8. अग्राह्य वर्गणा
9. भाषा वर्गणा
10. अग्राह्य वर्गणा
11. मनोवर्गणा
12. अग्राह्य वर्गणा
13. कार्माण वर्गणा
14. ध्रुव वर्गणा
15. सान्तर निरन्तर वर्गणा
16. ध्रुव शून्य वर्गणा
17. प्रत्येक शरीर वर्गणा
18. ध्रुव शून्य वर्गणा
19. बादर निगोद वर्गणा
20. ध्रुव शून्य वर्गणा
21. सूक्ष्म निगोद वर्गणा
22. ध्रुव शून्य वर्गणा
23. महास्कंध वर्गणा

उपरोक्त 23 वर्गणाओं में से (1) आहार वर्गणा (2) तैजस वर्गणा (3) भाषा वर्गणा (4) मनोवर्गणा (5) कार्माण वर्गणा (6) प्रत्येक शरीर वर्गणा (7) बादर निगोद् वर्गणा ओर (8) सूक्ष्म निगोद वर्गणा ही ब्रह्माण्ड के जीवों के उपयोग में आती हैं। शेष 15 वर्गणाएं विश्व की रचना/व्यवस्था में काम आती हैं।

5.1.1 अणु वर्गणा। एक-एक परमाणुओं को अणु वर्गणा कहते हैं।

5.1.2 संख्याताणु वर्गणा। द्वयणुक से लेकर उत्कृष्ट संख्यात परमाणुओं के स्कंध पर्यन्त संख्याताणु वर्गणा है।

5.1.3 असंख्याताणु वर्गणा। परितासंख्यात परमाणुओं से लेकर उत्कृष्ट असंख्यात परमाणुओं के स्कंध पर्यन्त असंख्याताणु वर्गणा है।

5.1.4 अनन्ताणु वर्गणा। उत्कृष्ट असंख्याताणु वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर अनन्ताणु वर्गणा का जघन्य होता है। उसे सिद्ध राशि के अनन्तवे भाग प्रमाण अनन्त से गुणा करने पर अनन्ताणु वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

ये चारों प्रकार की वर्गणाएं अग्राह्य हैं यानि जीव द्वारा इनका ग्रहण नहीं होता।

5.1.5 आहार वर्गणा। उत्कृष्ट अनन्तप्रदेशी वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य आहार द्रव्य वर्गणा है। फिर एक अधिक के क्रम से सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण भेदों के जाने पर उत्कृष्ट आहार द्रव्य वर्गणा होती है। आहार द्रव्य वर्गणा से औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर के योग्य पुद्गल स्कंधों की रचना होती है।

5.1.6 अग्राह्य वर्गणा। उत्कृष्ट आहार वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर अग्राह्य वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देकर जो लब्ध आवे उसे मिला देने पर अग्राह्य वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

5.1.7 तैजस वर्गणा। पूर्वोक्त अग्राहय वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर तैजस वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्ध राशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर तैजस वर्गणा का उत्कृष्ट होता है। तैजस वर्गणा के पुद्गल-स्कंध तैजस शरीर के योग्य होते हैं।

5.1.8 अग्राह्य वर्गणा। तैजस वर्गणा के उत्कृष्ट में एक परमाणु अधिक होने पर दूसरी अग्राह्य वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से गुणा करने पर इस अग्राह्य वर्गणा का उत्कृष्ट होता है। यह वर्गणा पांचों शरीर के ग्रहण योग्य नहीं है।

5.1.9 भाषा वर्गणा। पूर्वोक्त अग्राह्य वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर भाषा वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्ध राशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिला देने पर भाषा वर्गणा का उत्कृष्ट होता है। भाषा वर्गणा के परमाणु पुद्गल स्कंध चारों भाषाओं के योग्य होते हैं तथा ढोल, भेरी, नगाड़ा और मेघ का गर्जन आदि शब्दों के भी योग्य होते हैं।

जीव भाषा निकालने से पूर्व भाषा रूप में परिणत करने के लिए भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है। काल से वह एक समय की स्थिति वाले भाषा

द्रव्यों से लेकर असंख्यात समय की स्थिति वाले भाषा द्रव्यों तक को ग्रहण करता है। ये द्रव्य एक या अधिक वर्ण, गंध, रस वाले और द्विस्पर्शी या चतु:स्पर्शी होते हैं। जीव नियम से छह दिशाओं से आए हुए भाषा द्रव्यों को ग्रहण करता है क्योंकि त्रसनाड़ी में छह दिशाएं ही सम्भव हैं। जीव जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करता है उन्हें सान्तर भी ग्रहण करता है। बिना व्यवधान के यदि निरन्तर ग्रहण करता है तो जघन्य दो समय तक और उत्कृष्ट असंख्यात समयों तक निरन्तर ग्रहण करता है। भाषा के रूप में ग्रहित द्रव्यों को जीव सान्तर निकालता है, निरन्तर नहीं। ग्रहण की अपेक्षा से ही निसर्ग को सान्तर कहा गया है। इस दृष्टि से निरन्तर ग्रहण ओर निसर्ग का काल जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त तक का है।

वक्ता दो प्रकार के होते हैं, तीव्र प्रयत्न वाले और मन्द प्रयत्न वाले। तीव्र प्रयत्नवान वक्ता द्वारा छोड़े गये भाषा द्रव्य खंडित होने के कारण सूक्ष्म होने से और अन्य द्रव्यों को वासित करने के कारण अनन्तगुण वृद्धि को प्राप्त होकर लोक के अंत तक पहुँचते हैं ओर संपूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं। मंदप्रयत्न द्वारा निकाले हुए भाषा द्रव्य अभिन्न-स्थूल खंडरूप एवं अव्यक्त होते हैं। ये भाषा द्रव्य लोकान्त तक नहीं पहुँच पाते। वे असंख्यात अवगाहन वर्गणा तक जाते हैं। वहाँ जाकर भेद को प्राप्त होते हैं, फिर संख्यात योजन तक आगे जाकर विध्वंस हो जाते हैं।

5.1.10 अग्राह्य वर्गणा। भाषा वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर तीसरी अग्राह्य वर्गणा का जघन्य होता है। इससे अनन्तगुणा इस अग्राह्य वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

5.1.11 मनोवर्गणा। उपरोक्त उत्कृष्ट में एक परमाणु अधिक होने पर मनोवर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिला देने पर मनोवर्गणा का उत्कृष्ट होता है। इस वर्गणा से द्रव्यमन की रचना होती है।

5.1.12 अग्राह्य वर्गणा। मनोवर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर चौथी अग्राह्य वर्गणा का जघन्य होता है। उससे अनन्तगुणा उसका उत्कृष्ट है।

5.1.13 कार्माण वर्गणा। उपरोक्त उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर कार्माण वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर कार्माण वर्गणा का उत्कृष्ट होता

है। इस वर्गणा के पुद्गल स्कंध आठ कर्मों के योग्य होते हैं और इन्हीं से आठ प्रकार के कर्म बनते हैं।

5.1.14 ध्रुव वर्गणा। कार्माण वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर ध्रुव वर्गणा का जघन्य होता है। उसे अनन्त जीव राशि से गुणा करने पर ध्रुववर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

यहाँ ध्रुव स्कंध पद का निर्देश अन्तः दीपक है। इससे पिछली सब वर्गणाएं ध्रुव ही है। अर्थात् अन्तर से रहित हैं। यहाँ से लेकर आगे कही जाने वाली सब वर्गणाओं में अग्रहणपने की निरन्तर अनुवृत्ति करनी चाहिए।

5.1.15 सान्तरनिरन्तर वर्गणा। ध्रुव वर्गणा के उत्कृष्ट से एक अधिक होने पर सान्तरनिरन्तर वर्गणा का जघन्य होता है। उसे अनन्त जीवराशि से गुणा करने पर उसका उत्कृष्ट होता है। यह भी अग्रहण वर्गणा है, क्योकि, यह आहार, तैजस, भाषा, मन और कर्म के अयोग्य है।

5.1.16 ध्रुव शून्य वर्गणा। उपरोक्त उत्कृष्ट में एक परमाणु अधिक होने से ध्रुव शून्य वर्गणा का जघन्य होता है। उससे अनन्तगुणी जीव राशि के प्रमाण से गुणा करने पर उसका उत्कृष्ट होता है। अतीत, अनागत और वर्तमान काल में इस रूप से परमाणु पुद्गलों का संचय नहीं होता, इसलिए इसे ध्रुव शून्य वर्गणा कहा है।

5.1.17 प्रत्येक शरीर वर्गणा। शून्य वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। इस जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है।

एक जीव के एक शरीर के विस्रसोपचय सहित और नोकर्म के स्कंध को प्रत्येक शरीर वर्गणा कहते हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तैजसकायिक, वायुकायिक, देव, नारकी, आहारक शरीर, प्रमत्तसंयत, सयोग केवली और अयोगकेवली ये जीव प्रत्येक शरीर वाले होते हैं क्योकि, इनका निगोद जीवों के साथ संबंध नहीं होता।

जिनका शरीर पृथक-पृथक अर्थात् प्रत्येक होकर भी परस्पर जुड़ा होता है वे एक बन्धनबद्ध जीव माने गये हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक और अग्निकायिक मिलकर एक प्रत्येक वर्गणा बनती है। साधारण शरीर से इस प्रत्येक शरीर में बहुत अन्तर है। वहाँ शरीर एक ही होता है किन्तु यहाँ सबके अलग-अलग शरीर होते हैं। मात्र प्रत्येक शरीर एक-दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं और इसी से इन्हें एक बन्धन बद्ध मानकर इनकी एक वर्गणा मानी गई है।

5.1.18 ध्रुव शून्य वर्गणा । उपरोक्त उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य दूसरी ध्रुवशून्य वर्गणा होती है। इस जघन्य को सब मिथ्यादृष्टि जीवों के प्रमाण को असंख्यात लोक से भाग देने पर जो प्रमाण आवे उससे गुणा करने पर उत्कृष्ट भेद होता है। एकान्तवादी दृष्टि के समान यह सदा काल शून्य रूप से अवस्थित है।

5.1.19 बादरनिगोद वर्गणा। दूसरी ध्रुव शून्य वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य बादरनिगोद वर्गणा होती है। अपनी जघन्य से उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा असंख्यात़ गुणी है। बादरनिगोदिया जीवों के विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्म परमाणुओं के एक स्कंध को बादरनिगोद वर्गणा कहते हैं। यह वर्गणा क्षीणकषाय (12 वाँ गुणास्थान) के अन्तिम समय में दिखाई देती है। इस अवस्था तक पहुँचने पर अधिकांश निगोद जीव मर जाते हैं। शेष जो अनन्तान्त निगोद जीव गुणित कर्मांश रहे, उनके (बन्धन बद्ध रूप में) विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर के परमाणुओं का स्कंध जघन्य बादरनिगोद वर्गणा है। मूली, थूअर, अदरक, महामत्स्य, लतादिकाएं आदि भी बादर निगोद वर्गणा हैं। इनमें असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीर होते हैं और एक एक निगोद शरीर में अनन्तान्त निगोद जीव होते हैं।

5.1.20 ध्रुव शून्य वर्गणा। उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य तीसरी ध्रुव शून्य वर्गणा है। अपनी जघन्य से उत्कृष्ट वर्गणा असंख्यातगुणी है।

5.1.21 सूक्ष्मनिगोद वर्गणा। उत्कृष्ट ध्रुवशून्य वर्गणा से एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य सूक्ष्म निगोद वर्गणा होती है। वह जल में स्थल में और आकाश में सर्वत्र दिखलाई देती है क्योंकि बादर निगोद वर्गणा के समान इसका देशनियम नहीं है। यह सूक्ष्म निगोद जीवों के ही होती है। इन जीवों को औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरों के कर्म, नोकर्म और विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों को ग्रहण कर सबसे जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होती है।

5.1.22 ध्रुव शून्य वर्गणा (नभो वर्गणा)। उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा में एक परमाणु मिलने पर जघन्य चौथी ध्रुवशून्य वर्गणा होती है। जघन्य से उत्कृष्ट असंख्यातगुणी है।

5.1.23. महास्कंध वर्गणा। उपरोक्त उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य महास्कंध वर्गणा होती है। सबसे जघन्य महास्कंध वर्गणा में पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना उससे मिलाने पर उत्कृष्ट महास्कंध वर्गणा प्राप्त होती है।

जैसे - जैसे उत्तरोत्तर वर्गणा में अधिक अधिक परमाणु होते जाते हैं वैसे-वैसे वर्गणा अधिक श्रेत्र को व्याप्त नहीं करती, किन्तु असंख्यातगुणा कम क्षेत्र को व्याप्त करती है। जितने क्षेत्र को व्याप्त किया जाय, उसे अवगाहना कहते हैं। अर्थात् उत्तरोत्तर वर्गणा की अवगाहना असंख्यातगुणा कम होती रहती है। इस प्रकार होने में पुद्गल का स्वभाव ही कारण है।

5.2.वर्गणाओं की उत्पत्ति

एक प्रदेशी परमाणु पुद्गल वर्गणा द्विप्रदेशी आदि उपरिम वर्गणाओं के भेद से उत्पन्न होती है। संख्याताणु वर्गणा से लेकर 14 वीं ध्रुव स्कंध वर्गणा उपर के द्रव्यों के भेद से और नीचे के द्रव्यों के संघात से तथा स्वस्थान में भेद संघात से उत्पन्न होती है। सान्तर निरन्तर वर्गणा स्वस्थान की अपेक्षा भेद-संघात से होती है। यह वर्गणा प्रत्येक शरीर, बादर निगोद ओर सूक्ष्मनिगोद वर्गणाओं के भेद से उत्पन्न नहीं होती।

परमाणु वर्गणा से लेकर सान्तर निरन्तर उत्कृष्ट वर्गणा तक इन वर्गणाओं के समुदय समागम से प्रत्येक शरीर वर्गणा नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि उत्कृष्ट सान्तरनिरन्तर वर्गणाओं का अपने स्वरूप को छोड़कर एक अधिक आदि उपरिम वर्गणा रूप में परिणमन करने की शक्ति का अभाव है। क्योंकि वे प्रत्येक शरीर के अनन्तवें भाग प्रमाण होते हैं। प्रत्येक शरीर वर्गणा उपरिम वर्गणाओं के भेद या संघात से भी उत्पन्न नहीं होती, किन्तु स्वस्थान की अपेक्षा भेद-संघात से उत्पन्न होती है। बादर निगोद वर्गणा और सूक्ष्म निगोद वर्गणा भी स्वस्थान की अपेक्षा भेद-संघात से होती है।

महास्कंध वर्गणा की उत्पत्ति स्वस्थान की अपेक्षा भेद-संघात से होती है। नीचे की वर्गणाओं के संघात से दूसरी महास्कंध वर्गणा नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि वह सर्वत्र एक वर्गणारूप है। महास्कंध से एक आदि अनन्त परमाणु पुद्गलों के विलग होकर चले जाने पर भेद से अन्य महास्कंध वर्गणा होती है। उसी में एक आदि अनन्त परमाणु पुद्गलों के आ जाने पर संघात से अन्य महास्कंध वर्गणा होती है। तथा एक साथ उपचय और अपचय होने से भेद-संघात से महास्कंध वर्गणा होती है।

द्विप्रदेशी वर्गणा से लेकर 14 वीं ध्रुव स्कंध वर्गणा तक ये वर्गणाएं ध्रुव हैं। जो सान्तरनिरन्तर वर्गणाएँ अशून्य रूप हैं वे अध्रुव हैं। शून्य वर्गणाएँ भी शून्य रूप से अध्रुव हैं। शून्य का अर्थ है परमाणुओं से रहित वर्गणाएँ, किन्तु उनका शून्य रूप से सदा अवस्थान नहीं रहता। नीचे की वर्गणाएँ संघात से और उपर की वर्गणाएं भेद से उस काल में शून्य वर्गणा को अशून्य करती हैं। शून्य वर्गणाएं और अशून्य वर्गणाएँ भी वर्गणा देश की अपेक्षा ध्रुव हैं। जो वर्गणाएँ अशून्य रूप हैं वे अशून्यरूप से अध्रुव हैं क्योंकि उन वर्गणाओं का एक रूप से अवस्थान नहीं रहता।

ध्रुव शून्य वर्गणाएँ सब वर्गणाओं के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। बादरनिगोद वर्गणाएं सब वर्गणाओं के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। बादर निगोद वर्गणा से आगे की ध्रुव शून्य वर्गणाएँ सब एक श्रेणी वर्गणाओं के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। सूक्ष्म निगोद वर्गणा आगे की ध्रुवशून्य वर्गणाओं के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और सब वर्गणाओं के भी असंख्यातवें भाग प्रमाण है। महास्कंध वर्गणाएँ सब वर्गणाओं के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

शून्य वर्गणाएँ शून्य रूप से अध्रुव भी हैं, क्योंकि उपरिम और अघस्तन वर्गणाओं के भेद-संघात से शून्य वर्गणाएँ भी कालान्तर में अशून्यरूप होकर उपलब्ध होती हैं। शून्य रूप महास्कंध वर्गणा शून्य रूप से अध्रुव है। अशून्य वर्गणा अशून्य रूप से अध्रुव है क्योंकि महास्कंध वर्गणाओं का सर्वदा एक रूप से अवस्थान नहीं पाया जाता।

5.3 वर्गणाओं की वैज्ञानिक पहचान

वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में वर्गणाएँ क्या हैं ? इस प्रश्न पर विचार करें। आहार वर्गणा के बारे में कहा गया है कि यह औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरों की रचना करती है। वैज्ञानिक दृष्टि से सभी जीवों का औदारिक शरीर ऑरगेनिक यौगिकों से बना होता है जिसमें कारबन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, केलसियम, लोहा, फॉस्फोरस, आदि तत्व होते हैं। इस दृष्टि से हम प्राणियों और वनस्पतियों के शरीरों में अन्तर को कैसे समझ सकते हैं? फिर शरीर में पाए जाने वाले कार्बन आदि तत्व तो अजीव पदार्थों मे भी पाए जाते है जो इन आहार वर्गणा आदि से नहीं बने हैं। इस प्रकार कई प्रकार की विसंगतियां हैं।

भाषा वर्गणा के बारे में कहा गया है कि जीव भाषा निकालने से पूर्व भाषा वर्गणा को ग्रहण करता है जिसके पुद्गल द्विस्पर्शी, या चतु:स्पर्शी होते हैं। अर्थात् भाषा वर्गणा के पुद्गल आवेशित कण हैं और भारहीन हैं। तीव्र प्रयत्न वाले वक्ता की

भाषा संपूर्ण लोक में व्याप्त हो जाती है और मन्द प्रयत्न वाले वक्ता की भाषा संख्यात योजन जाकर नष्ट हो जाती है। तो फिर भाषा वर्गणा क्या है?

उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए वर्गणाओं को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है। परमाणु भाव की अपेक्षा एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श वाला है। विज्ञान की दृष्टि से वर्ण, रस, गंध परमाणु की कंपन आवृति से अभिव्यक्त होते हैं। परमाणु में स्निग्ध और रूक्ष गुणों में से एक गुण होता है। विद्वानों ने स्निग्ध गुण को धन आवेश और रूक्ष गुण को ऋण आवेश माना है अर्थात् परमाणु में धन आवेश या ऋण आवेश होता है। परमाणु बिना आवेश के नहीं होता। परमाणु में शीत और उष्ण गुणों में से एक गुण होता है अर्थात् परमाणुओं का एक तापमान होता है। परमाणु क्रियावान है। जब वह गति करता है तब वह गति स्पन्दनात्मक, चक्रीय, घूर्णन, स्थानांतरणात्मक आदि हो सकती है। परमाणु में स्वभावत: गतिशीलता और सक्रियता की प्रवृति पाई जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि परमाणु सदा और सर्वत्र सभी स्थितियों में सक्रिय या गतिमान बने रहते हैं। पर उनका झुकाव इस ओर होता है। इस प्रकार परमाणु में विद्युत आवेश है, स्पंदन है, गति है और उसका एक तापमान है। विद्युत आवेश, स्पंदन, गति और ताप ऊर्जा के ही रूप हैं। परमाणु की कुल ऊर्जा विद्युत आवेश ऊर्जा, स्पंदन ऊर्जा, गति ऊर्जा और ताप ऊर्जा का योग है।

परमाणु कण रूप भी होता है और तरंग रूप भी अर्थात् ऊर्जा रूप में होता है। परमाणु इतना सूक्ष्म है कि वह केवल केवलज्ञानगम्य है। इतनी सूक्ष्म अवस्था में कण रूप में और ऊर्जा रूप में क्या अन्तर होगा यह कल्पना करना ही बहुत कठिन है। यह माना गया है कि अनंत परमाणु एक ही प्रदेश में अवकाश प्राप्त कर सकते हैं। इससे ऐसा लगता है कि परमाणु ऊर्जा रूप है और जिस प्रकार अनेक दीपों का प्रकाश एक ही कक्ष में सह अवस्थान करता है वैसे ही अनंत परमाणु एक ही प्रदेश में अवस्थित हो जाते हैं। ऊर्जा रूप होते हुए भी परमाणु एक आकाश प्रदेश में ही स्थित होता है। अत: परमाणु की ऊर्जा इतनी न्यून है कि वह दूसरे प्रदेश में नहीं फैलती है। ऊर्जा का ऐसा रूप व्यवहार में देखने को नहीं मिलता। परमाणु ऊर्जा एक प्रदेश में स्थित होने के कारण ही शायद परमाणु को कण की संज्ञा भी दी गई है। इस दृष्टि से परमाणु को ऊर्जा कण कहना अधिक युक्तिसंगत होगा। परमाणु की कुल ऊर्जा बाह्य प्रभाव के अभाव में अपरिवर्तित रहती है। परमाणु की ऊर्जा, ऊर्जा का संभाव्य सूक्ष्मतम अंश है और यह व्यवहार में अनुपयोगी है। ऊर्जा का स्वभाव योगात्मक है अर्थात् दो परमाणुओं के संयोग से उनकी सम्मिलित ऊर्जा दोगुणी हो जायगी। व्यवहार में उपयोग के लिए कम

से कम अनंत परमाणुओं की ऊर्जा आवश्यक है। इतनी सूक्ष्म ऊर्जा के कारण ही परमाणु को भारहीन कहा गया है, भार नाम का गुण अनंत परमाणुओं के बंध होने पर ही उत्पन्न होता है जैसा कि नीचे बताया गया है।

वर्ण, रस, गंध और स्पर्श के भेद से परमाणुओं के नाना भेद हो जाते हैं। वर्ण, रस और गंध के अनुसार परमाणु के स्पंदन की आवृति होती है। इन गुणों के भेद के कारण परमाणु भिन्न-भिन्न आवृति वाले होते हैं। समान आवृति और गति वाले परमाणु मिलकर अपनी-अपनी जाति के समूह बनाते हैं, ऐसे समूह को वर्गणा कहते हैं। एक वर्गणा के परमाणु बिना बंध के भी साथ-साथ रह सकते हैं और एक समूह इकाई की तरह व्यवहार करते हैं। लोक में स्थित सभी परमाणु वर्गणा रूप में नहीं रहते कुल परमाणुओं का एक भाग ही वर्गणा रूप में परिणत होता है।

संख्यात परमाणुओं से संख्याताणु वर्गणा, असंख्यात परमाणुओं से असंख्याताणु वर्गणा और अनंत परमाणुओं से अनन्ताणु वर्गणा होती है। फिर जैसे-जैसे परमाणुओं की संख्या बढ़ती है उपरिम वर्गणाओं का निर्माण होता है। जैसे-जैसे उत्तरोतर वर्गणा में अधिक-अधिक परमाणु होते जाते हैं वैसे-वैसे वर्गणा संख्यात गुणा कम क्षेत्र को व्याप्त करती है, यह पुद्गल का स्वभाव बताया गया है। इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीजिए 10 परमाणुओं का समूह बन गया। यह समूह 10 प्रदेशों में नहीं व्याप्त होकर 9 प्रदेशों में ही अवगाहित हो सकता है। इस प्रकार 100 परमाणु अस्सी प्रदेशों में, 1000 परमाणु 600 प्रदेशों में, 10000 परमाणु 3000 प्रदेशों में आदि अवगाहन व्यवस्था बन सकती है। अभिप्राय यह है कि जैसे-जैसे समूह में परमाणुओं की संख्या बढ़ती है समूह के अवगाहना प्रदेशों की संख्या परमाणुओं की संख्या की अपेक्षा कम होती जाती है। इस प्रकार उपरिम वर्गणाओं में परमाणुओं की संख्या बढ़ जाने पर भी अवगाहना यानि प्रदेश संख्या कम होती जाती है। यानि उपरिम वर्गणा के एक प्रदेश में परमाणुओं की संख्या नीचे की वर्गणा के एक प्रदेश में परमाणुओं की संख्या से अधिक हाती है। अर्थात् नीचे से उपर की वर्गणा के प्रदेश में परमाणु का घनत्व बढ़ता जाता है। इसका वर्गणा पर क्या प्रभाव होता है? ऐसा प्रतीत होता है कि परमाणुओं का घनत्व बढ़ने से परमाणुओं में परस्पर बंध की संभावना बढ़ती है और एक निश्चित घनत्व के बाद बंध की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

यह कहा गया है कि संख्याताणु वर्गणा से लेकर 14वीं ध्रुव स्कंध वर्गणा उपर के द्रव्यों के भेद से, नीचे के द्रव्यों के संघात से तथा स्वस्थान भेद-संघात से

उत्पन्न होती हैं। और द्विप्रदेशी वर्गणा से लेकर 14वीं ध्रुव स्कंध वर्गणा तक सभी वर्गणाएं ध्रुव हैं। यह शायद इसलिए होता है कि 14वीं ध्रुव स्कंध वर्गणा तक सभी वर्गणाओं के परमाणुओं में परस्पर बंध नहीं हुआ है और परमाणु आसानी से एक वर्गणा से निकल कर दूसरी वर्गणा में जा सकता है। षट्गुण हानि वृद्धि के कारण परमाणु अपनी वर्तमान वर्गणा से अलग हो जाता है और परिवर्तित गुण के समान गुण वाली वर्गणा में सम्मिलित हो जाता है। इस प्रकार इन वर्गणाओं में भेद और संघात की क्रिया चलती रहती है। परन्तु किसी भी समय सभी 14 प्रकार की वर्गणाएं विद्यमान रहती है और वे ध्रुव हैं। 14 वीं वर्गणा तक सभी वर्गणाओं को चतुस्पर्शी कहा गया है। अर्थात् इनमें स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण चारो स्पर्श वाले परमाणु होते हैं। शर्त यही है कि इन परमाणुओं की आवृति और गति एक समान है।

किसी एक प्रकार की वर्गणा में परमाणुओं की जघन्य और उत्कृष्ट संख्या होती है परन्तु किसी एक विशिष्ट संख्या वाली वर्गणा का निर्माण भिन्न-भिन्न समान गुण वाले परमाणुओं से हो सकता है अर्थात् किसी एक संख्या वाली वर्गणा भिन्न-भिन्न आवृति की हो सकती है। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार की वर्गणा की एक आवृति रेन्ज होती है। जैसे आहार वर्गणा में परमाणुआं की जधन्य और उत्कृष्ट संख्या निर्धारित है और प्रत्येक संख्या के लिये एक आवृति रेन्ज है। या यह कह सकते हैं कि आहार वर्गणा में प्रत्येक आवृति वाली वर्गणा में परमाणुओं की जघन्य और उत्कृष्ट संख्या होती है। इसी प्रकार तैजस आदि वर्गणा में भी आहार वर्गणा की तरह आवृति रेन्ज होगी परन्तु तैजस वर्गणा में परमाणुओं की संख्या आहार वर्गणा की अपेक्षा अधिक होती है।

प्रत्येक वर्गणा में परमाणुओ का विद्युत आवेश होता है। कुछ परमाणुओं में स्निग्धता गुण से घन आवेश और कुछ में रूक्ष गुण से ऋण आवेश होता है। कितने परमाणु घन आवेश वाले हैं और कितने ऋण आवेश वाले हैं यह तय नहीं हो सकता। यह संभावना बहुत ही कम है कि किसी वर्गणा में धन आवेश और ऋण आवेश परमाणुओं की संख्या बराबर हो। यदि धन आवेश परमाणुओं की अधिकता है तो वर्गणा धन आवेश प्रधान गुण वाली होगी। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार की वर्गणा में हर आवृति की वर्गणा धन आवेश या ऋण आवेश वाली होती है।

परमाणु की गति निश्चित नहीं है। वह कभी मंद गति करता है और कभी तीव्र गति करता है अर्थात् परमाणु की गति में हानि-वृद्धि होती रहती है। एक वर्गणा के सभी परमाणु समान रूप से गति करते हैं, जो परमाणु ऐसा नहीं करता है वह

वर्गणा से अलग हो जायगा। इस प्रकार वर्गणा की गति में भी हानि-वृद्धि होती है। वर्गणा में आवेश होने से उसके चारो तरफ एक विद्युत क्षेत्र का निर्माण होता है और वर्गणा की गति से एक चुम्बकीय क्षेत्र का भी निर्माण होता है। इस प्रकार वर्गणा का एक विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र होता है। वर्गणा की गति में हानि-वृद्धि से विद्युत-चुम्बकीय तरंगे पैदा होती है। ये तरंगें वर्गणा की आवृति के अनुसार स्पेस में यात्रा करती हैं। इस प्रकार वर्गणाएं विद्युत-चुम्बकीय तरंगें भी हैं।

ऊर्जा स्तर की भिन्नता से वर्गणाओं की प्रकृति में भिन्नता आती है और उसी के अनुसार उनकी उपयोगिता बनती है। जीव भिन्न-भिन्न प्रकार की वर्गणाओं का भिन्न-भिन्न उपयोग करता है। आहार वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मण वर्गणा का भिन्न-भिन्न उपयोग होता है। जो वर्गणाएं जीव के उपयोग में नहीं आती उन्हें अग्राह्य वर्गणा कहा गया है। छठी, आठवीं, दसवीं और बारहवीं वर्गणाएं अग्राह्य हैं, ये जीव के उपयोगी नहीं है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि इन वर्गणाओं का कोई उपयोग ही नहीं है। भेद-संघात प्रक्रिया से अनुपयोगी वर्गणाएं उपयोगी वर्गणाओं में बदल सकती हैं।

15 वीं सान्तर निरन्तर वर्गणा से लेकर 23 वीं महास्कंध वर्गणा तक की वर्गणाओं को अष्टस्पर्शी माना गया है। अर्थात् इन वर्गणाओं में चार मूल स्पर्श के अतिरिक्त चार आपेक्षिक स्पर्श हल्का और भारी तथा मृदु और कर्कश, भी होते हैं। ऐसा लगता है कि ये चार आपेक्षिक स्पर्श परमाणुओं में बंध हो जाने से उत्पन्न होते हैं। यह माना जा सकता है कि 15 वीं सान्तर निरन्तर वर्गणा के प्रदेशों में परमाणु का घनत्व उस विशिष्ट (Critical) स्तर तक पहुँच जाता है जब बंध की प्रक्रिया घटित हो जाती है। बंध स्निग्ध और स्निग्ध परमाणुओं में स्निग्ध और रूक्ष परमाणुओं में तथा रूक्ष और रूक्ष परमाणुओं में 3.4.2 में दिए गये नियमों के अनुसार होता है। रूक्ष और रूक्ष परमाणुओं में बंध से हल्का स्पर्श उत्पन्न होता है तथा स्निग्ध और स्निग्ध परमाणुओं में बंध से भारी स्पर्श उत्पन्न होता है। बंध परमाणु और परमाणु के बीच, स्कंध और परमाणु के बीच या स्कंध और स्कंध के बीच हो सकता है। जैसे दो परमाणुओं का स्कंध बन जाने पर उससे तीसरा परमाणु भी बंध कर सकता है या स्निग्ध परमाणुओं का स्कंध और रूक्ष परमाणुओं का स्कंध बन जानें पर ये दोनो स्कंध भी आपस में बंध सकते हैं। इस प्रकार बंध को प्राप्त वर्गणा में द्रव्यमान घनत्व (Density) का गुण उत्पन्न हो जाता है क्योंकि भार का संबंध भारी और हल्का स्पर्श से है। वर्गणा में द्रव्यमान परमाणुओं की ऊर्जा का ही परिवर्तित और घनीभूत

रूप है। वर्गणा की समस्त ऊर्जा द्रव्यमान में परिणत नहीं करती, एक अशं ऊर्जा रूप में ही रहता है जिससे वर्गणा में स्पंदन, गति आदि क्रियाएं सम्पन्न होती हैं और उसका एक तापमान बना रहता है।

बंध प्रक्रिया घटित होने से वर्गणा में मृदु और कर्कश स्पर्श भी उत्पन्न हो जाते हैं। शीत और स्निग्ध स्पर्श की बहुलता से मृदु स्पर्श उत्पन्न होता है तथा उष्ण और रूक्ष स्पर्श की बहुलता से कर्कश स्पर्श उत्पन्न होता है अर्थात् जब अधिक स्निग्ध परमाणु शीत अवस्था में बंध को प्राप्त होते हैं तो मृदु स्पर्श उत्पन्न होता है और जब अधिक रूक्ष परमाणु उष्ण अवस्था में बंध को प्राप्त होते हैं तो कर्कश स्पर्श उत्पन्न होता है। मृदु और कर्कश स्पर्श का वैज्ञानिक शब्दावली में क्या अर्थ है बहुत स्पष्ट नहीं है। संभवतया मृदु और कर्कश स्पर्श का अभिप्राय बंध की शक्ति से है। बंध की शक्ति अल्प होने पर कर्कश स्पर्श और बंध की शक्ति अधिक होने पर मृदु स्पर्श माना जा सकता है। जब स्निग्ध परमाणु उष्ण अवस्था में या रूक्ष परमाणु शीत अवस्था में बंध को प्राप्त होते हैं तो बंध की शक्ति मध्यम स्तर की होनी चाहिए। इस प्रकार वर्गणा का एक देश मृदु स्पर्श और एक देश मृदु स्पर्श वाला हो सकता है। स्थूल पदार्थ में कई प्रकार के गुण पाये जाते हैं। जैसे ठोस पदार्थ में Elasticity, Plasticity, Ductility, Hardness आदि तथा तरल पदार्थ में Viscosity, surface Tension आदि। संभवतया पदार्थ के ये गुण मृदु और कर्कश स्पर्श की परिणति है। वर्गणा में मृदु और कर्कश स्पर्श के भिन्न-भिन्न प्रकार के मिश्रण पदार्थ में पृथक-पृथक भौतिक गुण उत्पन्न कर सकते हैं।

ऐसा लगता है कि सान्तर-निरन्तर वर्गणा में सभी परमाणुओं का बंध नहीं होता, कुछ प्रदेशों में बंध हो जाता है और कुछ में नहीं। शायद इसी कारण इस वर्गणा को सान्तर -निरन्तर वर्गणा कहा गया है। इसके उपर 16 वीं ध्रुव शून्य वर्गणा है तथा 18वीं, 20वीं और 22 वीं वर्गणा भी ध्रुव शून्य वर्गणा हैं। इन वर्गणाओं के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है। इन वर्गणाओं को शून्य संभवतया इसलिए कहा गया है कि ये सामान्य ज्ञानधारी मनुष्य का विषय नहीं बनती। विज्ञान के अनुसार डार्क ऊर्जा जो ब्रह्माण्ड में कुल पदार्थ का 70 प्रतिशत भाग है, भी सामान्य माध्यम से नहीं पहचानी जा सकती है। डार्क ऊर्जा की उपस्थिति का अनुमान उसके सामान्य पदार्थों पर प्रभाव से लगाया जाता है। यह संभव है कि वैज्ञानिक जिसे डार्क ऊर्जा कहते हैं उनमें शून्य वर्गणाएं हों। 22वीं वर्गणा को नभो वर्गणा कहा भी गया है जिसका अभिप्राय शायद यही है कि यह आकाश में व्याप्त है। शून्य वर्गणाओं में द्रव्यमान होता है। यह पहले

कहा गया है कि लोक में अवस्थित समस्त पुद्गल का एक छोटा भाग ही वर्गणा रूप में होता है। पुद्गल का वह बड़ा भाग जो वर्गणा रूप में नहीं है और समस्त लोक में व्याप्त है क्या उसे ही वैज्ञानिक डार्क ऊर्जा मानते है यह खोज का विषय है।

17 वीं वर्गणा प्रत्येक शरीर वर्गणा है। संभवतया इस वर्गणा के सभी परमाणु बंध को प्राप्त हो जाते हैं। यह वर्गणा प्रत्येक शरीर जीवों के लिए उपयोगी है और कथंचित् सूर्य प्रकाश रूप है जैसा कि नीचे बताया गया है। बादर निगोद वर्गणा और सूक्ष्म निगोद वर्गणा भी पूर्णतया बंध अवस्था में हैं और प्रकाश रूप ही है। कुछ आचार्यों ने इन तीनों प्रकार की वर्गणाओं को सचित माना है जो विज्ञान द्वारा मान्य नहीं हो सकता। वर्गणा परमाणु पुद्गल से निर्मित है और अजीव है। जीव के शरीर का भाग बन जाने पर ये वर्गणाऐं सचित हो सकती हैं। महास्कंध वर्गणा सबसे बड़ी वर्गणा है। इसके स्कंध ब्रह्माण्ड में ज्ञात सभी सामान्य स्थूल पदार्थ की रचना में कारण बनते हैं।

5.3.1 महास्कंध वर्गणा और भौतिक पदार्थ

महास्कंध वर्गणा से भौतिक पदार्थ की रचना कैसे होती है अब इस पर विचार करें। पहले लेपटॉन कणों को लें। इनमें सबसे कम (लगभग शून्य) द्रव्यमान वाले कण न्यूट्रीनों हैं। इन कणों में कोई विद्युत आवेश नहीं होता है। अत: जैन दृष्टि स ये कण यौगिक कण हैं। एक न्यूट्रीनों के निर्माण में कम से कम दो महास्कंध वर्गणा कण का योग है जिनमें एक ऋणात्मक आवेश वाली और एक धनात्मक आवेश वाली वर्गणा है। यह भी संभाव्य है कि अनेक ऋणात्मक और धनात्मक आवेश वाली महास्कंध वर्गणा मिलकर एक न्यूट्रीनों बनाती हैं, शर्त यही है कि दोनो प्रकार की वर्गणाओं की संख्या बराबर होनी चाहिए। ऐसे योगिक कण बंध प्रक्रिया से बनते हैं। न्यूट्रीनों कण तीन प्रकार के हैं। तीनों का द्रव्यमान लगभग शून्य है परन्तु उनके द्रव्यमान में सूक्ष्म अंतर अवश्य होना चाहिए। यह इस बात का संकेत है कि एक न्यूट्रीनो कण अनेक वर्गणाओं से बने हैं और तीन प्रकार के न्यूट्रीनों में वर्गणाओं की संख्या भिन्न-भिन्न है। वर्गणाओं की संख्या भिन्न होने के कारण तीनों न्यूट्रीनों कणों के गुणों में भी अंतर स्वाभाविक है।

एक इलेक्ट्रोन का द्रव्यमान 0.511 MeV है जो न्यूट्रीनों के द्रव्यमान की अपेक्षा कई गुना है। अत: यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि एक इलेक्ट्रोन भी यौगिक कण है। एक इलेक्ट्रोन में ऋणात्मक महास्कंध वर्गणा की मात्रा धनात्मक महास्कंध वर्गणा की मात्रा से अधिक होती है और इसके परिणामस्वरूप इलेक्ट्रोन

का आवेश ऋणात्मक होता है। म्यूआन और टाउ कण इलेक्ट्रोन से बड़े है परन्तु अस्थायी हैं। इनमें इलेक्ट्रोन की अपेक्षा अधिक महास्कंध वर्गणा होती हैं। दोनों का क्षरण होता है और वे स्थाई कणों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि म्यूआन और टाउ कणों से वर्गणा तब तक अलग होती रहती है जब तक स्थायी रचना संभव नहीं हो जाती।

बेरियॉन समुदाय के दो प्रमुख कण प्रोटोन और न्यूट्रोन हैं जो स्थायी हैं। इस समुदाय के अन्य कण अपेक्षाकृत अस्थायी हैं और सामान्यतया ब्रह्माण्ड में स्वतंत्र रूप से नहीं पाये जाते। वैज्ञानिक मानते हैं कि बेरियॉन कण क्वार्क से बने हैं। ये क्वार्क कण भी लेपटान कणों से कई गुणा भारी हैं। अत: यह विश्वास के साथ माना जा सकता है कि क्वार्क कण अनेकानेक महास्कंध वर्गणा से बने हैं। क्वार्क कणों का आवेश अंशो में होता है तथा धनात्मक और ऋणात्मक दोनों प्रकार का होता है। एक भौतिक कण में वर्गणाओं की संख्या के अनुसार किसी भी अंश का आवेश निर्मित हो सकता है। क्वार्क में एक तिहाई या दो तिहाई आवेश पाये गये हैं जो वैज्ञानिकों द्वारा अभी तक पाये गये स्थाई कणों के गुण हैं। जैन दर्शन के अनुसार अन्य अंशो में भी आवेश संभव है। एक और बात क्वार्क के संबंध में पाई जाती है। अप क्वार्क, चार्म क्वार्क और टॉप क्वार्क का आवेश बराबर है परन्तु उनका द्रव्यमान भिन्न है। इसी प्रकार डाउन क्वार्क, स्ट्रेन्जनेस क्वार्क और बोटम क्वार्क का आवेश बराबर है और उनका द्रव्यमान भिन्न है। वर्गणा रचना से कणों में इस प्रकार की भिन्नता स्पष्टतया संभव है। वास्तव में संभावनाऐं तो बहुत है और अनेक प्रकार के कण बन सकते हैं। लगभग 200 प्रकार के कण वैज्ञानिकों द्वारा अभी तक खोजे गये हैं परन्तु इनमें से अधिकांश अस्थिर होते हैं। क्यों एक निश्चित प्रकार की कण रचना ही स्थाई होती है और अन्य प्रकार की रचना अस्थाई क्यों होती है यह खोज का विषय है।

हमें ज्ञात है कि नाभिकीय विखण्डन से प्रचण्ड ऊर्जा प्राप्त होती है। यह स्थिति तब है जब नाभिकीय क्रियाओं में नाभिक के स्थिर द्रव्यमान का केवल एक प्रतिशत अंश ही ऊर्जा में परिवर्तित होता है। यदि संपूर्ण द्रव्यमान का ऊर्जा में परिवर्तन हो जाए, जैसा कि कण और प्रतिकण के संयोग से होता है, तो द्रव्यमान से प्राप्त होने वाली ऊर्जा नाभिकीय विखण्डन से प्राप्त होने वाली ऊर्जा से एक सौ गुना अधिक होगी। नाभिक निर्माण प्रक्रिया विखण्डन प्रक्रिया की विलोम प्रक्रिया है और स्वाभाविक है कि नाभिक निर्माण में भी अपार शक्ति की आवश्यकता

होगी। जैन दर्शन इसी तथ्य की पुष्टि करता है। एक क्वार्क में अनेक महास्कंध वर्गणा होती है और एक महास्कंध वर्गणा में अनंत परमाणु होते हैं। इस प्रकार एक क्वार्क में अनंत परमाणुओं की ऊर्जा है।

5.4 वर्गणा के उपकार

5.4.1 आहार वर्गणा

हमें ज्ञात है कि आहार वर्गणा से औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरों का निर्माण होता है। अब हम यह भी जानते है कि वर्गणाएँ विद्युत-चुम्बकीय स्कंध (या तरंग) हैं। अत: औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरों में समान स्वभाव वाला विद्युत - चुम्बकीय अंश पाया जाता है जो इन शरीरों की रचना में मुख्य भूमिका निभाता है। वैक्रिय शरीर अदृश्य है और अति सूक्ष्म स्कंधों से बना है। आहारक शरीर संभवतया एक विद्युतीय शरीर है जिसमें स्निग्ध परमाणुओं की प्रधानता है और वह लोक में तीव्र गति से यात्रा कर सकता है। सर्वप्रथम औदारिक शरीर पर विचार करें।

विज्ञान के अनुसार शरीर कोशिकाओं से बना है। कोशिकाएँ प्रोटोपलाज्म नामक जीवित पदार्थ से बनी होती है। इसके भी साइटोपलाज्म और नाभिक दो भाग होते है। साइटोपलाज्म अर्ध पारदर्शक जल मिश्रित जेली की तरह का होता है, जिसमें अनेक प्रकार के प्रोटीन, लवण, शर्करा और अन्य वस्तुएं होती हैं, पर नाभिक के बारे में अभी निश्चित तथ्य नहीं प्राप्त किए जा सके हैं। पण्डित श्रीराम शर्मा के अनुसार नाभिक एक तरह का तारा जैसा प्रकाश कण होता है और जीवन की यही अंतिम इकाई है। दूसरे साइटोपलाज्म में भी सभी प्रोटीन तथा हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, फोस्फोरस आदि तत्व पाये जाते हैं, यह तभी तक क्रियाशील रहते हैं जब तक नाभिक बना रहता है। नाभिक के निकलते ही यह पदार्थ वाला अंश मृत हो जाता है, निष्क्रिय हो जाता है। यद्यपि इस नाभिक को वैज्ञानिक स्वतंत्र स्थिति में प्रकट नहीं कर सके हैं पर यह न्यूक्लिक अम्ल से बना है।

एक स्वस्थ मानव शरीर में लगभग 600 खरब कोशिकाएं होती हैं। प्रत्येक नाभिक में गुणसूत्र (क्रोमोसोम) और प्रत्येक गुणसूत्र में बटी हुई रस्सी की सीढ़ी के समान संस्कार कोश (जीन्स) विद्यमान होते हैं, यह संस्कार कोश जो प्रकाश की भी सूक्ष्म अवस्था है, न्यूक्लिक एसिड कहलाते हैं। यह एक प्रकार की विद्युत चुम्बकीय शक्ति है और कोश के भीतर सारे स्थूल द्रव्य में तिल में तेल के समान व्याप्त है, इसलिए वैज्ञानिकों को उसके स्वतंत्र होने पर भी ऐसिड होने का भ्रम रहता

है। नाभिक आकाश तत्व में स्थित है, अर्थात् वह किसी भी तत्व पर टिका हुआ नहीं है, जबकि कोशिका झिल्ली के अंदर गति करने वाले सभी पदार्थ परस्पर संबंद्ध होते हैं। वैज्ञानिक यह मानते हैं, कोशिका के आकाश में स्थित जगत के संपूर्ण अध्ययन के लिए 335 वर्ष की अवधि भी बहुत अल्प है।

हमारे शरीर की कोशिकाओं में पाए जाने वाले क्रोमोसोम और माइटोकोन्ड्रिया के कणों के ऊपर एक असंचालक परत होती है और कण के अन्दर विद्युत चालक द्रव्य होता है। यह द्रव्य सूक्ष्म स्तर के ओसीलेटिंग सरकिट बनाता है जिनमें विस्तृत रेन्ज में अति अल्प तरंग दैर्ध्य वाले विद्युत ओसीलेसन संभव हैं। ये द्रव्य कण पृथ्वी, वातावरण व अंतरिक्ष से आने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों से तरंगित होते हैं। इन द्रव्य कणों के कम्पन बहुत से आंतरिक और बाहरी कारणों से प्रभावित होते हैं। जैसे पृथ्वी, वातावरण और अंतरिक्ष से आने वाले उत्सर्जन में परिवर्तन या कोशिका पर किसी प्रकार का आघात या द्रव्य कणों के घटक लवणों में परिवर्तन आदि। शोध से पाया गया है कि बाहर से आने वाले उत्सर्जन विषैले भी हो सकते है विशेष तौर से वे जो पृथ्वी से आते हैं। विषेले उत्सर्जन कैन्सर पैदा करते हुए भी पाए गये हैं। कभी-कभी ऐसे प्रभाव से कोशिका के कंपन बंद हो जाते हैं और कोशिका मर भी सकती है। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। मृत कोशिका में भी माइटोकोन्ड्रिया में विद्युत कम्पन्न चालू रह सकते हैं और वे कोशिका की तरह विभाजित होकर जीवित रह सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने कोशिका में विद्यमान स्टेटिक विभव और इसके कारण उपत्यिकाओं जैसे नसों ओर मांसपेशियो में बहने वाली विद्युत धारा को जैव विद्युत चुम्बकीय प्रक्रिया या जैव विद्युत कहा है। कोशिकाएं चयापचय क्रिया में उत्पन्न होने वाली ऊर्जा को जैव विद्युत रूप में संग्रहित करती हैं और इस ऊर्जा को आंतरिक क्रिया और अंतर्कोशिका सूचना संप्रेषण के लिए प्रयोग करती हैं। कोशिका के स्टेटिक वोल्टेज से बहने वाली जैव विद्युत और इसके कारण उत्पन्न होने वाले चुम्बकीय फील्ड को सम्मिलित रूप से जैव विद्युत चुम्बकीय क्रिया कह सकते हैं। यह जैव विद्युत चुम्बकीय प्रक्रिया सभी जीवों (पशुओं, पौधो आदि) में पाई जाती है। इसी प्रक्रिया से मस्तिष्क विद्युत और हृदय विद्युत आदि पैदा होती है।

इस जैव विद्युत का मूल स्रोत क्या है यह अभी तक ज्ञात नहीं हैं। इसकी व्याख्या के लिए कई थ्योरी प्रतिपादित की गई हैं। इनमें से चार हैं - डिफ्यूजन थ्योरी, झिल्ली सिद्धान्त, ऑक्सीडेशन थ्योरी, और फेन-बाउन्ड्री थ्योरी। हंगेरियन वैज्ञानिक अलबर्ट जेन्ट ग्योरंजील वॉन नाजीरपोल्ट, जिसको फिजियोलॉजी का

1937 नोबल पुरस्कार मिला था, ने कहा – ऐसा लगता है कि अभी तक हम जीवन के मूल सत्य को नहीं जान पाये हैं, जिसके बिना जीवन का वास्तविक ज्ञान असंभव है।

मनुष्य शरीर में स्नायुतंत्र, हृदय, मांसपेशियों आदि का कार्य विद्युत की सहायता से सम्पन्न होता है। शरीर के अन्दर व्याप्त जैव विद्युत की मात्रा पर ही व्यक्ति का उत्कर्ष एवं विकास निर्भर करता है। किसी व्यक्ति विशेष में यदि जैव विद्युत सामान्य व्यक्ति से अधिक्र होती है तब वह प्रतिभाशाली, विद्वान, मनीषी एवं प्रखर बुद्धि का धनी होता है, पर यदि किसी व्यक्ति में यह कम मात्रा में होती है तब वह व्यक्ति मंद बुद्धि होता है और उसको कई प्रकार के मनोरोग घेर लेते हैं।

तंत्रिका विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक न्यूरोन एक छोटा डायनेमो है। काय विद्युत का उत्पादन मुख्यतया यही वर्ग करता हैं। इसका केन्द्र मस्तिष्क है। एक सामान्य स्वस्थ युवा व्यक्ति का मस्तिष्क 20 वाट विद्युत उत्पन्न करता है जिससे उसके शरीर की समस्त गतिविधियाँ संचालित होती हैं।

मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली विद्युत तरंगों को इ.इ.जी. (Electro encephelo - gram) के माध्यम से ज्ञात किया जा सकता है। जागृत अवस्था में आंखे बन्द कर मस्तिष्क के पीछे के हिस्से से जिस विद्युत प्रक्रिया को मापा जा सकता है, उसे 'अल्फा तरंग' कहते हैं। इन तरंगों की आवृति 7–13 हर्ट्ज नापी गई हैं। बिल्कुल आगे के फ्रंटल कोर्टेक्स वाले हिस्से से सामान्यतया बीटा रीदम 14–40 हर्ट्ज आवृति वाली तरंगे निकलती है। टेम्पोरल हिस्से से भी बीटा तरंगों की आवृत्ति 4–7 हर्ट्ज नोट की जाती है। डेल्टा तरंगे वयस्क व्यक्तियों में असामान्य रूप से पाई जाती है और कभी–कभी छोटे बच्चों में भी नींद की स्थिति में रिकार्ड की जाती है। सामान्यत: डेल्टा तरंगे मस्तिष्कीय रूग्णता की सूचक मानी जाती हैं।

मस्तिष्क की तरह हृदय, मांसपेशियों आदि अवयवों, की विद्युत धारा का अंकन करने के लिए ई.सी.जी. (Electro-Cardiogram), इएमजी (Electro-mago-gram) आदि का प्रयोग किया जाता है। चमड़ी की रोग –निरोधक ऊर्जा का अंकन जी.एस.आर. (Galvanic skin response) द्वारा किया जाता है।

भौतिक बिजली का जैव विद्युत में परिवर्तन असंभव है, पर जैव विद्युत के साथ भौतिक बिजली का समिश्रण बन सकता है। जड़ की तुलना में चेतन की जितनी श्रेष्ठता है उतना ही भौतिक और जैव विद्युत में अन्तर है। जैव विद्युत भौतिक विद्युत की अपेक्षा असंख्य गुणा अधिक बलशाली एवं प्रभावी है। जैव विद्युत पर नियंत्रण, परिशोधन एवं उसका संचय तथा केन्द्रीय करण करने से मानव असामान्य

शक्तियों का स्वामी बन सकता है। अभी तो वैज्ञानिकों ने केवल स्थूल एवं भौतिक विद्युत के चमत्कार जाने हैं और जिनको जानकर वे आश्चर्य चकित हैं। जिस दिन मानवी शरीर में विद्यमान इस जैव विद्युत शक्ति के अथाह भण्डार का पता लगेगा उस दिन अविज्ञात क्षेत्र के असंख्य आश्चर्य चकित रहस्योद्घाटन का क्रम आरम्भ हो जायगा।

पूर्वोक्त से यह स्पष्ट है कि शरीर रचना के लिए विद्युत आवश्यक है। यह विद्युत दो प्रकार की है-जैव विद्युत और सामान्य भौतिक विद्युत। वैज्ञानिकों को यह तो मालूम है कि सामान्य भौतिक विद्युत शरीर में कैसे बनती है पर उन्हें यह नहीं मालूम कि जैव विद्युत का स्रोत क्या है। यह दोनों प्रकार की विद्युत शरीर में मिश्रण बनाकर रहती है। वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा जो विद्युत मापी जाती है वह भौतिक विद्युत है। भौतिक विद्युत को जैविक विद्युत में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यह जैव विद्युत कोशिका केन्द्रक में व्याप्त रहती है और इसी के कारण कोशिका में एन्जाइम ओर प्रोटीन का निर्माण संभव हो पाता है तथा कोशिका वृद्धि को प्राप्त होकर विभाजन करती रहती है। यही शरीर निर्माण की प्रक्रिया है। जैन दर्शन के अनुसार आहार वर्गणा से औदारिक शरीर की रचना होती है अत: यह आहार वर्गणा ही जैव विद्युत होनी चाहिए। कोशिका केन्द्रक और माइटोकोन्ड्रिया में अति अल्प तरंग दैर्ध्य वाले विद्युत ओसीलेशन से वातावरण में व्याप्त आहार वर्गणा आकर्षित होती है और जैव विद्युत उत्पन्न करने में कारण बनती है। जैव विद्युत का रहस्य वैज्ञानिकों को मालूम नहीं पर जैन दर्शन में आहार वर्गणा के रूप में इसका स्पष्ट उल्लेख है। आहार वर्गणा विद्युत रूप में वैक्रिय शरीर ओर आहारक शरीर का भी निर्माण करती है यह समझना अब सरल है। वैज्ञानिक रूप से यह संभावना स्पष्ट है।

5.4.2 तैजस वर्गणा

तैजस वर्गणा से तैजस शरीर का निर्माण होता है। सामान्यतया एक समय में मनुष्य में तीन शरीर होते हैं, औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर। मृत्यु होने की दशा में औदारिक शरीर छूट जाता है और तैजस तथा कार्मण शरीर आत्मा के साथ संलग्न रहते हैं तथा नई पर्याय में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तैजस और कार्मण शरीर अनादि काल से आत्मा के साथ है और जब तक सभी कर्मो का क्षय नहीं हो जाता वे जन्म-जन्मान्तरों तक आत्मा के साथ बने रहेंगे।

तैजस शरीर के मुख्यतया दो कार्य है (1) शरीर तंत्र का संचालन और (2) अनुग्रह-निग्रह की क्षमता। हमारी जीवनी शक्ति का आधार प्राणतत्व तैजस

शरीर से ही प्रवाहित होता है। योग आचार्य इसे प्राणमय कोश तथा वैज्ञानिक वाईटल बॉडी या बायो इलेक्ट्रिकल प्लाज्मा कहते हैं। यह विद्युतीय शरीर है और ऊर्जा का अपार भंडार है।

तैजस शरीर और कार्मण शरीर को सूक्ष्म शरीर भी कहा जाता है। योग शास्त्र के अनुसार सूक्ष्म शरीर में पंच कोश होते हैं - अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश ओर आनन्दमय कोश। पश्चिमी अध्यात्मवेत्ताओं ने सूक्ष्म शरीर को ऊर्जा शरीर कहा है। ऊर्जा शरीर चार हैं। इथरिक ऊर्जा शरीर, एस्ट्रल ऊर्जा शरीर, मेन्टल ऊर्जा शरीर और स्पिरिचुअल ऊर्जा शरीर। ये ऊर्जा शरीर भौतिक शरीर के चारों ओर तथा उसके अन्दर भी व्याप्त हैं। जिस प्रकार एक टेलीविजन आकाश में व्याप्त विभिन्न संकेतो को उनकी आवृत्ति के अनुसार पहचान लेता है वैसे ही भौतिक शरीर में व्याप्त इन ऊर्जा शरीरों की क्रिया होती है। बाहर से आने वाले संकेत अपनी आवृत्ति के समान आवृत्ति वाले ऊर्जा शरीर में पहुँच जाते हैं।

सभी चेतना कोशों या ऊर्जा शरीरों का सम्मिलित रूप व्यक्ति का आभामण्डल है। हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले सभी कारक हमारे आभामण्डल में रंग, रेखा, बिन्दु, रेखाचित्र, स्पन्दन या रश्मियों के रूप में अंकित हो जाते हैं। आभामण्डल में हमारे स्थूल शरीर से आने वाले विद्युत-चुम्बकीय विकिरण और पंच कोशों या ऊर्जा शरीरों से उत्पन्न चैतन्य प्राण-ऊर्जा के विकिरण मिश्रित रूप में विद्यमान रहते हैं। आभामण्डल और स्थूल शरीर दूध और पानी की तरह मिले रहते है परन्तु आभामण्डल का कुछ अंश शरीर से बाहर भी निकला रहता है। आभामण्डल के जिस कोश की आवृत्ति अधिक होती है, वह शरीर से उतना ही अधिक दूरी तक विद्यमान रहता है। आभामण्डल में प्राणों का प्रवाह होता है और यह प्राण स्नायुतंत्र के माध्यम से स्थूल शरीर के अंग-अवयवों को ऊर्जा प्रदान करता है।

किरलियन फोटोग्राफी से आभामण्डल के चित्र लिए जा सकते हैं। एक मरते हुए आदमी का किरलियन फोटो लिया गया, तो ऐसा लगा कि उसके शरीर जैसी प्रकाशीय आकृति शरीर से बाहर आ रही है। इस प्रकाशीय शरीर में प्राण शरीर भी है। जैन दर्शन के अनुसार यह प्राण (तैजस) शरीर चतु:स्पर्शी तैजस वर्गणा से बना होता है। जीवित अवस्था में श्वासोच्छ्वास के माध्यम से जीव तैजस वर्गणा के पुद्गल ग्रहण करता है जो तैजस शरीर का निर्माण करता है। ये तैजस वर्गणाएँ कई आवृत्ति की हैं और अपने गुणों के अनुसार विभिन्न कार्य सम्पादित करती हैं।

एक ही प्रजाति के प्राणियों में तैजस वर्गणा की आवृति रेंज समान होती है और इसलिए उस प्रजाति के सदस्यों के बीच एक संवादिता स्थापित हो सकती है।

कथंचित स्त्री और पुरूष के शरीर में विरोधी आवेश की तैजस वर्गणा का बाहुल्य होता है जिससे उनके बीच एक आकर्षण की स्थिति बन जाती है। विभिन्न प्रकार के प्राणियों में तैजस वर्गणा की आवृति भिन्न होने से उनमें परस्पर संवाद और आकर्षण नहीं होता। आकर्षण स्वजाति प्राणियों के बीच ही होता है।

5.4.3 भाषा वर्गणा

जीव भाषा निकालने से पूर्व भाषा के रूप में परिणत करने के लिए भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है। ये द्रव्य एक या अधिक वर्ण, गंध, रस वाले और द्विस्पर्शी, या चतु:स्पर्शी होते हैं। तीव्र प्रयत्नवान वक्ता द्वारा छोड़े गये भाषा द्रव्य खंडित होकर सूक्ष्म होने से लोक के अंत तक पहुँचते हैं। मंद प्रयत्न द्वारा निकाले हुए भाषा द्रव्य स्थूल खंडरूप एवं अव्यक्त होने से लोकान्त तक नहीं पहुँच पाते। वे असंख्यात अवगाहन वर्गणा तक जाकर भेद को प्राप्त होते हैं और असंख्यात योजन तक जाकर विध्वंस हो जाते हैं।

विज्ञान के अनुसार भाषा का प्रसारण दो प्रकार से होता हैं। प्रथम, सामान्य तौर पर भाषा या ध्वनि हवा या अन्य माध्यम में कंपन पैदा करती है जो तरंग रूप में प्रवाह को प्राप्त होकर एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचती है। दूसरी विधि में भाषा कंपनों को विद्युत तरंगों में बदल दिया जाता है और इन विद्युत तरंगों को अन्य शक्तिशाली केरियर तरंगों की सहायता से प्रसारित किया जाता हैं। ये केरियर तरंगे विद्युत चुंबकीय रेडियो तरंगे होती हैं। दूसरे स्थान पर जहाँ भाषा या ध्वनि को सुनना होता है विद्युत तरंगों को पुन: भाषा कंपनों में बदल दिया जाता है। इस विधि से ध्वनि को अंतरिक्ष में बहुत दूर तक पहुँचाया जा सकता है। वैज्ञानिक सुदूर अंतरिक्ष से आने वाले ध्वनि सकेंतो को भी ग्रहण कर लेते हैं। इन दो विधि की तुलना उपरोक्त मन्द प्रयत्न वक्ता और तीव्र प्रयत्न वक्ता से की जा सकती है। मन्द प्रयत्न वक्ता हवा रूपी द्रव्य को ग्रहण करता है और उसके माध्यम से ध्वनि को प्रसारित करता है जो बहुत दूरी तक नहीं जा सकती। जो चतु:स्पर्शी भाषा पुद्गलों के ग्रहण की बात कही गई है वह संभवतया तीव्र प्रयत्न वक्ता के लिए कही गई है। ऐसा वक्ता संभवतया अपनी मानसिक शक्ति और अतीन्द्रिय क्षमता से अपने मन के विचारों को भाषा वर्गणा के माध्यम से संप्रेषित करता है और ये विचार दूसरी विधि के अनुसार सूदूर अंतरिक्ष में पहुँच जाते हैं। यहाँ भाषा वर्गणा उच्च शक्ति सम्पन्न विद्युत चुम्बकीय तरंगों का कार्य करती है। व्यक्ति भाषा वर्गणा तभी ग्रहण करता है जब उसे विचारों का संप्रेषण करना होता है। इस संप्रेषण विधि को टेलीपेथी भी

कहा जा सकता है। यदि चतु:स्पर्शी भाषा वर्गणा विखण्डित होकर द्विस्पर्शी परमाणुओं में बदल जाती है तो परमाणु में यह सामर्थ्य है कि वह लोकांत तक पहुंच सके। इस प्रकार भाषा लोकांत तक भी पहुंच सकती है।

5.4.4 मनो वर्गणा

मनोवर्गणा से द्रव्यमन की रचना होती है। मन सब प्राणियों में नहीं होता केवल संज्ञी पंचेंन्द्रिय जीवों में ही होता है। वैज्ञानिक इन्हें पृष्ठवंशीय जीव कहते हैं। मन का कार्य है संकल्प विकल्प करना स्मृति, चिंतन और कल्पना करना। संकल्प विकल्प चेतना की प्रवृति है परन्तु उसके लिए भौतिक माध्यम चाहिए, यही माध्यम द्रव्यमन है। संकल्प विकल्प की क्षमता उन जीवों में ही होती है जिनकी चेतना का विकास उच्च स्तर तक हो गया है। यह द्रव्य मन शरीर में कहाँ है इसके बारे में चार विचार धाराएं हैं :-

1. मन समूचे शरीर में व्याप्त है।
2. मन का स्थान हृदय के नीचे है।
3. मन हृदय कमल के बीच है।
4. शरीर शास्त्रियों का अभिमत है कि मन का स्थान मस्तिष्क है।

वस्तुत: ये सभी सापेक्षताएं है। हमारे स्नायु संस्थान में जितने भी ग्राहक स्नायु हैं, जो बाह्य विषयों को ग्रहण करते हैं, उनका जाल समूचे शरीर में फैला हुआ है। इस प्रकार मन का शासन सर्वत्र व्याप्त है। सुषुम्ना की एक धारा हृदय को छूती हुई जाती है। उसका हृदय के साथ सम्पर्क है इसलिए हृदय को मन का केन्द्र मानना बड़े महत्व की बात है। वह भाव पक्ष का मुख्य स्थान है। मन का स्थान मस्तिष्क है, यह बहुत स्पष्ट है। ज्ञान तंतुओं का संचालन इसी से होता है यह उन पर नियन्त्रण और नियमन करता है।

पंचकोशो में तीसरा 'मनोमय कोश' है। ऊर्जा शरीरों में चौथा मेन्टल ऊर्जा शरीर है। इस शरीर में विचारों, अनुभवों ओर धारणाओं की स्मृतियाँ संग्रहित रहती हैं। जब स्मृति किसी वस्तु विशेष की होती है तो उसका चित्र हमारे मेन्टल शरीर में बनता है, धारणा प्रकाश के एक ज्योमितिक पेटर्न के रूप में अंकित हो जाती है। मेन्टल शरीर हमार संचार उपकरण है। हमारी जीवात्मा इसी के माध्यम से अन्य शरीरों से सम्पर्क करती है।

द्रव्य मन, मनोमय कोश, या मेन्टल ऊर्जा शरीर एकार्थी शब्द है। द्रव्यमन मनोवर्गणा से बना माना जा सकता है। मनो वर्गणा चतु:स्पर्शी हैं। मन की स्थिति

का संबंध मनोवर्गणा के आवेश से होना चाहिए। निषेधात्मक विचार और विधेयात्मक विचार की स्थिति संभवतया विरोधी आवेश वाली मनोवर्गणा से बनती है।

5.4.5 कार्मण वर्गणा

कार्मण वर्गणा से कार्मण शरीर का निर्माण होता है और आठ प्रकार के कर्म बनते हैं, - ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म, आयु कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म और अन्तराय कर्म। इनमें से चार घाती कर्म हैं - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय। ये कर्म आत्मा के स्वरूप का या उसके स्वाभाविक गुणों का घात करते हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गौत्र अघाति कर्म हैं, ये आत्मा के निजगुण का घात नहीं करते, केवल आत्मा के प्रतिजीवी गुणों का घात करते हैं। मूल रूप से कर्म आठ प्रकार के हैं परन्तु सूक्ष्म भेद के आधार पर अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

कर्म का पुद्गल कर्म वर्गणा हैं। प्राणी जब योग की प्रवृति करता है और कषाय के उत्ताप से उतप्त होता है तब कर्म योग्य पुद्गलों को आकृष्ट करता है। जीव जिस क्षेत्र में स्थित है उसी क्षेत्र के कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है। योग और कषाय के अनुसार कर्मबंध होता हैं। कर्मबंध के चार अंगभूत भेद या व्यवस्थाएं है - प्रदेश बंध, प्रकृति बंध, अनुभाग (रस) बंध और स्थिति बंध। प्रदेश और प्रकृति बंध का नियामक योग है और स्थिति बंध और अनुभाग बंध का नियामक कषाय है। जीव की विविध अवस्थाएं कर्म जन्य हैं। शरीर, इंद्रियाँ, श्वासोच्छास, मन-वचन आदि जीव की विविध अवस्थाएं कर्म के कारण है।

संसारी जीव में आत्मा की चैतन्य शक्ति आवृत होती है। आत्म शक्ति के स्पंदन आवरणों से होते हुए सूक्ष्म और स्थूल शरीर में प्रकट होते हैं। आत्मवादी दर्शन के अनुसार केन्द्र में एक चेतन आत्मा है। इस केन्द्र की परिधि में अति सूक्ष्म कर्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय का वलय है। यद्यपि चेतन तत्व शासक के स्थान पर है, फिर भी कषाय तंत्र इतना शक्तिशाली है कि इसकी इच्छा के बिना शासक कुछ नही कर सकता। चैतन्य की प्रवृति स्पन्दन के रूप होती है। इन्हें बाहर निकलने के लिए कषाय वलय को पार करना पड़ता है। पार करने पर आत्मा के स्पन्दन कषायरंजित हो जाते हैं जिन्हें अध्यवसाय कहा जाता है। अर्थात् कर्म शरीर रूपी कषाय तंत्र से बाहर आने वाले स्पन्दनों में कषाय के गुण आ जाते हैं।

मन मनुष्य या अन्य विकसित प्राणियों में ही होता है किन्तु अध्यवसाय सब प्राणियों में होता है। अध्यवसाय हमारे ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत है। अध्यवसाय

के अनेक स्पन्दन अनेक दिशाओं में आगे बढ़ते हैं। इनकी एक धारा तैजस शरीर के साथ-साथ सक्रिय होकर आगे बढ़ती है तो लेश्या तंत्र बन जाता है। लेश्या के रूप में अध्यवसाय की यह धारा रंग से प्रभावित होती है और रंग के साथ जुड़कर भावों का निर्माण करती है। जितने भी अच्छे या बूरे भाव हैं वे सारे इसके द्वारा ही निर्मित हैं। अध्यवसाय के स्पंदन आगे बढ़कर सीधे स्थूल शरीर में उतरते हैं। वहाँ सबसे पहले मस्तिष्क के माध्यम से चित का निर्माण करते हैं।

लेश्या से भावित अध्यवसाय जब आगे बढ़ते हैं तो वे हमारे अन्तःस्रावी ग्रंथितंत्र को प्रभावित करते हैं। इन ग्रंथियों का स्राव ही हमारे कर्मों के अनुभाग यानि विपाक का परिणमन है। इस प्रकार पूर्वसंचित कर्म का अनुभाग रसायन बनकर ग्रंथितंत्र के माध्यम से हारमोन के रूप में प्रकट होता है। ये हार्मोन रक्त संचार तंत्र के द्वारा नाड़ी तंत्र और मस्तिष्क के सहयोग से हमारे अंतर्भाव, चिन्तन, वाणी, आचार और व्यवहार को संचालित और नियंत्रित करते हैं। इस तरह ग्रंथितंत्र सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच ट्रांसफार्मर, परिवर्तन का काम करता है। अध्यवसाय की अपेक्षा से यह स्थूल है और शरीर के बीच की कड़ी है, जो हमारी चेतना के अति सूक्ष्म और सूक्ष्म और अमूर्त आदेशों को भौतिक स्तर पर परिवर्तित कर देती हैं और मन एवं स्थूल शरीर तक पहुंचाती है।

वैज्ञानिको ने पाया है कि जीवित कोशिकाओं से एक प्रकार का अति क्षीण प्रकाश उत्सर्जित होता है। यह प्रकाश सूर्य प्रकाश से भिन्न प्रकृति का है। इसे जैव प्रकाश कहा गया। एक जैव फोटोन एक कोशिका में प्रति सेकण्ड 100 करोड़ क्रियाएं सम्पन्न कर सकता है। कोई भी फोटोन शरीर में अन्यत्र भी आवश्यकतानुसार रसायन क्रिया को सम्पादित कर सकता है। इस प्रकार जैव फोटोन शरीर की सम्पूर्ण क्रियाएं नियन्त्रित करते हैं।

जैव प्रकाश को उत्पन्न करने वाला विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र जो कोहरेन्ट है मेरे विचार से वह कार्मण वर्गणा से निर्मित कार्मण शरीर है। जैव प्रकाश को अध्यवसाय माना जा सकता है। अब हम कर्म बंध की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। योग और कषाय के प्रभाव से कार्मण शरीर, जो विद्युत चुम्बकीय है, में कंपन्न होता हैं कंपन की आवृत्ति कषाय और योग की प्रकृति पर निर्भर करती है। क्रोध, ईर्ष्या, निंदा, हर्ष, शोक, हिंसा, प्रेम, दया, करूणा आदि भावों से जो कार्मण शरीर के कंपन्न की आवृत्ति होगी वह भिन्न-भिन्न होगी। तीव्र भाव में कंपन्न शक्तिशाली होंगे और मंद भाव में अल्प शक्ति वाले होंगे। जिस आवृति का कंपन्न कार्मण शरीर

में होता है उसी आवृति की कार्मण वर्गणाएं आकर्षित होती है और पूर्व में विद्यमान अपने सजातीय कर्मों के साथ श्लिष्ट हो जाती हैं। यहीं कर्म बंध कहलाता है। इस कर्म में इसकी उत्तरदायी घटना की सूचना संग्रहित होती है। कंपन्न अधिक शक्तिशाली होने पर अधिक कर्म बंध होगा और कम्पन्न के अल्प शक्ति की अवस्था में अल्प कर्म बंध होगा। यह बंध सभी आत्म प्रदेशों पर होगा और एक समान होगा।

अब यह समझना सरल है कि विभिन्न प्रकार के कर्मों का बंध कैसे होता है। आवृति भेद से कर्म वर्गणाओं के गुण बदल जाते हैं। जिस प्रकार आवृति भेद से सूर्य प्रकाश का रंग बदल जाता है, उसी प्रकार एक विशिष्ट आवृति रेन्ज में दर्शनावरणीय कर्मों का बंध होगा, अन्य आवृति रेन्ज में ज्ञानावरणीय कर्मों का बंध होगा और इस प्रकार सभी आठ प्रकार के कर्म बंध को समझा जा सकता है। एक आवृति रेन्ज में भी आवृति भिन्नता से किसी एक प्रकार के कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ बन जाती हैं। एक ही आत्म प्रदेश पर सभी प्रकार के कर्मों का बंध होता है और प्रत्येक प्रकार के कर्म गुण-भेद से अपना-अपना समूह बनाए रहते हैं। इस प्रकार एक आत्म प्रदेश पर अनन्त कर्म होते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विशिष्ट कर्म बन्ध में प्रयुक्त कर्म वर्गणाएं एक ही आवृति की होने के साथ-साथ एक समान फेज में भी होती हैं जिससे कर्म की प्रकृति कोहेरेन्ट हो जाती है। जो कार्मण वर्गणाएं आकाश में व्याप्त हैं वे भिन्न-भिन्न फेज वाली होती हैं। ये मिश्र वर्गणाएं जब कार्मण शरीर द्वारा आकर्षित होती हैं तो उनमें से केवल वे वर्गणाएं जिनका फेज विद्यमान कर्म के फेज से साम्य रखता है कार्मण शरीर से श्लिष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार कार्मण शरीर में कोहेरेन्ट गुण बना रहता है तथा इसकी प्रकृति आकाश में व्याप्त सामान्य कार्मण वर्गणाओं से भिन्न होती है।

उपरोक्त में प्रदेश बंध और प्रकृति बंध की व्याख्या की गई है। स्थिति बंध और अनुभाग बंध कैसे होता है? इसका निर्णय संभवतया आत्मा ही करता है। आत्मा ज्ञानात्मक है और उसके पास ही इसका लेखा-जोखा रहता है कि अमुक कर्म की स्थिति क्या होगी और विपाक के समय उसके रस की तीव्रता कितनी होगी। आत्मा एक निष्पक्ष शास्ता की तरह कार्य करता है और अपने प्रति भी सभी नियमों को सच्चाई से और कडाई से लागू करता हैं। असंख्य प्रकार के कर्मों का लेखा-जोखा रखना, आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की शक्ति के सामर्थ्य के बाहर है।

जैन दर्शन के अनुसार पूण्य हल्का होता है पाप भारी होता है। अत: पूण्य कर्म हल्का स्पर्श वाली ऋणात्मक कर्म वर्गणाओं (शुभ) से और पाप कर्म भारी

स्पर्श वाली धनात्मक कर्म वर्गणाओं (अशुभ) से बनता है। मृत्यु उपरान्त पुण्य कर्म वाली आत्मा स्वर्ग को जाती है और पाप कर्म वाली आत्मा नरक को जाती है। अर्थात् ऋणात्मक कर्म वाली आत्मा की पहुँच उर्ध्व लोक तक है और धनात्मक कर्म वाली आत्मा अधोलोक में ही प्रवेश पा सकती है। मिश्र कर्म होने पर आत्मा मध्य लोक तक ही जन्म ले सकती है, ऊर्ध्व लोक नहीं पहुँच सकती।

5.4.6 प्रत्येक शरीर वर्गणा

एक जीव के एक शरीर के कर्म और नोकर्म के स्कंध को प्रत्येक शरीर वर्गणा कहते हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, देव, नारकी, आहारक शरीर, प्रमत्तसंयत, सयोग केवली और अयोग केवली ये जीव प्रत्येक शरीर वाले होते हैं। जिनका शरीर पृथक-पृथक अर्थात् प्रत्येक होकर भी परस्पर जुड़ा होता है वे एक बन्धन बद्ध जीव होते हैं। प्रत्येक वनस्पति प्रत्येक शरीर वाले जीव हैं।

विज्ञान की दृष्टि से वनस्पति और पशु दोनो ही वर्ग के जीव यूकेरियोट्स हैं। इनकी कोशिका पूर्ण विकसित केन्द्रक वाली संरचना होती है। ऐसी कोशिका में श्वसन, प्रकाश संश्लेषण, चयापचय आदि क्रियाएं सुचारू रूप से सम्पन्न होती हैं। पर वनस्पति और प्राणियों में अंतर यह है कि प्राणी का आहार जीव है और वनस्पति अपना आहार स्वयं निर्मित करती है। वनस्पति पृथ्वी, जल, वायु और सूर्य प्रकाश से अपना पोषण करती है और फिर स्वयं प्राणियों का आहार बन जाती है।

विज्ञान में दो प्रकार की पोषण विधि बताई गई है।

1. आटोट्रोपिक पोषण। हरे पौधे, काई और कुछ प्रकार के जीवाणु स्वयं अपना पोषण करते हैं। इनमें से अधिकांश जीव सूर्य प्रकाश की ऊर्जा से इनआरगेनिक पदार्थ कणों, जैसे कारबन डाईऑक्साइड और जलकण का प्रयोग कर आरगेनिक अणुओं का निर्माण करते हैं जिनसे इनका शरीर बनता है। इस क्रिया को फोटो संश्लेषण क्रिया कहते हैं। इस क्रिया से इन जीवों में होने वाले एनाबालिक क्रिया (संरचनात्मक चयापचय क्रिया) के लिए ऊर्जा प्राप्त होती है।

सूर्यप्रकाश (ऊर्जा) + Co_2 + H_2O - - - > $C_6H_{12}O_6$ + O_2

इस प्रकार इन जीवों में ग्लुकोज और आक्सीजन बनती है।

2. हिट्रोट्रापिक पोषण। अन्य सभी जीव (मानव सहित) हिट्रोट्रापिक पोषण वाले हैं। ये सभी जीव बाह्य वातावरण से प्राप्त भोजन से अपनी ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। हिट्रोटोपिक जीव आंशिक या पूर्ण रूप से दूसरे हिट्रोट्रापिक जीवों का

आहार करते हैं परन्तु अन्ततोगत्वा यह सब आहार ऑटोट्रापिक जीवों से ही प्राप्त होता है। हिट्रोट्रापिक जीव अपने आहार में ग्रहण होने वाले बड़े अणुओं को तोड़कर छोटे अणुओं में परिवर्तित करते हैं (केटाबालिज्म) और इस प्रकार अपने शरीर में होने वाली क्रिया जिसमें छोटे अणु मिलकर बड़े अणु बनते हैं उसके लिए ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उनको चयापचय की आवश्यकता के लिए ऊर्जा भोजन से प्राप्त हो जाती है।

$$C_6H_{12}O_6 + O_2 ---------- > \text{ऊर्जा} + CO_2 + H_2O$$

इस प्रकार पैदा होने वाली ऊर्जा शरीर में स्वतंत्र रूप में नहीं रहती है बल्कि एटीपी (एडिनोसीन ट्राइफास्फेट) नाम के योगिक में संग्रहित रहती है। यह एटीपी अणु ही सभी जीवों मे होने वाली रासायनिक क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आपूर्ति करता है और जीवों को जीवित रखता है। यह चयापचय की विधि है।

उपर जिस जैव विद्युत का उल्लेख किया गया था वह पादपों, पौधों में भी पाई जाती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि प्राणियों का स्थूल शरीर आहार वर्गणा से ही बन जाता है। पौधो-पादपों को शरीर निर्माण के लिए दो प्रकार की वर्गणाओं की आवश्यकता होती हैं। एक वह जो जैव विद्युत बनाती हैं और दूसरा सूर्य प्रकाश जो फोटो संश्लेषण विधि से उनके लिए पोषक तत्व तैयार कर शरीर निर्माण की प्रक्रिया में सहायता करता है।

जैव फोटोन का उत्सर्जन भी प्राणियों और पोधों दोनो वर्ग में पाया गया है और यह दोनों ही वर्ग में कोहरेन्ट विद्युत- चुम्बकीय क्षेत्र की उपस्थिति सिद्ध करता है। जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक शरीर वर्गणा से कर्म ओर नोकर्म स्कंधो का निर्माण होता है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि पौधों-पादपों को तीन प्रकार के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों की आवश्यकता होती है :-

1. जैव विद्युत की उत्पत्ति के लिए। इसे आहार वर्गणा कहा गया है।
2. जैव फोटोन की उत्पत्ति के लिए। इसे कार्मण वर्गणा कहा गया है।
3. फोटो संश्लेषण प्रक्रिया के लिए। विज्ञान के अनुसार यह सूर्य प्रकाश से होता है।

तो प्रश्न है कि प्रत्येक शरीर वर्गणा क्या है? मैं समझता हूँ कि सूर्य प्रकाश ही प्रत्येक शरीर वर्गणा है जो फोटो संश्लेषण क्रिया में सहायक है। इस मान्यता से दो संकेत मिलते हैं, (1) प्रत्येक शरीर वर्गणा विद्युत-चुम्बकीय है और (2) सूर्य प्रकाश अष्टस्पर्शी है अर्थात् भारयुक्त है।

जैन दर्शन में प्रमत्तसंयत, सयोग केवली और अयोग केवली को भी प्रत्येक शरीर वाला बताया गया है। संभवतया यह दो तथ्य इंगित करता है। प्रथम इन वर्ग के जीवों के शरीर में एक ही जीव है, अन्य निगोदिया जीव जो शरीर में प्रायः रहते है इस अवस्था तक पहुँचने पर क्षय को प्राप्त हो चुके हैं। अन्यथा उनका शरीर वैसा ही है जैसा मनुष्यों का होता हैं। दूसरा इन जीवों के शरीर में वनस्पति की तरह बिना कवलाहार के पोषण करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

नारकी ओर देवों का शरीर भी प्रत्येक शरीर कहा गया है। इसका भी संभवतया यही अभिप्राय है कि उनके वैक्रिय शरीर में निगोदिया जीव नहीं होते तथा उनका पोषण सूर्य प्रकाश से हो जाता है। स्थावर जीव समस्त लोक में व्याप्त हैं और वे भी अपना पोषण प्रत्येक शरीर वर्गण से करते हैं।

5.4.7 बादर निगोद वर्गणा ओर सूक्ष्म निगोद वर्गणा

बादर निगोद जीवों के विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्म अर्थात् औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर के परमाणुओं के एक स्कंध को बादर निगोद वर्गणा कहते हैं। मूली, थुअर, अदरक, लतादिकाएँ, महामत्स्य आदि बादर निगोद वर्गणा हैं। इनमें असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर होते हैं और एक-एक निगोद शरीर में अनंतानंत निगोद जीव होते हैं। क्षीण कषाय के अन्तिम समय में भी बादर निगोद वर्गणा होती है।

सूक्ष्म निगोद वर्गणा सूक्ष्म निगोद जीवों के ही होती है। इन जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरों के कर्म, नोकर्म और विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों को ग्रहण कर सबसे जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होती है। वह जल में स्थल में और आकाश में सर्वत्र दिखलाई देती है।

मानव शरीर में बादरनिगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव दोनो पाये जाते हैं। जब जीव श्रेणी आरोहण करता है और जैसे-जैसे शुद्धता को प्राप्त होता है उसके शरीर में विद्यमान बादर निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद मरते जाते है। क्षीण कषाय के अन्तिम समय में भी बादर निगोद जीव होते हैं। परन्तु सयोग केवली के शरीर में कोई भी निगोद जीव नहीं होते। विज्ञान के अनुसार मनुष्य के शरीर में कृमि, जीवाणु, आर्किया और विषाणु पाये जाते हैं।

जीवाणु और आर्किया स्वपोषी जीव हैं और विषाणु परपोषी जीव हैं। ये तीनों ही प्रकार के जीव सर्वव्यापी है, ये स्थल में, जल में और वायु में पाए जाते हैं। जीवाणु को कुछ वैज्ञानिक पादप मानते है और कुछ नहीं। आर्किया जीवों के कुछ गुण जीवाणुओं से मिलते जुलते है परन्तु इनकी जिनेटिक रचना जीवाणुओं

से भिन्न है। आर्किया सूर्यप्रकाश से शक्ति प्राप्त करते हैं परन्तु इनकी प्रक्रिया वनस्पति से भिन्न है। विषाणुओं में कुछ गुण जीवों से मिलते हैं और कुछ गुण निर्जीव से मिलते हैं। इस प्रकार विषाणु जीव और अजीव की सीमा रेखा पर स्थित है। विषाणु की एक प्रजाति को सूखा कर वर्षों तक सुरक्षित रखा जा सकता है, पानी मिलाने पर ये पुनः सक्रिय हो जाते हैं। जब तक ये दूसरे जीवों के शरीर में रहते हैं सजीव रहते हैं और बाहर आने पर निर्जीव हो जाते हैं। तीनों ही प्रकार के जीव प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं विशेष तौर पर आर्किया। आर्किया और विषाणु ऑक्सीजन रहित वातावरण में भी जीवित रह सकते हैं।

सूक्ष्म निगोद जीव अप्रतिघाती हैं और विज्ञान की पहुँच के बाहर है अतः यह माना जा सकता है कि जीवाणु, विषाणु और आर्किया सभी बादरनिगोद जीव हैं। सूक्ष्म निगोद जीव हमारे संज्ञान में नहीं आ सकते। इन जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मण तीनों ही शरीर इन्हीं वर्गणाओं से बने हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि एक ही प्रकार का विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र कोशिका निर्माण, शरीर तंत्र का संचालन, स्मृति संग्रह, कर्म निर्माण आदि का कार्य करता है। निगोद जीव की सबसे कम विकसित अवस्था है और इस अवस्था में जीव की व्यवस्था के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता नहीं होती, यही जैन दर्शन में समझाया गया है।

5.5 समीक्षा

वर्गणा के बारे में जैन विद्वानों का चिंतन स्पष्ट नहीं था। अधिकांश विद्वानों की मान्यता थी कि आहार वर्गणा से जीवों का स्थूल औदारिक शरीर बनता है, प्रत्येक शरीर वर्गणा से प्रत्येक वनस्पतियों का शरीर बनता है, बादर निगोद वर्गणा से बादर निगोद जीवों का शरीर और सूक्ष्म निगाद वर्गणा से सूक्ष्मनिगोद जीवों का शरीर बनता है। महास्कंध वर्गणा की तुलना सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ, छोटे कण से लेकर विशाल स्कंध जैसे पर्वत, पृथ्वी आदि से की जाती है। इस प्रकार के चिंतन में कई विसंगतियां प्रतीत होती है जैसा कि पहले कहा गया है। विज्ञान की सहायता से प्राप्त वर्गणा की नई परिभाषा हमारे चिंतन को एक नई दिशा प्रदान करती है। अब हम पाते है कि वर्गणा वस्तुतः विद्युत-चुम्बकीय गुण वाला सूक्ष्म पुद्गल स्कंध (ऊर्जा रूप, क्वांटम) है। विद्युत चुम्बकीय तरंग रूप में वर्गणाएं समस्त लोक में व्याप्त हो जाती है और बंध के माध्यम से लोक में विद्यमान समस्त सूक्ष्म और स्थूल

पदार्थों की रचना करती हैं। अब हम जानते हैं कि कैसे आहार वर्गणा जैव विद्युत रूप में स्थूल शरीर निर्माण में माध्यम बनती है और तैजस वर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मण वर्गणा हमारे सूक्ष्म शरीरों का निर्माण करती हैं।

यह ज्ञान कि 17 वीं प्रत्येक शरीर वर्गणा सूर्य प्रकाश रूप है हमें विभिन्न वर्गणाओं के तुलनात्मक स्वरूप को समझने में सहायता करता है। इसका अभिप्राय यह है कि इससे नीचे की चतु:स्पर्शी वर्गणाएं सूर्य प्रकाश से भी सूक्ष्म है। 18 वीं से लेकर 22 वीं वर्गणाएं सूर्य प्रकाश से तो अपेक्षाकृत स्थूल हैं परन्तु फिर भी वे ऐसे स्थूल पदार्थ की रचना नहीं करती जो इन्द्रिय ग्राह्य हो। यदि शून्य वर्गणाएं डार्क ऊर्जा है तो डार्क ऊर्जा भी पदार्थ का सूक्ष्म रूप है और इसका सामान्य पदार्थ जो महास्कंध वर्गणा से बना है के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है।

विज्ञान ने अणु और उसके घटक कणों क्वार्क आदि की खोज की। क्वार्क किससे बना है यह प्रश्न विज्ञान में अभी भी अनुतरित है। विज्ञान की यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर है और वह अभी तक क्वार्क तक पहुँचा है। जैन दर्शन सूक्ष्म से स्थूल की यात्रा कराता है जैन दर्शन कहता है कि पदार्थ का सूक्ष्म रूप ऊर्जा है और परमाणु उसकी अन्तिम इकाई है। परमाणु से वर्गणा बनती हैं और वर्गणा से स्थूल पदार्थ जैसे इलेक्ट्रोन, क्वार्क आदि। इस प्रकार जैन दर्शन पदार्थ के सूक्ष्म स्वरूप की उस कड़ी को प्रस्तुत करता है जहाँ अभी तक विज्ञान की पहुँच नहीं हुई है। इलेक्ट्रोन और क्वार्क के बाद की कड़ी विज्ञान को ज्ञात है। इस प्रकार जैन दर्शन और विज्ञान मिलकर पदार्थ के सम्पूर्ण व्यवहार को समझने में सक्षम हो जाते हैं।

विज्ञान में चार मूल बल कहे गये हैं परन्तु जैन दर्शन में इनका पृथक उल्लेख नहीं है। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य पदार्थ की गति और स्थिति में उदासीन कारण है। तीव्र नाभिकीय बल से क्वार्क कण आपस में बंधे रहते है और मन्द बल उन कणों के बीच होता है जिनकी स्पिन 1/2 होती है। इस प्रकार ये दोनों ही प्रकार के बल पदार्थ को स्थायित्व प्रदान करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार बंध की प्रक्रिया भी पुद्गल स्कंध को स्थायित्व प्रदान करती है। स्निग्ध और स्निग्ध परमाणुओं में तथा रूक्ष और रूक्ष परमाणुओं में बंध समान प्रकृति वाले परमाणुओं (और स्कंधों) के बीच है। इस नियम के अनुसार एक प्रोटोन कण दूसरे प्रोटोन से बंध सकता है। इसी कारण जैन दर्शन में अलग से तीव्र नाभिकीय बल जैसे बल की मान्यता की आवश्यकता नहीं है। स्निग्ध और रूक्ष परमाणुओं के बीच बंध असमान प्रकृति वाले परमाणुओं के बीच है और यह विज्ञान द्वारा मान्य विद्युत-चुम्बकीय बल का पर्यायवाची माना जा सकता है। रेडियोएक्टिव विकिरण में

बीटा कण जो इलेक्ट्रोन (या पॉजीट्रान) से बने होते है का उत्सर्जन होता है। यह विकिरण मन्द बल के कारण माना गया है।

इसके आधार पर हम प्रस्तावित कर सकते हैं कि स्कंध स्तर पर

1. भारी स्पर्श तीव्र नाभिकीय बल का पर्यायवाची है और यह धन आवेश वाले कणों के बीच बंध का कारण है।
2. हल्का स्पर्श मंद बल का पर्यायवाची है और यह ऋण आवेश वाले कणों के बीच बंध का कारण है।
3. धन आवेश और ऋण आवेश वाले कणों के बीच बंध विद्युत-चुम्बकीय बल से होता है।

गुरूत्वाकर्षण बल उपरोक्त तीनों बलों से भिन्न है। कुछ विद्वान अधर्म को गुत्वाकर्षण बल मानते हैं परन्तु यह युक्ति संगत नहीं लगता क्योंकि अधर्म द्रव्य पुद्गल जैसे मूर्त द्रव्य और शुद्ध जीव जैसे अमूर्त द्रव्य दोनों को उदासीन प्रेरणा प्रदान करता है और गुरूत्वाकर्षण बल केवल मूर्त द्रव्य पर ही प्रभावी होता है अमूर्त द्रव्य पर नहीं। शास्त्रों में कहा गया है कि एक मुक्त आत्मा एक समय में मध्य लोक से 7 राजू दूर लोक के अन्त में स्थित सिद्ध शिला तक पहुँच जाती है। गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में मुक्त आत्मा इस प्रकार की यात्रा नहीं कर सकती। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि विग्रह गति में जीव एक से चार समय में एक पर्याय से दूसरी पर्याय में प्रवेश पा लेता है। यह भी गुरुत्वाकर्षण की उपस्थिति में संभव नहीं है। विग्रह गति में जीव का तैजस और कार्मण शरीर चतु:स्पर्शी पुद्गल का बना होता है। इस प्रकार चतु:स्पर्शी पुद्गल में भी गुरुत्वाकर्षण प्रभाव नहीं होना चाहिए। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुत्वाकर्षण गुण केवल अष्टस्पर्शी पुद्गल में ही होता है। हम जानते हैं कि अष्टस्पर्शी पुद्गल में हल्का और भारी आपेक्षिक स्पर्श गुण पैदा होते हैं और ऐसे पुद्गल का द्रव्यमान होता है। तो क्या गुरुत्वाकर्षण का संबंध द्रव्यमान से है? संभवतया ऐसा ही है।

सूर्य प्रकाश अष्टस्पर्शी है और उसमें गुत्वाकर्षण गुण है। यही कारण है कि प्रकाश जब किसी बड़े आकाशीय पिण्ड के निकट से गुजरता है तो उसके मार्ग में वक्रता आ जाती है। सूर्य प्रकाश जो प्रत्येक शरीर वर्गणा है में गुरुत्वाकर्षण प्रभाव इतना अल्प है कि सामान्य स्थिति में वह सीधी रेखा में ही गमन करता है। ऊपर की वर्गणाओं में द्रव्यमान घनत्व में वृद्धि के कारण गुरुत्वाकर्षण गुण में वृद्धि होती है। अत: शून्य वर्गणाओं में गुरुत्वाकर्षण गुण अपेक्षाकृत अधिक होगा। महास्कंध

वर्गणा में और इसलिए उससे निर्मित सभी सामान्य स्थूल स्कंध में गुरुत्वाकर्षण गुण सबसे अधिक होगा और इसका प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

चूंकि मृदु और कर्कश स्पर्श तथा हल्का और भारी स्पर्श पुद्गल के मूल गुण नहीं आपेक्षिक स्पर्श गुण हैं अत: जैन दर्शन की दृष्टि से तीव्र नाभिकीय बल, मन्द बल, विद्युत चुंबकीय बल और गुरुत्वाकर्षण बल पदार्थ के मूल गुण नहीं, उत्तर गुण हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि नीचे की वर्गणा में स्निग्ध परमाणु और रूक्ष परमाणु विरोधी आवेश वाले होते हुए भी एक दूसरे से नहीं बंधते क्योंकि ये उत्तर गुण अभी प्रकट नहीं हैं। यही कारण है कि एक वर्गणा में दोनों ही प्रकार के परमाणु बिना बंध के सहअवस्थान करते हैं।

अब इस प्रश्न पर विचार करें कि चतु:स्पर्शी वर्गणाएं कैसे बनती हैं। इन वर्गणाओं में बंध नही होने से इनमें विज्ञान द्वारा ज्ञात कोई भी मूल बल नहीं है। फिर इन वर्गणाओं में परमाणु समूह बनाकर क्यों रहते हैं। वर्गणा में परमाणु समूह ही नहीं बनाते बल्कि उत्तरोतर उपरिम वर्गणाओं के प्रदेशों में परमाणु घनत्व भी बढ़ता जाता है। तो क्या चतु:स्पर्शी वर्गणाओं में भी किसी प्रकार का बल होता है जो यह कार्य करता है ? यह विचारणीय प्रश्न है। यदि ऐसा बल है तो यह प्रकृति का पांचवा मूल बल माना जायगा। अर्थात् पांचवा मूल बल, जिसे वर्गणा बल कह सकते हैं, ऐसा है जो परमाणुओं (ऊर्जा कणों) को परस्पर समूह बनाकर रहने में सहायता करता है। वर्गणा में परमाणुओं की संख्या बढ़ने पर यही बल उन्हें निकट लाकर प्रदेश ऊर्जा घनत्व में वृद्धि करता है जिससे अन्ततोगत्वा बन्ध की प्रक्रिया घटित होती है और चार मूल बलों की उत्पत्ति होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वर्गणा बल के अभाव में चारों मूल बलों की उत्पत्ति संभव नहीं हो सकती या यों कहें कि वर्गणा बल ही चारों अन्य बलों को जन्म देता है। ऐसे ही बल की खोज आज विज्ञान पूरी शक्ति से कर रहा है। यह वर्गणा बल अत्यन्त क्षीण होना चाहिए अत: अष्टस्पर्शी पुद्गल स्कन्धों में इसकी प्रायोगिक खोज बहुत कठिन होगी। स्ट्रींग थ्योरी वैज्ञानिकों के लिए यह चिंतन का विषय हो सकता है।

उपरोक्त निष्पत्तियाँ आश्चर्यचकित कर देने वाली हैं। विज्ञान ने मन्द बल और तीव्र नाभिकीय बल की खोज पिछली शताब्दी में की और यह विज्ञान की बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। भगवान महावीर ने इन बलों का उल्लेख हल्का और भारी स्पर्श के रूप में 2600 वर्ष पूर्व कर दिया था। उनके अनुसार प्रकृति का मूल घटक कण नहीं ऊर्जा है और ऊर्जा से ही कण बनते हैं। उन्होंने यह भी बता दिया था कि पदार्थ में द्रव्यमान कैसे उत्पन्न होता है जो आज भी विज्ञान के लिए प्रश्न बना हुआ है।

6. ब्रह्माण्ड

6.1 जैन दर्शन मे लोक
- 6.1.1 त्रसनाड़ी
- 6.1.2 अधोलोक
- 6.1.3 मध्यलोक
- 6.1.4 देवों के भेद
- 6.1.5 ऊर्ध्व लोक
- 6.1.6 वातवलय
- 6.1.7 जम्बूद्वीप
  - 6.1.7.1 भरत क्षेत्र
  - 6.1.7.2 अन्य छह क्षेत्र
  - 6.1.7.3 सुमेरू पर्वत
  - 6.1.7.4 विदेह क्षेत्र
- 6.1.8 ज्योतिर्लोक
- 6.1.9 द्वीपसागर

6.2 वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड
- 6.2.1 सौर परिवार
- 6.2.2 आकाश गंगा
- 6.2.3 एन्ड्रोमीडा निहारिका
- 6.2.4 ब्रह्माण्ड
- 6.2.5 तारो का विकास
- 6.2.6 ब्रह्माण्ड की संरचना
- 6.2.7 शून्य ऊर्जा
- 6.2.8 ब्रह्माण्ड में जीवन

6.3 जैन लोक और वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड का तुलनात्मक अध्ययन
- 6.3.1 जम्बूद्वीप और मध्यलोक
- 6.3.2 लोक का आकार

6.1 जैन दर्शन में लोक

अनन्त- असीम आकाश के बहुमध्यभाग में स्थित सान्त-ससीम 'लोक' का निश्चित आकार माना गया है। लोक के आकार और आयतन के विषय में जैन साहित्य में गणितीक विवेचन मिलता है, किन्तु दिगम्बर परंपरा और श्वेताम्बर परंपरा में यह विवेचन भिन्न-भिन्न रूप में मिलता है।

दिगम्बर परंम्परा के अनुसार लोक के तीन परिमाणों (ऊंचाई, लंबाई, चौड़ाई) में से प्रथम परिमाण अर्थात् ऊचाई 14 राजू है। लोक के विभिन्न स्थानों पर लोक की लम्बाई भिन्न-भिन्न है। इसको समझने के लिए लोक के (ऊँचाई के प्रमाण से) दो विभागों की कल्पना करनी चाहिए। अर्थात् लोक के दो भाग करने चाहिए, जिसमें से प्रत्येक भाग की ऊचाई 7 राजू हो । इन दो भागों में से, प्रथम अधस्तन भाग (अधोलोक) नीचे (आधार पर) 7 राजू लम्बा है और ऊपर क्रमशः घटता-घटता 1 राजू है जैसा कि चित्र 6.1 में दिखाया गया है। ऊर्ध्व लोक की ऊचाई 7 राजू है और नीचे 1 राजू , बीच में 5 राजू और ऊपर 1 राजू है। लोक का तीसरा परिमाण चौडाई सर्वत्र 7 राजू है । इस परिमाण के अनुसार अधोलोक का घनफल 196 धन राजू है और ऊर्ध्वलोक का घनफल 147 घन राजू है। इस प्रकार समग्र लोक का घनफल 343 घन राजू है।

श्वेताम्बर परंपरा के आगम साहित्य में यद्यपि लोक आयाम, विष्कम्भ आदि के बारे में विस्तृत गणितीक विवेचन उपलब्ध नहीं है, फिर भी उतरवर्ती-ग्रंथों में जो विवेचन किया गया है उसके अनुसार लोक की ऊंचाई 14 राजू है। दूसरा परिमाण लम्बाई और तीसरा परिमाण चौड़ाई विभिन्न ऊंचाईयों पर भिन्न-भिन्न हैं और समान ऊंचाई पर समान हैं जैसा कि चित्र 6.2 में दिखाया गया है।

लोक की चौडाई सर्वत्र सात राजू की स्थापना धवलाकार आचार्य वीरसेन की मौलिक देन है। इसी मान्यता को अधिक पुष्ट प्रमाण मिले हैं और अधिकांश विद्वानों ने इसको स्वीकार किया है। उस समय सम्भवतः श्वेताम्बर आचार्यों में मृदंगाकार लोक की कल्पना प्रचलित थी, इसका उल्लेख धवला में किया गया है। किन्तु इस मान्यता में गणितीय दृष्टि से यह त्रुटि थी कि लोक का समग्र घनफल 343 घन राजू से बहुत कम था। वीरसेनाचार्य ने दो प्राचीन गाथाओं के आधार पर यह बताया कि लोक का घनफल अधोलोक में 196 घनराजू और उर्ध्वलोक में 147 घनराजू होना चाहिए। उन्होने बताया कि यह तभी संभव है जब लोक की चौड़ाई सर्वत्र 7 राजू मान ली जाय।

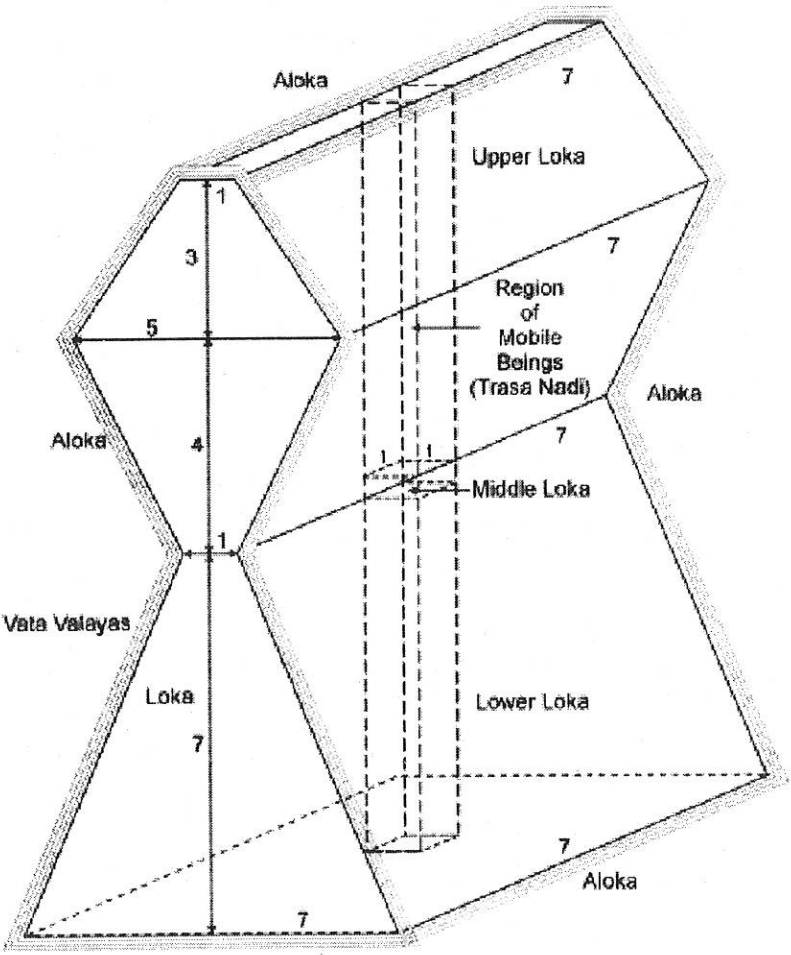

चित्र 6.1 दिगम्बर परम्परा में लोक।
त्रसनाड़ी का विस्तार 1×1 राजू

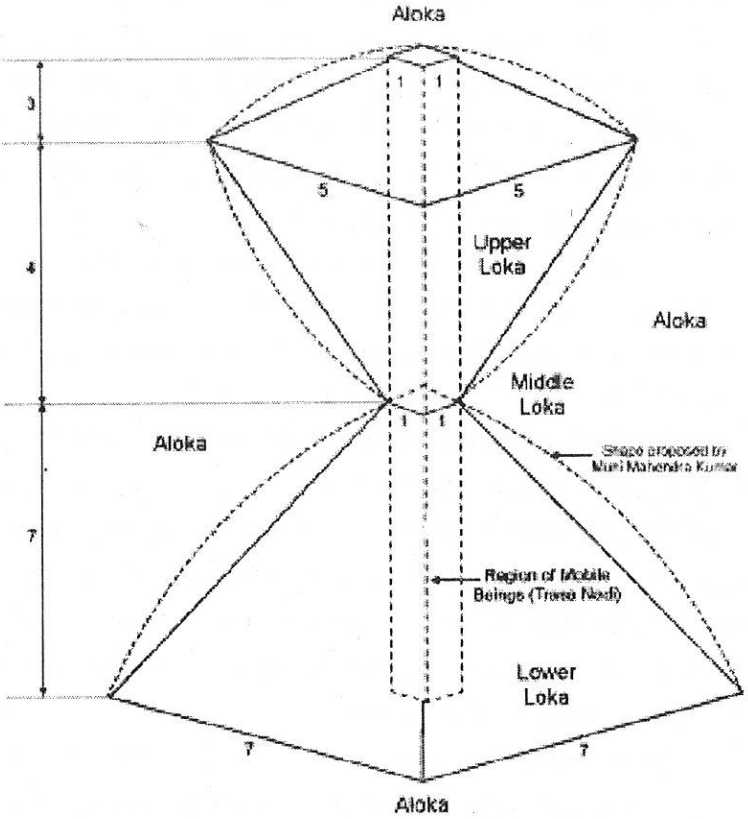

चित्र 6.2 दिगम्बर परम्परा में लोक।
त्रसनाड़ी का विस्तार 1×1 राजू

श्वेताम्बर-परम्परा में लोक के विषय में मूल मान्यताओं में उपरोक्त मान्यताओं के अतिरिक्त इन मान्यताओं का भी समावेश होता है:

1. लोक का आयाम - विषकम्भ (लम्बाई-चौडाई) समान ऊंचाई पर समान होनी चाहिए।
2. लोक की लम्बाई - चौडाई में उत्सेध की अपेक्षा क्रमिक वृद्धि-हानि होनी चाहिए । अर्थात लोक के ठीक मध्य में स्थित 1 राजू आयाम-विष्काम्भ वाले शुल्लक प्रतर से अधोलोक की ओर जाने पर अधोमुखी तिर्यक् वृद्धि (लम्बाई-चौडाई में वृद्धि) , उर्ध्व लोक की और जाने पर उर्ध्व मुखी तिर्यक वृद्धि और ब्रह्म लोक के पास जहाँ लोक का बाहुल्य (लम्बाई- चौडाई) 5 राजू है, वहाँ से उपर जाने पर उर्ध्वमुखी तिर्यक् हानि होती है।

लोक का कुल आयतन 343 घनराजू है , जिसमें अधोलोक का घनफल 196 घनराजू और उर्ध्वलोक का घनफल 147 घनराजू है, इस मान्यता का उल्लेख भी श्वेताम्बर ग्रन्थों में है। किन्तु इसको सिद्ध करने की कोई भी गणितीक विधि वहाँ उपलब्ध नहीं होती है।

यदि आधुनिक गणितीक विषयों में उक्त समस्या का अध्ययन किया जाये, तो ऐसा समाधान निकल सकता है, जो उल्लिखित मूल मान्यताओं के साथ संगत हो और उसमें गणितीक विधियों की पूर्णता भी सुरक्षित रहे । मुनि महेन्द्र कुमार ने गणितीक विधि से बताया कि यदि चित्र 6.2 में अधोलोक और उर्ध्वलोक में लोक भी बाहरी सतहों को सपाट के स्थान पर वक्राकार मान लिया जाय तो अधोलोक का घनफल 196 राजू, ऊर्ध्वलोक का घनफल 147 घनराजू ओर लोक का घनफल 343 घनराजू संभव हो जाता है।

लोक का आकार त्रिशरावसंपुटाकार भी माना गया है जैसा कि 2.3 में बताया गया है । इस मान्यता के अनुसार लोक की ऊंचाई 14 राजू हैं। अधोलोक कुछ कम सात राजू विस्तीर्ण है। तिर्यकलोक एक राजू, ब्रह्मलोक 5 राजू और लोकान्त के पास एक राजू विस्तीर्ण है जैसा कि चित्र 6.3 में दिखाया गया है। इस लोक का घनफल 343 घनराजू सम्भव है।

6.1.1 त्रसनाड़ी

त्रसजीव लोक के निश्चित अंश में पाये जाते हैं। जिस अंश में त्रसजीव पाये जाते हैं उस लोक को त्रसनाड़ी कहते हैं। त्रसनाड़ी लोकाकाश के बहुमध्य प्रदेश में अर्थात् बीचों बीच है। यह त्रसनाड़ी 1 राजू लम्बी, 1 राजू चौड़ी और 14

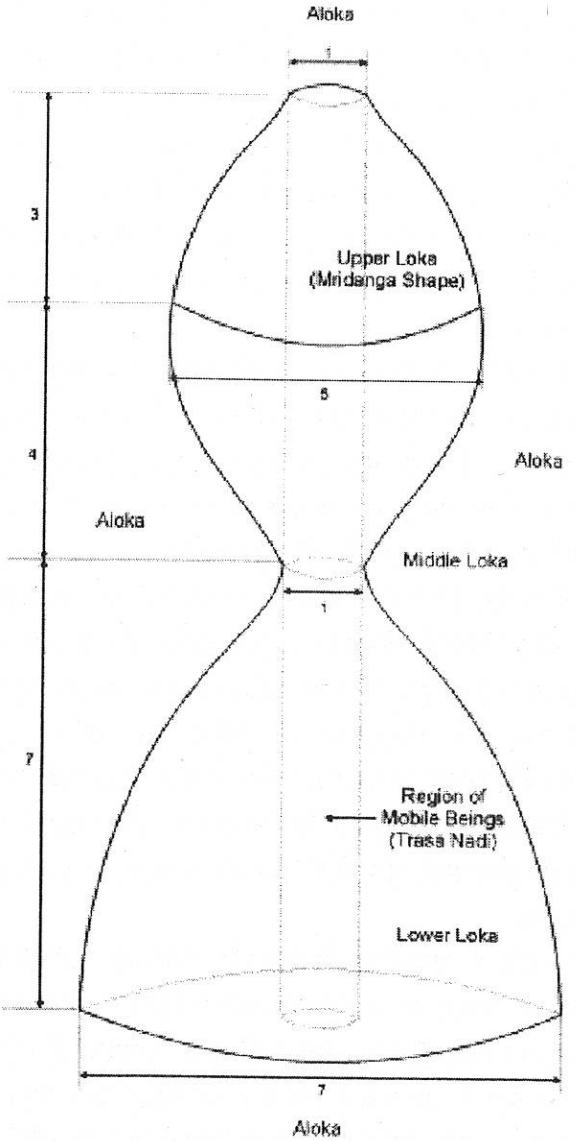

चित्र 6.3 जैन दर्शन में लोक।
त्रसनाड़ी का विस्तार 1 राजू व्यास

राजू ऊँची है। त्रसनाड़ी का घनफल 14 घन राजू है और लोक का परिमाण 343 घन राजू है। इस प्रकार शेष 329 घन राजू में मात्र स्थावर जीव ही पाये जाते हैं, त्रस नहीं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर त्रसनाड़ी 13 राजू ही ऊँची है क्योंकि सातवें नरक के नीचे 1 राजू परिमाण क्षेत्र में निगोदिया जीव ही रहते हैं। सर्वार्थसिद्धि विमान के ऊपर 8 योजन मोटी ईषत् प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी में भी त्रसजीव का अभाव है। अत: लगभग 330 धनराजू स्थावर लोक है। त्रस नाड़ी तीन भागों में विभक्त हैं यथा (1)अधोलोक (2)मध्यलोक (3)उर्ध्वलोक। इन तीनों लोक का विवरण इस प्रकार हैं।

6.1.2 अधोलोक

अधोलोक में सात पृथ्वियां हैं-रत्नप्रभा, शर्करा प्रभा, बालुकाप्रभा, पंक प्रभा, धूम प्रभा, तम: प्रभा और महातम प्रभा (देखें 6.4)। ये सातों ही पृथ्वियां एक-एक राजू अन्तर पर स्थित हैं। मध्यलोक और प्रथम पृथ्वी के बीच कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् प्रथम पृथ्वी का उपरिम भाग मध्यलोक है। प्रथम पृथ्वी से एक राजू के अन्तर पर दूसरी पृथ्वी है। इसी प्रकार तीसरी आदि पृथ्वियां एक-एक राजू के अन्तराल पर हैं। रत्न प्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं (1) खरभाग (2) पंकभाग (3) अब्बहुल भाग। खर भाग 1600 योजन मोटा है, पंक भाग 84000 योजन मोटा है और अब्बहुल भाग 80000 योजन मोटा है। शर्करा प्रभा पृथ्वी 32000 योजन, बालुका प्रभा पृथ्वी 28000 योजन, पंक प्रभा पृथ्वी 24000 योजन, धूमप्रभा पृथ्वी 20000 योजन, तमप्रभा 16000 योजन और महातम प्रभा 8000 योजन मोटी है। खरभाग में भवनवासी देव, पंक भाग में राक्षस तथा असुर कुमार देव (व्यंतर देव) और अब्बहुल भाग में नारकी निवास करते हैं। अन्य सभी पृथ्वियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नारकी रहते हैं।

6.1.3 मध्यलोक

मध्यलोक में जम्बुद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र हैं। सबके बीच में थाली के आकार का जम्बुद्वीप है। उसके चारों तरफ लवणसमुद्र है, उसके चारों तरफ धातकी खण्ड द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर समुद्र है। इस प्रकार एक दूसरे को घेरे हुए असंख्यात द्वीप समुद्र हैं (देंखे चित्र 6.5)। सबके अंत में द्वीप का नाम स्वयं भूरमण द्वीप और अन्त में समुद्र का नाम स्वयं भूरमण समुद्र है। प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने-दूने विस्तारवाले, पहले पहले के द्वीप समुद्र को घेरे हुए तथा चूड़ी के समान आकार वाले हैं।

सब द्वीप समुद्रों के बीच थाली के समान गोल और एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है। इस जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक,

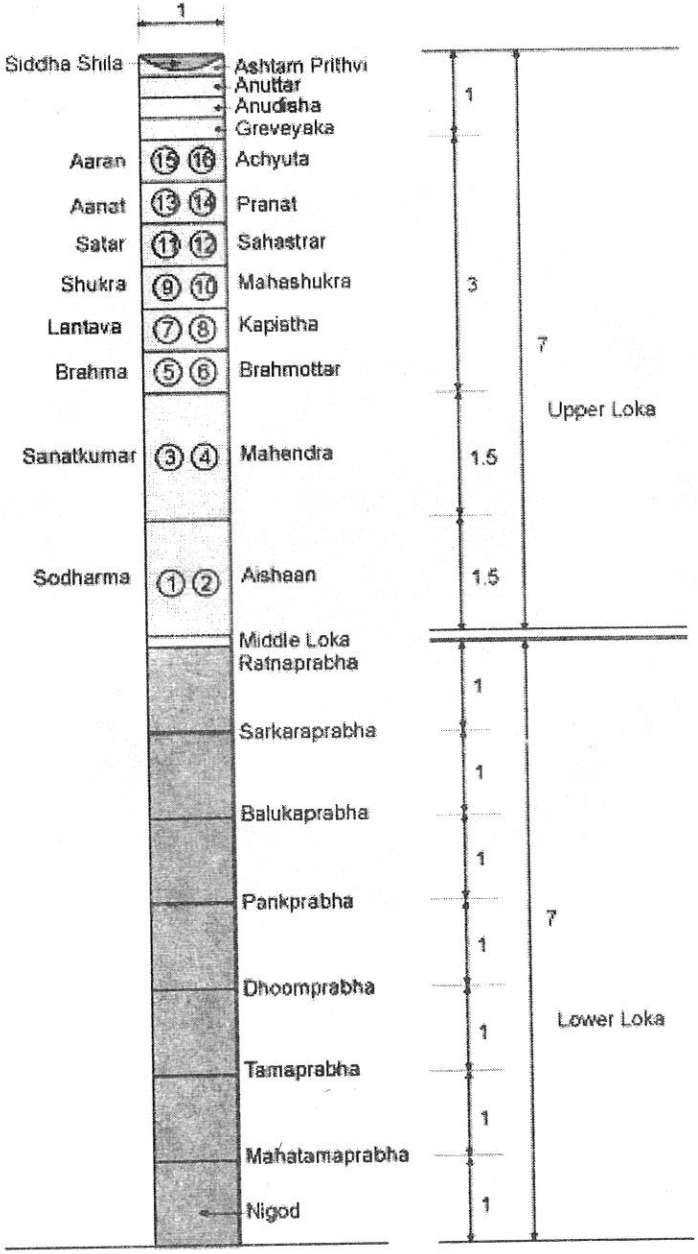
1
Siddha Shila
Ashtam Prithvi
Anuttar
Anudisha
Greveyaka
Aaran
15 16
Achyuta
Aanat
13 14
Pranat
Satar
11 12
Sahastrar
Shukra
9 10
Mahashukra
Lantava
7 8
Kapistha
Brahma
5 6
Brahmottar
Sanatkumar
3 4
Mahendra
Sodharma
1 2
Aishaan
Middle Loka
Ratnaprabha
Sarkaraprabha
Balukaprabha
Pankprabha
Dhoomprabha
Tamaprabha
Mahatamaprabha
Nigod
1
3
1.5
1.5
7
Upper Loka
1
1
1
1
1
1
1
7
Lower Loka

चित्र 6.4 त्रसनाड़ी

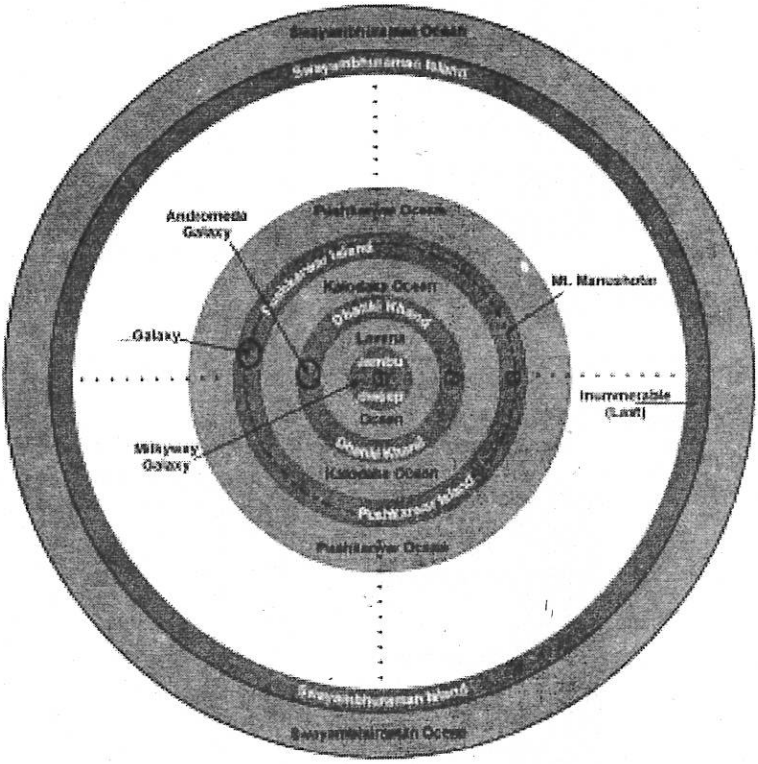

चित्र 6.5 मध्यलोक, द्वीप-समुद्र रचना (माप से नहीं)

हैरण्यवत और ऐरावत ये क्षेत्र हैं(देंखे चित्र 6.6) । उन सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले पूर्व से पश्चिम तक लंबे हिमवत् महाहिमवत, निषध, नील, रूक्मिन और शिखरिन् ये छह वर्षधर - कुलाचल पर्वत हैं। ये पर्वत क्रम से सुवर्ण, चांदी, तपा हुआ सुवर्ण, नील मणि, चांदी और सुवर्ण के समान वर्ण वाले हैं। उन पर्वतों के उपर क्रम से पदम, महापदम, तिगिच्छ, केशरिन्, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के ह्रद-सरोवर हैं। गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला और रक्ता, रक्तोदा ये चौदह नदियाँ जम्बुद्वीप के पूर्वोक्त सात क्षेत्रों के बीच बहती हैं। भारत में गंगा-सिन्धु, हेमवत में रोहित -

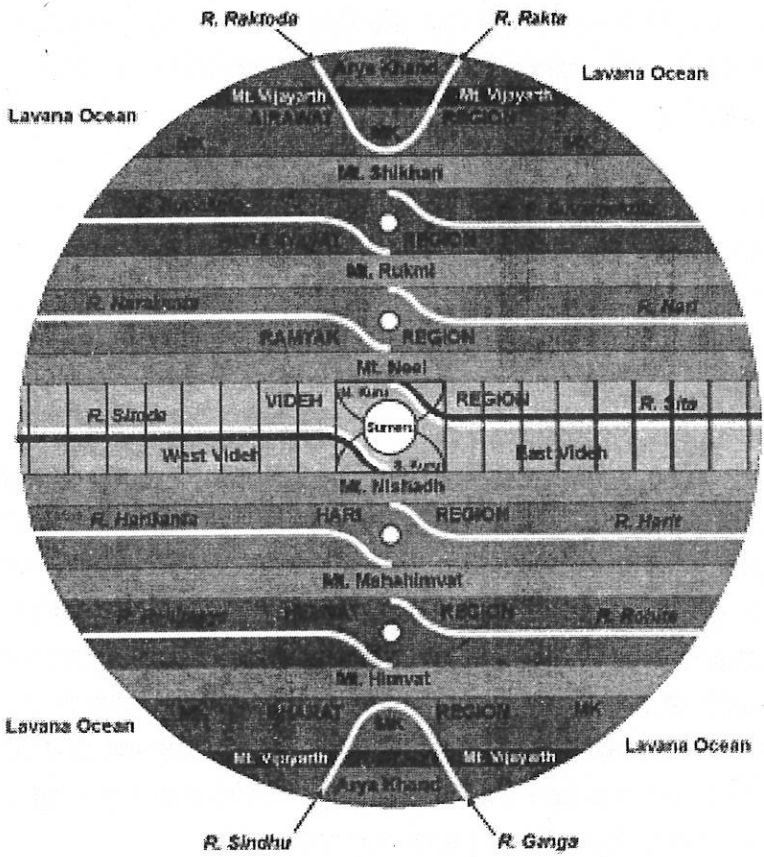

चित्र 6.6 जम्बूद्वीप

रोहितास्या, हरि में हरित-हरिकांता, विदेह में सीता-सीतोदा, रम्यक में नारी-नरकान्ता, हैरण्यवत में सुवर्णकूला-रूप्यकूला और ऐरावत् में रक्ता-रक्तोदा नदियां बहती हैं।

भरतक्षेत्र 526 6/19 योजन विस्तारवाला है। विदेह क्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र भरतक्षेत्र से दूने-दूने विस्तार वाले हैं। विदेह क्षेत्र के उत्तर के तीन पर्वत और तीन क्षेत्र दक्षिण के पर्वत और क्षेत्रों के समान विस्तारवाले हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्र में जीवों के अनुभव आदि को छह कालों से युक्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वारा वृद्धि तथा न्यूनता होती रहती है। अवसर्पिणी के छह भेद (आरा) है - (1) सुषमा-सुषमा (2) सुषमा (3) सुषमा-दु:षमा (4) दु:षमा-सुषमा (5) दु:षमा और (6) अतिदु:षमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणी के भी अति दु:षमा आदि को लेकर छह भेद हैं (देखें चित्र 6.7)। असंख्यात अवसर्पिणी बीत जाने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है। छह भेदों के काल का नियम इस प्रकार है :-

आरा 1	सुषमा-सुषमा	चार कोड़ा कोड़ी सागर
आरा 2	सुषमा	तीन कोड़ा कोड़ी सागर
आरा 3	सुषमा दु:षमा	दो कोड़ा कोड़ी सागर
आरा 4	दु:षमा-सुषमा	42000 वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर
आरा 5	दु:षमा	21000 वर्ष
आरा 6	अति दु:षमा	21000 वर्ष

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी की परिभाषा करते हुए कहा गया है, जिस काल-चक्रार्ध में सभी शुभ भाव क्रमश: क्षीण होते हैं और अशुभ भाव क्रमश: वृद्धिगत होते हैं, वह 'अवसर्पिणी' है। जिस काल -चक्रार्ध में सभी शुभ भाव क्रमश: वृद्धि को प्राप्त करते हैं और अशुभ भाव क्रमश: क्षीण होते हैं, वह 'उत्सर्पिणी' है। अवसर्पिणी काल में पुद्गलों (परमाणु और परमाणु-समूहों में) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि की अपेक्षा से अनंत गुण की हानि होती है। उत्सर्पिणी काल में इसके विपरीत होता है। उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी, इस प्रकार काल-चक्र चलता रहता है। अनादि भूत में अनंत काल-चक्र व्यतीत हो गये और अनन्त भविष्य में अनन्त काल-चक्र व्यतीत होंगे।

अवसर्पिणी काल में समय बीतने के साथ-साथ मनुष्यों का आयुष्य, ऊंचाई और पृष्ठ-अस्थि की संख्या में हानि होती रहती है जैसा कि सारिणी-1 में

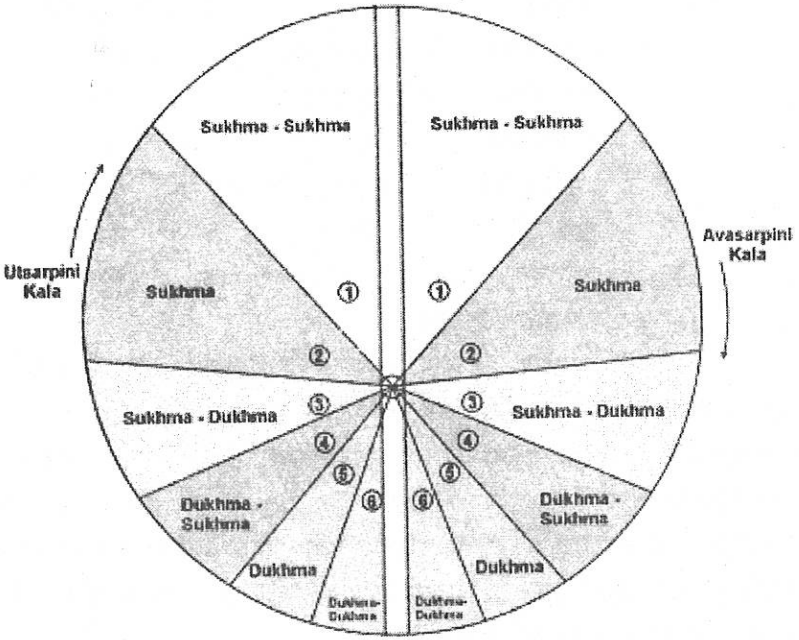
Utsarpini Kala
Avasarpini Kala
Sukhma - Sukhma
Sukhma - Sukhma
Sukhma
Sukhma
Sukhma - Dukhma
Sukhma - Dukhma
Dukhma - Sukhma
Dukhma - Sukhma
Dukhma
Dukhma
Dukhma-Dukhma
Dukhma-Dukhma
①
②
③
④
⑤
⑥

चित्र 6.7 कालचक्र

दिखाया गया है। उत्सर्पिणी काल में आयु, ऊंचाई पृष्ठ-अस्थि-संख्या आदि में क्रमशः वृद्धि होती है। वर्तमान में अवसर्पिणी (हुण्डावसर्पिणी) काल का पांचवा आरा है। इस आरे का प्रारम्भ श्रमण महावीर के निर्वाण के तीन वर्ष 8.5 मास पश्चात् हुआ था। भगवान महावीर का निर्वाण ई.पू. 527 में हुआ था ; अतः ई.पू. 524 में पांचवें आरे का आरम्भ होता है।

सारिणी 1 : प्रत्येक आरे के प्रारम्भ में आयुष्य आदि का मान

आरा-क्रमांक	आयुष्य	ऊंचाई	पृष्ठ-अस्थि-संख्या
1	3 पल्योपम	6000 धनुष्य	256
2	2 पल्योपम	4000 धनुष्य	128
3	1 पल्योपम	2000 धनुष्य	64
4	1 क्रोड-पूर्व	500 (525)* धनुष्य	48
5	130 वर्ष	7 हाथ	24
6	20 वर्ष	1 (3-31/2)* हाथ	12

* दिगम्बर-परम्परा के अनुसार

भरत और ऐरावत क्षेत्र संबंधी म्लेच्छखण्डों तथा विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में अवसर्पिणी काल के समय चतुर्थ काल के आदि से लेकर अन्त तक परिवर्तन होता है, और उत्सर्पिणी काल के समय तृतीय काल के अन्त से लेकर आदि तक परिवर्तन होता है। (अर्थात् दुःषमा सुषमा काल ही बना रहता है।) इनमें आर्यखण्डों की तरह छहों कालों का परिवर्तन नहीं होता है और न इनमें प्रलयकाल पड़ता है। भरत और ऐरावत के सिवाय अन्य क्षेत्र एक ही अवस्था में रहते हैं - उनमें काल का परिवर्तन नहीं होता।

हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरू (विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के निवासी मनुष्य तिर्यंच्च क्रम से एक पल्य, दो पल्प और तीन पल्प की आयु वाले होते हैं। उत्तर के क्षेत्रों में रहने वाले मनुष्य भी हैमवत आदि के मनुष्यों के समान आयुवाले होते हैं। अर्थात् हैरण्यवत क्षेत्र की रचना हैमवत क्षेत्र के समान, रम्यक की रचना हरिक्षेत्र के समान और उत्तर कुरू (विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत स्थान-विशेष) की रचना देव कुरू के समान है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्य रूप तीनों भोग भूमियों के दो दो क्षेत्र हैं। जिनमें सब तरह की भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है उन्हें भोग भूमि कहते हैं। जम्बूद्वीप में छह भोगभूमियाँ और अढाईद्वीप में कुल 30 भोग भूमियाँ हैं। विदेह क्षेत्रों में मनुष्य और तिर्यंच्च संख्यात वर्ष की

आयुवाले होते हैं। भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के एक सौ नब्बेवां भाग है। पंचमेरू संबंधी पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्रों के आर्य खण्डों में कालचक्र घटित होते हैं।

म्लेच्छ खण्डों में उपद्रव रहित अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल (दु:षमा-सुषमा) की वर्तना शाश्वत रहती है, वहाँ जीवों के काय, आयु एवं सुख आदि का वृद्धि-ह्रास होता है। वहाँ शेष कालों के सदृश वर्तना नहीं होती।

- उत्तर कुरू और देवकुरू नामक उत्तम भोग भूमियों में अवसर्पिणी के प्रथम काल के सदृश आयु, उत्सेध एवं सुख आदि की वर्तना होती है।
- हरि, रम्यक क्षेत्रों की दस मध्यम भोगभूमियों में अवसर्पिणी के द्वितीय काल के प्रारम्भ सदृश वृद्धि - ह्रास से रहित वर्तना होती है।
- हेमवत् और हैरण्यवत् श्रेत्रगत दस जघन्य भोग भूमियों में अवसर्पिणी के तृतीय काल के प्रारम्भ सदृश शाश्वत वर्तना होती है।
- मानुषोत्तर पर्वत के बाहर और स्वयंभूरमण द्वीप के मध्य में अवस्थित नागेन्द्र पर्वत के भीतर-भीतर जघन्य भोग भूमि का वर्तन होता है।
- नागेन्द्र पर्वत के बाह्य भाग से अर्ध स्वयंभूरमण द्वीप में और स्वयं भूरमण समुद्र मे अवसर्पिणी काल के पंचम काल के प्रारम्भ सदृश, हानि-वृद्धि रहित वर्तना होती है।
- चतुर्निकाय देवों के स्वर्ग में सुख के सागर स्वरूप सुषमा-सुषमा काल के सदृश ही नित्य वर्तन होता है।
- सातों नरक-भूमियों में नित्य ही असाता की खान दु:षमा-दु:षमा काल के सदृश वर्तन होता है।

धातकी खण्ड नामक दूसरे द्वीप में क्षेत्र, कुलाचल मेरू, नदी आदि समस्त पदार्थों की रचना जम्बूद्वीप से दूनी दूनी है। पुष्करार्द्ध द्वीप में भी जम्बूद्वीप की अपेक्षा सब रचना दूनी दूनी है। पुष्करवर द्वीप का विस्तार 16 लाख योजन है, उसके ठीक बीच में चूड़ी के आकार का मानुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे इस द्वीप के दो हिस्से हो गये हैं। पूर्वार्ध में सब रचना धातकी खण्ड के समान है और जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है। मानुषोत्तर पर्वत के पहले अर्थात् अढ़ाई द्वीप (जम्बूद्वीप, घातकी खण्ड और पुष्करवर के पूर्वार्ध को मिलाकर अढ़ाई द्वीप होते हैं।) में ही मनुष्य होते हैं। मानुषोत्तर पर्वत के आगे ऋद्धिधारी मुनिश्वर तथा विद्याधर भी नहीं जा सकते। आर्य और म्लेच्छ के भेद से मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। जो अनेक गुणों

से सम्पन्न हों तथा गुणी पुरूष जिनकी सेवा करे उन्हें आर्य कहते हैं। जो आचार विचार से भ्रष्ट हों तथा जिन्हें धर्म-कर्म का कुछ विवेक न हो उन्हें म्लेच्छ कहते हैं। पाँच भरत, पाँच ऐरावत और देव कुरू - उत्तरकुरू को छोड़कर पाँच विदेह, इस तरह अढ़ाईद्वीप में कुल 15 कर्म भूमियाँ हैं। जहाँ पर असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छह कर्मो की प्रवृति हो उसे कर्म भूमि कहते हैं।

6.1.4 देवो के भेद

देवों के चार भेद हैं - (1) भवनवासी (2) व्यंतर (3) ज्योतिष्क और (4) वैमानिक। सोलहवें स्वर्ग तक के देव पर्यन्त उक्त चार प्रकार के देवों के क्रमशः दश, आठ, पाँच और बारह भेद हैं। सभी चार प्रकार के देवों में प्रत्येक के इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिश, परिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, अभिभोग्य और किल्विषिक ये दस भेद होते हैं। व्यंतर और ज्योतिषी देव त्रायस्त्रिश तथा लोकपाल भेद से रहित होते हैं। भवनवासी और व्यंतरों में प्रत्येक भेद में दो-दो इन्द्र होते हैं। इस प्रकार भवनवासियों के दश भेदों में बीस और व्यंतरों के आठ भेदों में सोलह इन्द्र होते हैं तथा इतने ही प्रतीन्द्र होते हैं।

भवनवासी देवों के असुरकुमार, नागकुमार, विद्युतकुमार, सुवर्ण कुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधि कुमार और दिककुमार ये दश भेद हैं। व्यंतर देवों के किन्नर, किम्पुरूष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार आठ भेद हैं। ज्योतिष्क देवों के सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारों के भेद से पाँच प्रकार हैं। ज्योतिष्क देव मनुष्यलोक में मेरूपर्वत की प्रदिक्षणा देते हुए हमेशां गमन करते रहते हैं। घड़ी, घण्टा, दिन, रात आदि व्यवहार - काल का विभाग उन्हीं गतिशील ज्योतिष्क देवों के द्वारा किया गया है। मनुष्य लोक अढ़ाई द्वीप से बाहर के ज्योतिष्क देव स्थिर हैं।

विमान-जिसमें रहने वाले देव अपने को विशेष पुण्यात्मा समझे उन्हें विमान कहते हैं और विमानों में जो पैदा हों उन्हें वैमानिक कहते हैं। वैमानिक देवों के दो भेद हैं - (1) कल्पोपन्न और (2) कल्पातीत। जिनमें इन्द्र आदि दश भेदों की कल्पना होती हैं ऐसे सोलह स्वर्गो को कल्प कहते हैं, उनमें जो पैदा हो उन्हें कल्पोपन्न कहते हैं। जो सोलहवें स्वर्ग से आगे पैदा हों उन्हें कल्पातीत कहते हैं। सोलह स्वर्गों के आठ युगल, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर ये सब विमान क्रम से ऊपर ऊपर हैं। सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, सतार-सहस्त्रार इन छह युगलों के बारह स्वर्ग में, आनत-प्राणत, इन दो स्वर्गो में, आरण-अच्युत इन दो स्वर्गो में, नव ग्रैवेयक

विमानों में, नव अनुदिश विमानों में और विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा सर्वार्थ सिद्धि इन पोंच अनुत्तर विमानों में वैमानिक देव रहते हैं। वैमानिक देव-आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता, इन्द्रिय विषय और अवधिज्ञान का विषय इन सबकी अपेक्षा ऊपर ऊपर विमानों में अधिक अधिक है। ऊपर ऊपर के देव, गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा हीन हीन हैं। सोलह स्वर्ग से आगे के देव अपने विमान को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते। नवग्रैवेयक वगैरह के देव एक समान वैभवधारी होते हैं और वे अहमिन्द्र कहलाते हैं। ब्रह्मलोक के देव लौकान्तिक देव हैं। सारस्वत, आदित्य, वहनि, अरूण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट ये आठ लौकान्तिक देव हैं। वे ब्रह्मलोक की ऐशान आदि आठ दिशाओं में रहते हैं। विजय वैजयंत जयंत अपराजित तथा अनुदिश विमानों के अहमिन्द्र द्विचरम होते हैं, अर्थात् मनुष्यों के दो जन्म लेकर नियम से मोक्ष चले जाते हैं। किन्तु सरवार्थ सिद्धि के अहमिन्द्र एक भवावतारी ही होते हैं।

6.1.5 उर्ध्वलोक

सामान्य दृष्टि से सुमेरू के तल भाग से लेकर लोकाकाश पर्यन्त अंश को उर्ध्वलोक कहते हैं। ऊर्ध्वलोक का उत्सेध 7 राजू परिमाण है। चारों प्रकार के देवो में केवल वैमानिक देव इस उर्ध्वलोक में वास करते हैं। अन्य तीनों प्रकार के देव मध्यलोक में वास करते हैं। 16 स्वर्गो के आठ युगल हैं (देखें चित्र 6.4)। मेरू तल से डेढ़ राजू में सौधर्म-ऐशान, उसके ऊपर डेढ़ राजू में सानत्कुमार-माहेन्द्र, उसके उपर आधा-आधा राजू परिमाण में अन्य छहों युगल स्थित हैं। इस प्रकार छह राजू में सोलह स्वर्ग स्थित है। सोलह स्वर्ग के ऊपर एक राजू में नौ ग्रेवेयक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान का अवस्थान है। सर्वार्थ सिद्धि विमान से लेकर लोक के अग्रस्थित तनुवातवलय पर्यन्त क्षेत्र को ईषत् प्राग्भार संज्ञा वाली अष्टम् पृथ्वी कहते हैं। इसकी चौड़ाई 1 राजू, लम्बाई (उत्तर-दक्षिण) 7 राजू एवं मोटाई 8 योजन प्रमाण है। इस आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय क्षेत्राकार और मनुष्य क्षेत्र के व्यास प्रमाण सिद्ध क्षेत्र है, जिसके मध्य की मोटाई आठ योजन है और अन्यत्र क्रम से घटती हुई, अन्त में ऊँचे (सीधे) रखे हुए कटोरे के सदृश चौड़ी रह गई है। इस सिद्धक्षेत्र के ऊपरवर्ती तनुवातवलय में सिद्ध परमेष्ठी स्थित हैं।

6.1.6 वातवलय

सम्पूर्ण लोक को वेष्टित करने वाले तीन वातवलय हैं (देखें चित्र 6.1)। लोक को वेष्टित करते हुए घनोदधि वातावलय है फिर उसके बाद घनवातवलय है

और अन्त में तनुवातवलय है। घनोदधि वातवलय का वर्ण गोमूत्र के सदृश है, घनवातवलय का वर्ण मूंग के सदृश है, तनुवातवलय अनेक प्रकार के रंगों को धारण किए हुए है। (कुछ आचार्यों के अनुसार यह पंचवर्ण वाला है)। इसमें से प्रथम धनोदधि वातवलय लोक का आधार है। धनोदधि वातवलय का आधार घनवातवलय है, और घनवातवलय का आधार तनुवातवलय है। अंत मे तनुवातवलय आकाश के आधार पर है एवं आकाश निज आधार पर है।

लोकाकाश के अधोभाग में दोनो पार्श्व भागों में नीचे से लगाकर एक राजू की ऊंचाई पर्यन्त तथा आठों भूमियों के नीचे तीनों वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटाई वाले हैं। दोनो पार्श्व भागों में राजू से उपर सप्तम पृथ्वी के निकट धनोदधि वातवलय 7 योजन, धनवातवलय 5 योजन और तनुवातवलय 4 योजन मोटाई वाले हैं। इस सप्तम पृथ्वी के ऊपर क्रम से घटते हुए तिर्यक्लोग के समीप तीनो वातवलय क्रम से 5,4,3 योजन बाहुल्य वाले तथा वहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रम से बढ़ते हुए सप्तम पृथ्वी के निकट-सदृश 7,5,4 योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं तथा ब्रह्मलोक से क्रमानुसार हीन होते हुए तीनो वातवलय उर्ध्व लोक के निकट तिर्यक्लोक सदृश 5,4,3 योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं। लोक के शिखर पर पवनों का परिमाण क्रमशः 2 कोश, 1 कोश और 1 से कुछ कम कोश है। लोक के अग्रभाग पर घनोदधिवातवलय की मोटाई 2 कोश, धनवातवलय की 1 कोश और तनुवातवलय की 1 से कुछ कम कोश है।

6.1.7 जम्बूद्वीप

उतर कुरू के मध्य में अनादिनिधन, पृथ्वीमयी, अकृत्रिम जम्बूद्वीप है। मध्यलोक मे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। इन द्वीप समुद्रों के मध्य में नाभि स्थानीय अर्थात् सर्वद्वीप समुद्रों के मध्य भाग में जम्बूद्वीप है जिसका विस्तार 100000 योजन है और जो सूर्यमण्डल के समान गोल है। जम्बूद्वीप की स्थूल परिधि 300000 योजन है। इसके मध्य में मेरू पर्वत है। दो द्वीपों में इष्वाकार पर्वतों के द्वारा घिरे हुए पूर्व पश्चिम में दो-दो धनुषाकार क्षेत्रों में दो-दो मेरूपर्वत हैं। इन मेरू पर्वतों का अवस्थान उन धनुषाकार क्षेत्रों के ठीक मध्य में स्थित विदेहों के ठीक मध्य में है।

उन मन्दर मेरूओं की दक्षिण दिशा से लगाकर क्रमशः (1) भरत, (2) हेमवत् (3) हरि (4) विदेह (5)रम्यक् (6) हैरण्यवत् और (7) ऐरावत क्षेत्र हैं जोकि क्रमशः (1) हिमवान (2) महाहिमवान् (3) निषध (4) नील (5) रूक्मी और (6) शिखरणी - इन छह कुलाचलों से विभाजित है (देंखे चित्र 6.6)। इन

कुलाचलों के दोनो पार्श्व भाग मणिमय एवं समुद्र को स्पर्श करने वाले हैं। जम्बुद्वीप के दोनों कुलाचलों के दोनों भाग लवण समुद्र को स्पर्श करते हैं, घातकी खण्ड में कालोदधि को स्पर्श करते हैं, किन्तु पुष्करार्ध द्वीप में कालोदधि और मानुषोत्तर पर्वत को स्पर्श करते हैं। भरत क्षेत्र से हिमवान् कुलाचल का विस्तार दूना, तथा हिमवान् कुलाचल से हेमवत् क्षेत्र का विस्तार दूना है। इसी प्रकार विदेह पर्यन्त दूना-दूना है। पुनः ऐरावत क्षेत्र से कुलाचल तथा कुलाचल से विदेह पर्यन्त क्षेत्र का विस्तार दूना-दूना है।

6.1.7.1 भरत क्षेत्र

तीन ओर लवण समुद्र तथा एक ओर हिमवान् पर्वत के बीच में भरत क्षेत्र है। गंगा, सिंधु और विजयार्द्ध पर्वतों से विभक्त होकर इसके छह खण्ड हो जाते हैं। विजयार्द्ध पर्वत 50 योजन विस्तृत, 25 योजन ऊंचा, 6 1/4 योजन गहरा है एवं दोनों छोरों में पूर्व पश्चिम के लवण समुद्र को स्पर्श करता है। इसी पर्वत से गंगा और सिंधु निकली हैं। विजयार्द्ध पर्वत में सुन्दर लक्षणों से युक्त विद्याधर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरूषार्थों को करते हुए रहते हैं। यहाँ के निवासी भी यद्यपि भरत क्षेत्र की तरह षटकर्म से ही आजीविका करते हैं, किंतु प्रज्ञप्ति आदि विधाओं को धारण करने के कारण विद्याधर कहे जाते हैं। विजयार्द्ध पर्वत में ऊँचाई की ओर विस्तृत व्यन्तर श्रेणियाँ है जिनमें उत्तम दिव्य रूप के धारी सौधर्म इन्द्र के वाहन जाति के व्यन्तर देव रहते हैं। पर्वत के शिखर पर नौ कूट स्थित हैं। इन कूटों में उत्तम विद्याधर मनुष्य कामदेव के समान बहुत प्रकार की विद्याओं में संयुक्त हमेशा ही छह कर्मों से सहित हैं। इन विद्याधरों की स्त्रियाँ अप्सराओं के सदृश, दिव्य लावण्य से रमणीय और बहुत प्रकार की विद्याओं से समृद्ध हैं। यहाँ के मनुष्य अनेक प्रकार की कुल विद्या, जाति विद्या और साधित विद्याओं के प्रसाद से हमेशा ही अनेक प्रकार के सुख का अनुभव करते रहते हैं।

विजयार्द्ध के दक्षिण में, लवण समुद्र के उत्तर में और गंगा-सिंधु नदियों के मध्य में आर्य खण्ड है। स्वर्ग, लक्ष्मी और मुक्ति के सुख का आधार यह उत्तम आर्य खण्ड ही है, अतः यहाँ आर्यजन अपने तपोबल से स्वर्ग और मोक्ष का साधन करते हैं। आर्यखण्ड के पूर्व-पश्चिम भाग में, विजयार्द्ध उत्तर दिशा में धर्म आचरण से रहित पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं, जिनमें धर्म-कर्म से बहिर्भूत, नीचकुल में समन्वित, विषयासक्त और दुर्गति पाने वाले म्लेच्छ जीव रहते हैं। आर्यखण्ड के मध्य में श्रेष्ठ अयोध्या नगरी है।

6.1.7.2 अन्य छह क्षेत्र

हेमवत् शाश्वत जघन्य भोगभूमि है। जो जीव यहाँ उत्पन्न होते हैं उन्हें दस प्रकार के कल्पवृक्ष संकल्प मात्र से 10 प्रकार के उत्तम भोग देते हैं। इसके बीच में शब्दवान् नाम का वृत वेताढ्य पर्वत है। यह पर्वत क्षेत्र के ठीक मध्य में स्थित रहने के कारण एवं वृताकार होने के कारण इसे नाभिगिरी कहते हैं। हैरेण्यवत भी हेमवत् के समान जघन्य भोगभूमि है।

हरिक्षेत्र में सिंह के समान शुक्ल रूप वाले मनुष्य रहते हैं। इसके बीच में विकृतमान नाभि पर्वत है। इसमें अरूणदेव का विहार है। इसमें शाश्वतिक मध्यम भोगभूमि की रचना रहती है। रम्यक क्षेत्र हरि क्षेत्र के समान है।

विदेह श्रेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा विदेह अर्थात् कर्मबंध उच्छेद के लिए यत्न करते रहते हैं। यहाँ कभी भी धर्म का उच्छेद नहीं होता। विदेह क्षेत्र पूर्व विदेह, अपर विदेह, उतर कुरू और देवकुरू, इन चार भागों में विभाजित है। विदेह के मध्य भाग में मेरू पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार वक्षार पर्वत हैं। उत्तर कुरू क्षेत्र में जामुन वृक्ष के आकार का शाश्वत पृथ्वीकाय एक महान जम्बूवृक्ष स्थित है। इस जम्बूवृक्ष की शाखाओं पर यक्ष कुल में उत्पन्न आदर, अनादर देवों के आवास हैं। सुदर्शन मेरू की नैऋत्य दिशा मे सीतोदा नदी के पश्चिम तट पर देवकुरू क्षेत्र में शाल्मली वृक्ष है। यहाँ गरूढ़ कुल में उत्पन्न वेणु नाम के महान देव निवास करते हैं।

6.1.7.3 सुमेरू पर्वत

सुदर्शन मेरू की जड़ चित्रा पृथ्वी को भेदकर एक हजार योजन नीचे तक गई है। जड़ के नीचे मेरू का व्यास 10090 10/11 योजन और इसकी परिधि का परिमाण 31910 2/11 योजन है। पृथ्वी तल पर मेरू की चौड़ाई 10000 योजन और परिधि का परिमाण लगभग 31623 योजन है। मेरू पर्वत की ऊंचाई 99000 योजन है और मुख 1000 योजन परिणाम है। मेरू पर्वत नीचे से 61 हजार योजन पर्यन्त अनेक वर्ण वाला है, इसके उपर पूरा सदृश वर्ण का है। सुमेरू पर्वत के तीन स्तर पर तीन वन-नन्दन वन, सौमन वन और पाण्डुक वन हैं जिनमें कई कूट हैं। नन्दन वन के कूट में बलभद्र नाम के व्यन्तर देव रहते हैं।

सीता नदी के पूर्व तट पर चित्र और पश्चिम तट पर विचित्र नामक पर्वत हैं। इन दोनों पर्वतों के बीच 500 योजन का अन्तराल है। सीतोदा नदी के पूर्व तट पर यमक और पश्चिम तट पर मेघ नाम का पर्वत है। इन दोनों में भी 500 योजन का अन्तराल है। इन चारों गिरी की ऊँचाई 1000 योजन है। पृथ्वी पर इनकी चौड़ाई 1000

योजन और शिखर पर 500 योजन है। इन गिरी कूटो पर अपने-अपने पर्वत के नाम वाले अर्थात् चित्र, विचित्र, यमक और मेघ नाम के चार देव क्रम से निवास करते हैं।

यमक गिरी पर्वतों से आगे देवकुरू, उत्तर कुरू, पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल क्षेत्र हैं। इन चार क्षेत्रों के मध्य पाँच-पाँच द्रह हैं। प्रत्येक द्रह के दोनों तटों पर पाँच-पाँच कांचन पर्वत हैं जिनकी ऊंचाई 100 योजन है, जमीन पर चौड़ाई 100 योजन और शिखर पर 50 योजन है। इन पर्वतों पर रूप पर्वत नामधारी शुक्र सदृश वर्ण-कान्ति के धारक देव निवास करते हैं।

देव कुरू और उत्तर कुरू इन दो भोग भूमियों में सीता और सीतोदा नदियों के तटों पर दो-दो दिग्गजेन्द्र पर्वत स्थित हैं। ये पर्वत 100 योजन ऊँचे, भूमि पर 100 योजन चौड़े और शिखर पर 50 योजन चोड़े हैं। इसी प्रकार छह अन्य पर्वत हैं। इन आठों पर्वत पर दिग्गजेन्द्र देव निवास करते हैं।

उत्तर कुरू और देव कुरू उत्कृष्ट भोग भूमियाँ हैं। उत्तम क्षेत्र के सद्भाव से वहाँ के जीवों को रोग नहीं होता, न वहाँ भय है, न ग्लानि हैं, न अकाल मृत्यु है, न दीनता है, न वेदना है, न निहार होता है और न छह ऋतुओं का संचार होता है न अनिष्ट का संयोग होता हैं, न इष्ट का वियोग होता है न अपमान आदि का दु:ख है और न ही अन्य किंचित द्रव्य वहाँ प्राप्त होते हैं। वे जीव कल्पवृक्षों से उत्पन्न होने वाले भोगों को निरन्तर भोगते हैं। वहाँ पर स्त्री पुरूष युगल रूप में एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ मरते हैं। भोग भूमि के जीव सरल परिणामी होने से मरण के बाद देवगति को ही प्राप्त करते हैं।

6.1.7.4 विदेह क्षेत्र

मेरू पर्वत की पूर्व दिशा में पूर्व विदेह और पश्चिम दिशा में पश्चिम विदेह है। पूर्व विदेह के मध्य से सीता नदी और पश्चिम विदेह के मध्य सीतोदा नदी बहती है। इन नदियों के दक्षिण -उत्तर तटों के द्वारा चार क्षेत्र बन गये हैं। एक-एक क्षेत्र में आठ-आठ विदेह देश हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 32 विदेह देश हैं। इनमें चार गजदन्त पर्वत और 16 वक्षार पर्वत हैं। इन पर्वतों के शिखरों पर अपने-अपने पर्वतों के नामधारी देव रहते हैं। प्रत्येक विदेह क्षेत्र में एक-एक उपसमुद्र हैं और उस उपसमुद्र में एक-एक टापू है, जिस पर 56 अन्तरद्वीप, 26000 रत्नाकर हैं। सीता-सीतोदा नदियों के तीर के समीप जल में मागध, वरतनु और प्रयास नामक व्यंतर देवों के तीन द्वीप हैं।

विदेह क्षेत्र में वर्षा ऋतु में कुल 133 दिन मर्यादापूर्वक वर्षा होती है, वहाँ कभी दुर्भिक्ष नही पड़ता। पशु पक्षियों के रोग नहीं होतें। ये देश, कुदेव, कुलिंग

(अर्थात्, जिन लिंग से भिन्न लिंग) और कुमत से रहित तथा केवल ज्ञानियों, तीर्थंकर आदि शलाका पुरूषों और ऋद्धि सम्पन्न साधुओं से निरन्तर समन्वित रहते हैं। प्रत्येक देश में एक-एक विजयार्द्ध पर्वत है। विदह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले निपूण जन धर्म के प्रभाव से 16 स्वर्ग पर्यन्त जाते हैं। कोई भद्र परिणामी गृहस्थ पात्रदान के प्रभाव से भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं, कोई बुद्धिमान जन जिनेन्द्र भगवान की पूजा, स्तुति एवं भक्ति के द्वारा इन्द्र पद प्राप्त करते हैं। बहुत प्रकार के भोगों को भोगने वाले जो विवेकी देव स्वर्ग में पूण्यकर्मा हैं, वे वहाँ से चय होकर स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धी के लिए विदेह क्षेत्रस्थ उत्तम कुलो में जन्म लेते हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था धातकी खण्ड और पुष्करार्धगत विदेह क्षेत्रों में होती है।

6.1.8 ज्योतिर्लोक

जो ज्योतिर्मय होते हैं, उसको ज्योतिष्क कहते हैं। ज्योतिष्क देवों के पाँच प्रकार हैं - (1) चंद्र (2) सूर्य (3) ग्रह (4) नक्षत्र (5) प्रकीर्णक तारा। ये पाँचों लोक के अंत में धनोदधिवातवलय का स्पर्श करते हैं अर्थात् पूर्व-पश्चिम की अपेक्षा धनोदधिवातवलय तक ज्योतिष्क देवों के विमान हैं। जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण अर्थात् असंख्यात द्वीप समुद्र पर्यन्त ज्योतिष्क देव रहते हैं। ढाई उद्धार सागर रोम के परिमाण द्वीप समूह की संख्या हैं। सूर्य और चंद्र की किरणें समान नहीं हैं।

ज्योतिष्क देव के इन्द्र चन्द्र हैं एवं प्रतिइन्द्र सूर्य है। एक चन्द्रमा के परिवार में 88 ग्रह, 28 नक्षत्र और 66775×10^{14} तारागण हैं । जम्बूद्वीप में 2 चन्द्रमा एवं 2 सूर्य हैं। लवणोदक समुद्र में 4 चन्द्र 4 सूर्य हैं। तथा धातकी खण्ड में 12 चन्द्र एवं 12 सूर्य हैं। कालोदधि समुद्र में 42 चन्द्र तथा 42 सूर्य हैं। अर्धपुष्कर द्वीप में 72 चन्द्र एवं 72 सूर्य है। जम्बूद्वीप में 36 ध्रुवतारा, लवणोदक समुद्र में 139 ध्रुवतारा, धातकी खण्ड में 1010 ध्रुव तारा, कालोदक में 41120 ध्रुवतारा तथा पुष्करार्ध में 35230 ध्रुवतारा हैं।

जम्बुद्वीप में 2 चन्द्रमा से संबंधित ताराओं का परिमाण 133950 कोड़ा कोड़ी है। भरत क्षेत्र में ताराओं की संख्या 705 कोड़ा कोड़ी है। मनुष्य लोक संबंधी अढ़ाई द्वीप में ज्योतिष्क देव परिभ्रमण करते हैं। मानुषोत्तर पर्वत से 50 हजार योजन आगे चल कर सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिष्क वलय के रूप में स्थित हैं अर्थात् मानुषोत्तर से 50 हजार योजन चलकर ज्योतिष्कों का पहला वलय हैं। इस वलय में 144 चन्द्र एवं 144 सूर्य हैं। इस वलय के बाद एक-एक लाख योजन जाकर द्वितीयादि वलय हैं। द्वितीयादि वलय में प्रथमादि वलय से 4-4 चन्द्र, सूर्य की संख्या ज्यादा है। पूर्व

द्वीप समुद्र के आदि में चन्द्र, सूर्य की जो संख्या है, उससे उत्तर द्वीप समुद्र की आदि में चन्द्र, सूर्य की संख्या दूनी है। इसी प्रकार सूर्य - चन्द्र का अवस्थान अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र तक है। एक दूसरे वलय की किरणें निरन्तर परस्पर मिली हुई हैं।

ज्योतिष्किदेव मेरू की प्रदक्षिणा करके नित्य भ्रमण करते हैं। इनकी गति के अनुसार दिन-रात्रि आदि काल विभाग होता है। ज्योतिष्क देवों के समूह मेरू पर्वत को 1121 योजन छोड़कर प्रदक्षिणा रूप से गमन करते हैं। चन्द्र, सूर्य एवं ग्रह को छोड़कर शेष सभी ज्योतिष्क देव एक ही पथ में गमन करते हैं। चन्द्र, सूर्य एवं ग्रह के अनेक गति पथ हैं।

चन्द्र सूर्य के गमन क्षेत्र की गली को चार क्षेत्र कहते हैं। यह चार क्षेत्र सूर्य बिंब (विस्तार) के परिमाण 510 योजन है। जम्बूद्वीप के चार क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप में मात्र 180 योजन ही है, शेष 330 योजन विस्तार लवण समुद्र में है। पुष्करार्ध पर्यन्त अवशेष द्वीप समुद्र संबंधी सूर्य-चन्द्र अपने-अपने क्षेत्र मे ही विहार करते हैं।

6.1.9 द्वीप सागर

एक राजू विस्तार वाले मध्य लोक में द्वीप को वेष्टित करते समुद्र एवं समुद्र को वेष्टित करते द्वीप, इसी प्रकार अढाई उद्धार सागर के रोम प्रमाण असंख्यात द्वीप समूह हैं। जम्बूद्वीप इस असंख्यात द्वीप समुद्र का सर्वप्रथम द्वीप है। इसको वेष्टित करके लवणोदक समुद्र है। लवणोदक समुद्र को वेष्टित करके दूसरा धातकी खण्ड द्वीप है। इसको वेष्टित करके दूसरा कालोदक समुद्र हैं। कालोदक समुद्र को वेष्टित करते हुए पुष्करवर द्वीप है। इसी प्रकार परस्पर को वेष्टित करते हुए अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप पर्यन्त जानना चाहिए। जम्बूद्वीप से दो गुना लवण समुद्र है। लवण समुद्र का बाह्य सूची व्यास 5 लाख योजन है। लवण समुद्र, कालोदक समुद्र और अंतिम स्वयंम्भूरमण समुद्र में जलचर जीव पाये जाते हैं, क्योंकि ये तीन समुद्र कर्मभूमि संबंधी हैं। शेष समुद्रों में जलचर जीव नहीं होते। पुष्करवर द्वीप के वलय व्यास के बीच में मानुषोत्तर पर्वत है। मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त ही मनुष्य है, जो मानुषोत्तर पर्वत को उल्लंघन करने की शक्ति से हीन है। मानुषोत्तर पर्वत से आगे स्वयम्प्रभ पर्वत (स्वयंम्भूरमण द्वीप के वलय व्यास के अर्ध भाग में स्थित) पर्यन्त जघन्य भोगभूमियों में तिर्यंच रहते हैं। स्वयंम्प्रभ पर्वत के बाह्य भाग में कर्मभूमि की रचना है और उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रस जीव वहीं पाये जाते हैं।

लवण समुद्र चित्रा पृथ्वी के ऊपरी तल से ऊपर कूट के आकार से आकाश में स्थित हैं। इस समुद्र में विदिशाओं और अन्तर-दिशाओं वाले द्वीप हैं। विदिशाओं

के दोनो पार्श्व में आठ सूर्य द्वीप हैं और अन्तरदिशाओं के दोनों पार्श्व भाग में 16 चन्द्रद्वीप हैं। सभी द्वीप गोल आकार वाले हैं। इन द्वीपों में द्वीप सदृश नाम वाले बेलन्धर जाति के नागकुमार देव रहते हैं। भरत क्षेत्र की गंगा - सिंधु के प्रवेश द्वार और जम्बूद्वीप का द्वार - इन तीन द्वारों के सम्मुख मागध, वरतनु, प्रभास नाम के तीन द्वीप हैं। इन द्वीपों में इसी नाम वाले तीन देव रहते हैं। इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र में भी तीन द्वीप हैं।

लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट की दिशाओं में 4, विदिशाओं में 4, अन्तर-दिशा में 8 तथा हेमवत् कुलाचल भरत संबंधी विजयार्ध, शिखरणी कुलाचल और ऐरावत संबंधी विजयार्ध - इन 4 पर्वतों के अंतिम भाग के निकट एक-एक अर्थात् आठ द्वीप हैं। इसके बाह्य तट पर भी 24 द्वीप हैं। अतः लवण समुद्र में 48 द्वीप हैं। इसी प्रकार कालोदक समुद्र के दोनों तट पर 48 द्वीप हैं। इन सभी द्वीपों में कुमानुषों का निवास हैं जो वृक्षों के नीचे रहते हैं और कल्प वृक्षों द्वारा प्रदत्त फलों का भोजन करते हैं। ये मनुष्य युगल रूप में गर्भ से जन्म लेते हैं। पश्चात् वे उस भूमि के योग्य भोगों को भोगकर आयु के अंत में मरण को प्राप्त कर भवनत्रिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

लवण समुद्र को वेष्टित करके 4 लाख योजन विस्तार वाला द्वितीय धातकी खण्ड द्वीप है। धातकी खण्ड के भीतर उत्तर कुरू ओर देव कुरू क्षेत्र में धातकी वृक्ष (बहेड़ा) स्थित है। यहाँ पर सुदर्शन मेरू के पूर्व पश्चिम में दो मेरू हैं जिनकी ऊँचाई 84000 योजन है। मेरू के उत्तर दक्षिण में एक हजार योजन विस्तृत और द्वीप के विस्तार के बराबर दो इष्वाकार पर्वत हैं। इनकी ऊँचाई 400 योजन है, नींव 100 योजन प्रमाण है। ये पर्वत धातकी खण्ड को दो भागों में विभाजित करते हैं जिनका नाम पूर्व धातकी खण्ड और पश्चिमी धातकी खण्ड है। दक्षिण इष्वाकार पर्वत के पार्श्व के भाग में दोनों तरफ भरत क्षेत्र एवं उत्तर इष्वाकार पर्वत के पार्श्व भाग में दो ऐरावत क्षेत्र हैं।

इस द्वीप में 2 मेरू, 2 इष्वाकार, 12 कुलगिरी, 68 विजयार्ध, 8 नाभिगिरी, 8 गजदंत, 8 यमक, 400 कॉचनशैल, 16 दिग्गजेन्द्र पर्वत, 32 वक्षार पर्वत, 68 वृषभगिरी, 6 कर्म भूमि, 12 भोग भूमि, 28 महानदियाँ, 128 विदेह क्षेत्र की नदियाँ, 24 विभंगा नदियाँ, 32 द्रह, 156 महानदियाँ व क्षेत्र नदियों के कुण्ड, 24 विभंगा के कुण्ड, 2 घातकी वृक्ष और 2 शाल्मली वृक्ष हैं।

धातकी खण्ड को वेष्टित करके 8 लाख योजन विस्तार वाला कालोदक नामक दूसरा समुद्र हैं। इसके दोनों तटों से भीतर की ओर 24-24 कुभोग भूमियाँ हैं

इस समुद्र का काल नाम का रक्षक देव दक्षिण दिशा में तथा महाकाल नाम का अधिपति व्यंतर देव समुद्र की उत्तर दिशा में निवास करते हुए रक्षा करते हैं।

कालोदधि - समुद्र को वेष्टित करते हुए तीसरा 16 लाख योजन विस्तार वाला पुष्करवर द्वीप है। इस पुष्करवर द्वीप के मध्य में स्वर्णमय कुण्डलाकार मानुषोत्तर पर्वत है। इसके कारण पुष्करवर द्वीप दो भागों में विभाजित हो जाता है। अभ्यन्तर भाग में मनुष्य रहते हैं। मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई 1721 योजन, मूल में चौड़ाई 1022 योजन और शिखर पर चौड़ाई 424 योजन है। इस पर्वत के शिखर पर अत्यन्त दिव्यमान मणिमय वेदी है। इनमें 18 कूट हैं। द्वीप की उत्तर-दक्षिण दिशा मे दो इष्वाकार पर्वत हैं और प्रत्येक में 4-4 कूट हैं। पूर्व पुष्करार्ध के मध्य में मन्दर नाम का मेरू पर्वत है। पश्चिम पुष्करार्ध के मध्य भूतल पर विद्युतमाली नाम का मेरू पर्वत है।

6.2 वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड

6.2.1 सौर परिवार

सौर परिवार के केन्द्र में सूर्य है। हमारी पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। इसका परिक्रमा पथ लंब वृताकार (अंडाकार) है अत: सूर्य से इसकी दूरी में समय के साथ थोड़ा परिवर्तन होता रहता है। सूर्य के अतिरिक्त 9 ग्रह, उल्का पिण्ड और कई उपग्रह हैं। चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह हैं। सौर परिवार का लगभग 99.86 प्रतिशत द्रव्यमान सूर्य में ही अवस्थित है। हमारी पृथ्वी और चन्द्रमा मिलकर शेष द्रव्यमान का एक प्रतिशत से भी कम भाग है।

सूर्य के सबसे निकट ग्रह बुध है। उसके बाद क्रम से शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, इन्द्र, वरूण और यम हैं। ये सभी ग्रह लगभग एक ही प्लेन में स्थित है और एक ही दिशा में परिक्रमा करते हैं।

इन ग्रहों के बारे में विस्तृत जानकारी तालिका 6.1 में दी गई हैं। सौर परिवार में लगभग 32 पुच्छल तारे है तथा मंगल और वृहस्पति के बीच एक लाख के ऊपर उल्का पिण्ड हैं। ये सब भी सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

पृथ्वी पर जीवन के लिए ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है। सूर्य का मध्य भाग हृदय है जो समस्त शक्तियों का आधार है। यहाँ हाइड्रोजन के नाभिक प्राय: 14 मिलीयन सेंटीग्रेड तापमान से हीलियम नाभिक में परिवर्तित होते रहते हैं। इस प्रक्रिया में गामा किरणों के रूप में ऊर्जा उत्सर्जित होती है और यह ऊर्जा बाहर की तरफ प्रवाहित होती है। सूर्य का अगला-भाग गैसों से भरा है और इन गेसों पर गामा

तालिका 6.1 सौर परिवार

सदस्य	सूर्य से दूरी मिलियन किमी.	औसत व्यास किमी.	द्रव्यमान पृथ्वीके द्रव्यमान का गुणांक	सूर्य परिक्रमा का समय दिन (पृथ्वी सापेक्ष)	औसत घनत्व	अपनी धूरी पर परिभ्रमण समय दिन		उपग्रह	वायुमंडल
1. सूर्य -	-	1390000	333000	-	1.4	27		-	-
2. बुध	57.91	4880	0.0543	87.97	4.8-5.43	59		0	Co_2
3. शुक्र	108.20	12104	0.8136	224.7	5.24	243		0	Co_2 अधिकांश
4. पृथ्वी	149.60	12756	1.0	365.26	5.52	1		1	O_2, N_2 आदि
5. मंगल	227.94	6794	0.108	686.98	3.93	1.03		2	Co_2 , H_2O
6. गुरू	778.33	142984	318.35	4332.71	1.33	0.41		60	CH_4, NH_3, H_2 , He
7. शनि	1429.40	120536	95.3	10759.50		0.69	0.44		31 CH_4, , He
8. इन्द्र	2870.99	51118	14.58	30685.00		1.32	0.72		27 CH_4, , He
9. वरूण	4504.30	49532	17.26	60190.00		1.64	0.72		13 CH_4, , He
10. यम		5913.52 2300	1.0	90550			2.06	6.38	3
ज्ञात नहीं									
11. चन्द्रमा	0.384	34.76	0.0123	27.32	3.34				

पृथ्वी का द्रव्यमान = 5.976×10^{24} किग्रा.

किरणों की बौछार से अल्ट्रावायलेट किरणें उत्पन्न होती हैं। सूर्य का अगला भाग फोटोस्फीयर है जो 130000 किलोमीटर मोटा है। इस भाग में नीचे से आने वाली ऊर्जा से प्रचण्ड क्रियाएँ होती रहती हैं। फोटोस्फीयर का बाहरी भाग सूर्य का धरातल है, इस पर कई धब्बे हैं जिन्हें सनस्पाट कहते हैं। सूर्य के वायुमण्डल के दो भाग हैं। क्रोमोस्फीयर और कोरोना। क्रोमोस्फीयर 10000 से 15000 किलोमीटर मोटा है। इसके अन्दर वाले भाग का तापमान लगभग 6000 डिग्री से और बाहर वाले भाग का तापमान लगभग एक लाख डिग्री से है। कोरोना में आयोनाइज्ड आक्सीजन, नाइट्रोजन, और लोहा, निकल, केलसियम तथा कुछ ऑरगन भी होती है। कोरोना सूर्य से लाखों किलोमीटर दूरी तक फैला हुआ है। सूर्य से लगातार आयन्स और इलेक्ट्रोन की बौछार अन्तगृही आकाश में होती रहती है।

चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है और पृथ्वी के चक्कर लगाता है। पृथ्वी के परिभ्रमण और चन्द्रमा की परिक्रमा की धूरी और वृताकार गति एक ही है और इसलिए चन्द्रमा का एक ही विभाग हमेशा पृथ्वी की तरफ रहता है हम चन्द्रमा के दूसरे भाग को सीधे नहीं देख सकते। चन्द्रमा पर वायुमण्डल नहीं है और जीवन भी नहीं है। चन्द्रमा का व्यास 3476 कि.मी. है और यह हमारी पृथ्वी से 384000 कि.मी. दूर है इसका घनत्व 3.34 है। चन्द्रमा 27.32 दिन में पृथ्वी का एक चक्कर लगाता है।

पृथ्वी सूर्य का तीसरा गृह है। यह अपनी धूरी पर 23 घंटा 56 मिनट और 4 सैकण्ड में एक परिभ्रमण करती है और 365.26 दिनों में सूर्य की एक परिक्रमा करती है। भूमध्य रेखा पर इसका व्यास 12683 किमी. और ध्रुवों पर 12640 किमी. है। पृथ्वी के दो तिहाई से अधिक भाग में पानी है। पृथ्वी का वायुमण्डल जीवन के अनुकूल है, इससे मुख्यतया ऑक्सीजन और नाइट्रोजन है तथा तापमान भी सही हैं। पृथ्वी का केन्द्र इतना गर्म है कि वहाँ सभी पदार्थ द्रव अवस्था में हैं जिसे मेगमा कहते हैं। इसके उपर एक ठोस परत है जहाँ सारी सृष्टि है। समुद्र भी इसी परत पर स्थित है। ऐसा माना जाता है कि समय के साथ पृथ्वी ठंडी हो रही है जिससे इसकी धरातल पर झूर्रियां पड़ गई हैं। ये झूर्रियां ही पहाड़ और खाई रूप में देखी जाती हैं। ब्रह्माण्ड की दृष्टि से पृथ्वी का अस्तित्व नगण्य है यहाँ तक कि सबसे पास वाले तारे से भी इसे नहीं देखा जा सकेगा। परन्तु फिर भी इस पर बुद्धिमान प्राणी निवास करते हैं जो सौर परिवार में और कहीं नहीं हैं। वैज्ञानिकों को पूरे ब्रह्माण्ड में अन्यत्र भी ऐसे प्राणी की अभी तक निश्चित जानकारी नहीं है।

6.2.2 आकाशगंगा

हमारा सूर्य आकाशगंगा का एक तारा है। आकाशगंगा में ऐसे करोड़ो तारे हैं जो एक दूसरे से दूर-दूर अवस्थित हैं। तारों के ऐसे समूह को नीहारिका कहते हैं। पूरे ब्रह्माण्ड में ऐसी अरबों नीहारिकायें हैं। आकाशगंगा इतनी बड़ी है कि इसके बारे मे वैज्ञानिकों को बहुत कम जानकारी है। फिर ब्रह्माण्ड के बारे में तो कहना ही क्या? ब्रह्माण्ड के बारे मे हमारी जानकारी सागर में एक बूंद के समान है।

जितनी भी जानकारी वैज्ञानिक जुटा पाये हैं उसके अनुसार आकाशगंगा एक तश्तरीनुमा रचना है जो केन्द्र में मोटी है। यदि इस तश्तरी को 130 कि.मी. व्यास की मानी जाय तो हमारा सौर परिवार केवल दो मि.मी. बिन्दु के बराबर होगा। आकाशगंगा का प्रकाश तश्तरी के दोनों तरफ फैला हुआ है जिसे प्रभामण्डल कह सकते हैं। यह प्रभामण्डल गेंद की आकार का है जिसके बीच में तश्तरीनुमा आकाशगंगा स्थित है।

वर्ष 2005 तक की जानकारी के अनुसार आकाशगंगा एक स्पाइरल नीहारिका है (देंखें 6.8) जिसकी दो शाखाएं भी हैं। आकाश गंगा में लगभग एक खरब तारे, गैस पदार्थ और धूल हैं और इसकी तश्तरी का व्यास लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष है। हमारा सूर्य तश्तरी के केन्द्र से लगभग 26000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। आकाशगंगा का केन्द्र अपेक्षाकृत बहुत घना है, अधिकांश नीहारिकाओ में ऐसा ही होता है। ऐसा माना जाता है कि नीहारिकाओं के केन्द्र में श्याम विवर होते हैं जिससे द्रव्यमान घनत्व बढ़ जाता है। आकाश गंगा तश्तरी की परिधि लगभग 250-300 हजार प्रकाश वर्ष है और केन्द्र में मोटाई लगभग एक हजार प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा में पदार्थ इस तरह फैला है कि सभी तारे लगभग समान गति से अपनी-अपनी परिक्रमा सम्पन्न करते हैं। हमारा सूर्य भी आकाशगंगा के केन्द्र की परिक्रमा करता है और इस पथ में इसकी गति 210 से 240 कि.मी. प्रति सैकण्ड के बीच रहती है। आकाश गंगा की दो शाखाएँ लगभग 27000 प्रकाश वर्ष लम्बी हैं। यह शाखा आकाश गंगा के केन्द्र से निकलकर लगभग 44±10 डि. के कोण पर चली जाती है (चित्र 6.9) इन शाखाओं में मुख्यतया प्राचीन लाल तारे माने जाते हैं।

आकाशगंगा का एक सरल रेखा चित्र 6.10 मे दिखाया गया है। इस रचना में मुख्यतया चार स्पाइरल भुजाएं हैं जो आकाशगंगा के केन्द्र से प्रारम्भ होती हैं। ये भुजाएं हैं -

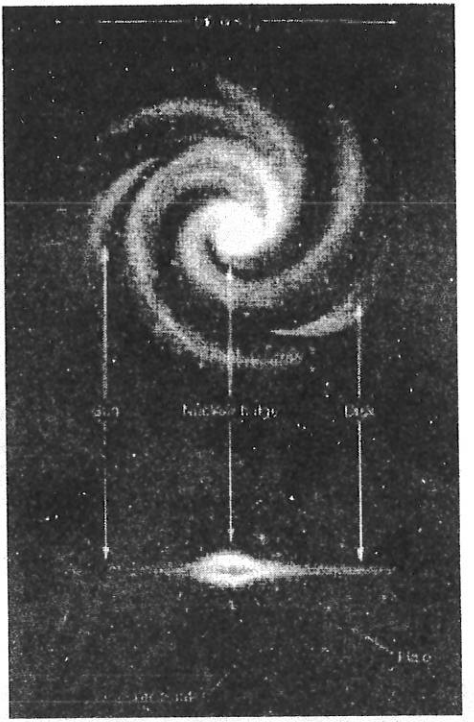

चित्र 6.8 आकाशगंगा की स्पाइरल रचना तश्तरी-इसमें अधिकांश तारे (सूर्य सहित), गैस और धूल है।
केन्द्रक-आकांशगंगा का केन्द्र
प्रभामण्डल-लगभग गोलाकार इसमें प्राचीनतम तारे हैं।

चित्र 6.9 आकाशगंगा की शाखाएं

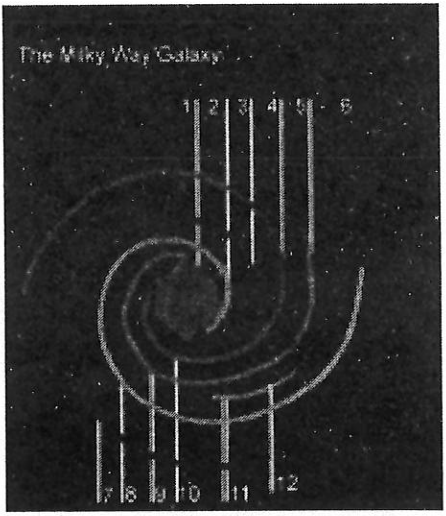

चित्र 6.10 आकाशगंगा का सरल रेखाचित्र

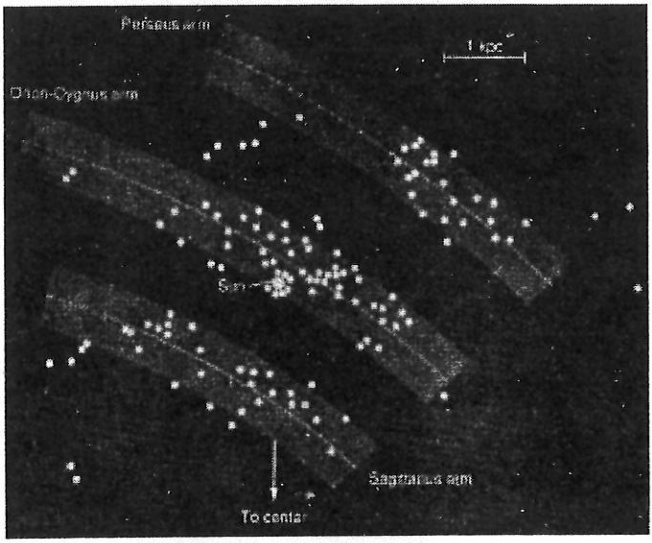

चित्र 6.11 आकाशगंगा में सौर परिवार

2 और 8	–	3 के.वी.सी. और पिटासीयस भुजा
3 और 7	–	नोरमा और सिगनस भुजा (नवीन खोजे गये विस्तार 6 सहित)
4 और 10	–	क्रक्ष और स्कुटम भुजा
5 और 9	–	करीना और सेगोटेरियस भुजा

इसके अतिरिक्त कम से कम दो छोटी भुजाएं हैं –11 ओरियन भुजा जिसमें हमारा सौर परिवार – 12 है।

स्पाइरल नुमा तश्तरी के बाहर मोनोसिरोस नाम की चुड़ी नुमा रचना है जिसमें दूसरी नीहारिकाओं से टूट कर आये तारे और गैस पदार्थ हैं। आकाशगंगा के प्रभामण्डल का व्यास लगभग 250–400 हजार प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा के अधिकांश तारे स्पाइरल भुजाओं मे स्थित हैं, प्रभामण्डल अपेक्षाकृत खाली है। फिर भी इसमें लगभग146 तारा समूह हैं जो आकाशगंगा के जन्मकाल में बन गये थे। प्रभामण्डल मे गर्म आयोनाइज्ड गैस भरी है जो इसको चमकीला बनाती है।

आकाशगंगा भी अपनी धूरी पर घूमती हुई ब्रह्माण्ड में गति करती है। एक अनुमान के अनुसार आकाशगंगा 600 किमी. प्रति सैकण्ड की गति से ब्रह्माण्ड में गमन कर रही है। नवीन खोजों के आधार पर नीहारिकाओं की गति 130–1000 किमी. प्रति सैकण्ड के बीच है। नवीन खोजो से पता चला है कि आकाशगंगा की चक्रीय गति प्रभा मण्डल मे अवस्थित पदार्थ से ज्यादा प्रभावित होती हैं परन्तु यह पदार्थ अदृश्य है। वैज्ञानिक इस पदार्थ को अब डार्क पदार्थ बताते हैं और इसका द्रव्यमान लगभग 600–3000 अरब सूर्य के द्रव्यमान के बराबर आंका गया है।

हमारा सौर परिवार ओरियन भुजा के अन्दर की तरफ है (देंखे चित्र 6.11)। ओरियन भुजा से सबसे निकट दूसरी भुजा पिरसियस भुजा है और इन दोनों के बीच की दूरी लगभग 6500 प्रकाश वर्ष है। सूर्य आकाशगंगा के केन्द्र की परिक्रमा अण्डाकार पथ में करता हैं और एक परिक्रमा में लगभग 22.5–25 करोड़ वर्ष लगते हैं। अभी तक सूर्य संभवतया 20–25 परिक्रमा पूरी कर चुका है। यह माना जाता है कि आकाशगंगा की आयु लगभग 13.6 अरब वर्ष है।

हमारी पड़ौसी नीहारिका एन्ड्रोमीड़ा नीहारिका है। वैज्ञानिक मानते हैं कि कुछ नीहारिकाएं मिलकर एक समूह बनाती हैं और कुछ समूह नीहारिकाएं मिलकर एक समुदाय बनाती हैं। कुछ लघु नीहारिकाएं हमारी आकाशगंगा का चक्कर लगा रही हैं। इनमें सबसे बड़ी दीर्घ मेजीलोनिक क्लाउड है जिसका व्यास लगभग

20000 प्रकाश वर्ष है। सबसे छोटी करीना, ड्रेको और लियो द्वितीय हैं जिनका प्रत्येक का व्यास 500 प्रकाश वर्ष है। अन्य लघु नीहारिकाएं हैं - लघु मेजीलोनिक क्लाउड, केनिस मेजर, सेगीटेरियस, उर्सा माइनर, शिल्पी, सेक्षटन, फोरनेक्स और लियो प्रथम।

9 जनवरी 2006 को प्रिन्सटन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक मारियो जुरिक ने घोषणा की कि उनकी प्रयोगशाला द्वारा आकाशगंगा के पास ऐसी रचना देखी गई है जो वर्तमान मान्य धारणाओं से मेल नहीं खाती। उनके अनुसार कोई लघु नीहारिका हमारी आकाशगंगा मे मिल रही है।

आकाश गंगा के बारे में निम्न तथ्य ज्ञातव्य है।

1. तश्तरी अपेक्षाकृत पतली है, घनी है और अपनी धूरी पर परिभ्रमण करती है।
2. प्रभामण्डल बहुत बड़ा है, छितरा हुआ है और घूमता नही है।
3. प्रभामण्डल के तारे मुख्य तश्तरी के तारों से बहुत प्राचीन हैं। कुछ तारे बीच की आयु के भी हैं।
4. प्रभामण्डल के तारा समूह भी पुराने हैं और मुख्यतया गैसीय पदार्थ से बने हैं।
5. किसी तारा समूह में सभी तारो का जन्म लगभग एक साथ हुआ।
6. सभी तारा समूह परिक्रमा करते हैं। जो तारा आकाश गंगा केन्द्र के निकट हैं उनका परिक्रमा पथ लगभग वृताकार है और जैसे-जैसे केन्द्र से दूरी बढ़ती है परिक्रमा पथ अधिक-अधिक अंडाकार होता जाता है।
7. आकाशगंगा पर निरन्तर हाइड्रोजन बादलों की वर्षा होती रहती है।

आकाशगंगा के केन्द्र में क्या है, इसके बारे में वैज्ञानिको की जिज्ञासाएं बढ़ रही है और कई प्रकार के परीक्षण किए जा रहे हैं जिसमें प्रकाश, रेडियो किरणें, इन्फ्रारेड किरणें, एक्स किरणे, गामा किरणें आदि का प्रयोग हो रहा है। इन परीक्षणों से लगभग 2000 प्रकाश वर्ष मे फैले केन्द्र के बारे में हमारी जानकारी बढ़ी है। केन्द्र में एक विशेष स्थान सेगिटारियस ए का पता चला है जिसके आसपास घना क्षेत्र है। इस क्षेत्र का द्रव्यमान बीस लाख सूर्यों के द्रव्यमान के बराबर आंका गया है। गैस और धूल भरा एक बड़ा पिण्ड इस क्षेत्र का चक्कर लगा रहा है जिसका आकार 5-25 प्रकाश वर्ष है। इस पिण्ड के बाहर 60 प्रकाश वर्ष चौड़ा चुम्बकीय क्षेत्र है जिसमें तारे बनने की सम्भावना रहती है। केन्द्र से एक्स किरणें और गामा किरणें प्रवाहित होती रहती हैं जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि वहाँ द्वि-तारे और सुपरनोवा हैं। यह भी पाया गया है कि केन्द्र में रहने वाले तारे 1000 कि.मी.

प्रति सेकण्ड तक की उच्च गति से परिक्रमा कर रहे हैं। ऐसी उच्च गति के लिये वहां ऐसे पिण्ड का होना आवश्यक है जिसका द्रव्यमान 25 लाख सूर्य के द्रव्यमान के बराबर हो। परन्तु परीक्षण से पाया गया कि स्वयं सेगटारियस की गति केवल 20 किमी. प्रति सैकण्ड है। वैज्ञानिको के अनुसार केन्द्र में विद्यमान परिस्थितियों में एक विशाल पिण्ड ही ऐसी धीमी गति से गमन कर सकता है। ये सब साक्ष्य संकेत करते है सेगिटारियस ए एक श्याम विवर है जो उसके चारो तरफ फैले गैस और धूल के समुद्र से और पुराने सुपरनोवा के अवशेषों से तीव्र गति से पदार्थ ग्रहण करता रहता है। इसी के कारण केन्द्र में जबरदस्त गतिविधियाँ चल रही हैं।

6.2.3 एन्ड्रोमीड़ा नीहारिका

हमारे पड़ौस में एन्ड्रोमीड़ा सबसे पहली नीहारिका है। विशाल दूरी के कारण इस नीहारिका के बारे में बहुत ही कम जानकारी है। नई तकनीक के विकास से सुदूर अन्तरिक्ष में प्रयोगों की क्षमता में वृद्धि हुई है और अब वैज्ञानिक इस नीहारिका के बारे में जानकारी जुटा रहे हैं। एन्ड्रोमीडा भी तश्तरीनुमा स्पाइरल नीहारिका है परन्तु इसमें आकाशगंगा की तरह शाखाएं नहीं हैं (चित्र 6.12)। पहले यह माना जाता था कि इसका व्यास 70000–120000 प्रकाश वर्ष है परन्तु केलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ, टेक्नोलोजी के वैज्ञानिक स्कॉट चेपमेन ने वर्ष 2005 में यह सिद्ध किया कि वास्तव में इसका व्यास 220,000 प्रकाश वर्ष से अधिक है। एन्ड्रोमीडा की दूरी लगभग 25 लाख प्रकाश वर्ष हैं। एन्ड्रोमीडा के प्रभामण्डल का द्रव्यमान 12.3 खरब सूर्य के द्रव्यमान के लगभग आंका गया है जो हमारी आकाशगंगा के प्रभामण्डल के द्रव्यमान से कम है। इससे ऐसा लगता है एन्ड्रोमीडा हमारी आकाशगंगा से छोटी है परन्तु अभी यह एक प्रारम्भिक अनुमान ही है। हबल अंतरिक्ष दूरदर्शी यंत्र द्वारा 1991 में देखा गया कि एन्ड्रोमीडा में दो केन्द्र हैं जिनके

चित्र 6.12 एन्ड्रोमीडा नीहारिका

बीच की दूरी कुछ प्रकाशवर्ष है। आकाशगंगा की तरह इन केन्द्रों में भी तीव्र हलचल देखी गई है। वर्ष 2004 में ओपन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक रोबीन बरनार्ड ने एन्ड्रोमीडा में दस एक्स किरणों के स्रोतों की खोज की। वर्ष 2005 में इगनासी रिबास और उसके सहयोगियों ने एन्ड्रोमीडा में एक द्वि-तारा की खोज की। इस तारे की दूरी 25.2+1.4 लाख प्रकाश वर्ष आंकी गई। हमारी आकाश गंगा की तरह एन्ड्रोमीडा के चारो तरफ भी लघु नीहारिकाएं चक्कर लगा रही हैं, अभी तक 14 ऐसी लघु नीहारिकाओं की खोज हो चुकी है।

एन्ड्रोमीडा में दो केन्द्रक होने का कारण वैज्ञानिक मानते है कि यह दो विशाल निहारिकाओ के मिलन से बनी है। जब दो नीहारिकायें मिलती हैं तो इनके तारों को इसका पता ही नहीं चलता। नीहारिकाएं इतनी पोली होती हैं कि जब ये मिलती है तो इनके तारे आपस में नहीं टकराते बल्कि एक दूसरे के पास से गुजर जाते हैं। इन पर गुरूत्वाकर्षण का प्रभाव अवश्य होता है जब तारे वापस दूर होने लगते हैं तो गुरूत्वाकर्षण का प्रभाव कम होता जाता है। परन्तु यदि तारों में आकर्षण बना रहता है तो दूर होने के बाद वे वापस निकट आ जाते हैं। इस प्रकार कई बार दूर-निकट होने के पश्चात् एक स्थायी रचना बन जाती है जिसे नई नीहारिका कह सकते हैं। इस प्रकार दोनों नीहारिकाओ के तारे नई नीहारिका में अपने पुराने स्वरूप में ही रहते हैं।

दो नीहारिकाएँ एक दूसरे के निकट आ रही हैं या दूर होती जा रही है इसका पता वैज्ञानिक प्रकाश स्पेक्ट्रम से लगाते हैं। यदि नीहारिकाएँ पास में आ रही हैं तो स्पेक्ट्रम मे ब्लू शिफ्ट होती है और यदि दूर होती जा रही है तो रेड शिफ्ट होती है। एन्ड्रोमीडा नीहारिका के प्रकरण में ब्लू शिफ्ट देखी गई है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि हमारी आकाशगंगा और एन्ड्रोमीडा 100 से 140 किमी. प्रति सैकण्ड की गति से एक दूसरे के निकट आ रही हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि ये दोनों आपस में टकरा ही जायेगी क्योंकि दोनो के सापेक्ष गति की सही दिशा ज्ञात नहीं है। यदि दोनों टकराती भी है तो इसमें अभी लगभग 3 अरब वर्ष लगेंगे। टकराने के बाद एक नई विशाल नीहारिका का निर्माण हो जायगा। ब्रह्माण्ड में इस प्रकार की घटनाएं सामान्य हैं।

6.2.4 ब्रह्माण्ड

ब्रह्माण्ड से क्या तात्पर्य है? दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड उन समस्त पदार्थों का समूह है जो सम्पूर्ण आकाश में विद्यमान है और जिसमें जीव अपनी गतिविधि करता है। इसको हम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कह सकते है। अंतरिक्ष विज्ञान की दृष्टि से

ब्रह्माण्ड एक सीमित या अनंत आकाश काल क्षेत्र है जिसमें पदार्थ और ऊर्जा पाए जाते हैं। परन्तु वैज्ञानिक सामान्यतया ज्ञात ब्रह्माण्ड की बात करते हैं जिसे किसी न किसी माध्यम से जाना जा सकता है। जिस भाग के बारे में कोई जानकारी नहीं है उसके लिए कुछ भी कहना विज्ञान के लिए संभव नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह अज्ञात भाग कितना है। वैज्ञानिक मानते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जानना असम्भव है। इसलिए जो भी नीचे लिखा जा रहा है वह ज्ञात ब्रह्माण्ड के बारे में है। तकनीकी विकास के साथ इस ज्ञात ब्रह्माण्ड का परिमाण भी बढ़ रहा है।

आइन्सटीन ने एक प्रतिगुरूत्वाकर्षण बल का प्रस्ताव रखा जो अन्य बलों की तरह किसी स्रोत से उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु स्पेस-समय का ही एक मौलिक गुण है। उनका मानना था कि फैलना स्पेस-समय का स्वभाव है और यह ब्रह्माण्ड में विद्यमान पदार्थ के बीच आकर्षण का प्रतिकार कर एक स्थिर ब्रह्माण्ड की रचना करता है।

रशियन भौतिक शास्त्री और गणितज्ञ एलेक्जेण्डर फ्रायडमान ने ब्रह्माण्ड के बारे में दो सरल मान्यताएं प्रस्तुत की : किसी भी दिशा मे देखने पर ब्रह्माण्ड एक जैसा दिखाई देता है और ब्रह्माण्ड को किसी अन्य स्थान से देखने पर भी यही स्थिति रहेगी। इन दो मान्यताओं के आधार पर फ्रायडमान ने कहा कि हमें स्थिर ब्रह्माण्ड की आशा नहीं करनी चाहिए।

फ्रायडमान की पहली मान्यता के अनुसार ब्रह्माण्ड में आकाश अनंत नहीं हैं पर आकाश की कोई सीमा भी नहीं है। गुरूत्वाकर्षण बल इतना शक्तिशाली है कि आकाश मुड़कर जुड़ जाता हैं। यदि कोई यात्री पृथ्वी पर एक दिशा मे यात्रा करता रहे तो वह कहीं किनारे पर नहीं पहुँचता बल्कि उसी स्थान पर वापस पहुँच जाता है।(ब्रह्माण्ड में ऐसी यात्रा के लिए यात्री को प्रकाश की गति से बहुत तेज चलना होगा)

अंतरिक्ष विज्ञान का एक महत्वपूर्ण परीक्षण 1929 में एडविन हबल द्वारा किया गया। उन्होंने सूदूर तारों से आने वाले प्रकाश में रेड शिफ्ट देखी। इसके आधार पर उन्होंने कहा कि हमारा ब्रह्माण्ड फैल रहा है। उन्होने तारों के दूर जाने की गति भी बताई और पाया कि फैलाव की गति बढ़ रही है। इस फैलाव की गति के आधार पर यदि अतीत की गणना की जाय तो एक ऐसे समय पर पहुँचते हैं जब फैलाव प्रारम्भ हुआ। इसी से बिग बैंग थ्योरी का जन्म हुआ। वैसे यह गणना केवल गणितीय है जो सच हो भी सकती है और नहीं भी। परन्तु ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिकों मे आज बिग बैंग थ्योरी ही सबसे अधिक मान्य है। इस थ्योरी के अनुसार ब्रह्माण्ड की आयु 13.7$\pm$1 प्रतिशत अरब वर्ष है यदि गणना करने का हमारा तरीका

सही है। ब्रह्माण्ड की आयु ज्ञात करने के अन्य तरीके भी है जो इससे भिन्न आयु बताते हैं।

पृथ्वी और सूर्य के विकिरण अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि हमारे सौर परिवार का जन्म संभवत: 4:5 अरब वर्ष पूर्व हुआ। ब्रह्माण्ड की आयु कम से कम इससे दुगूनी होनी चाहिए। सबसे प्राचीन तारा पूंज जिसकी आयु की गणना की जा सकती है लगभग 12 से 15 अरब वर्ष पुराना है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड की आयु 15 से 20 अरब वर्ष हो सकती है। इस गणना के बारे में खगोल भौतिक शास्त्री और अंतरिक्ष विज्ञानी किसी निश्चित मत पर नहीं पहुँचे हैं। भविष्य में कुछ नई खोजे होने की भी संभावना है।

बिग बैंग का एक मुख्य साक्ष्य यह माना जाता है कि जो तारे हमसे जितनी अधिक दूरी पर हैं वे उतनी ही अधिक तीव्रता से हमसे और दूर होते जा रहे हैं। ज्ञात ब्रह्माण्ड के लगभग अन्तिम छोर से आने वाली माइक्रोवेव किरणों का भी परीक्षण किया गया है और यह विकिरण सभी दिशाओं में समान पाया गया है। इसका अर्थ यह लगाया गया है कि बिग बैंग के तत्काल बाद फैलाव सब तरफ समान था।

विस्तारमान विश्व सिद्धान्त सभी वैज्ञानिकों को मान्य नहीं है, क्योंकि कुछ वैज्ञानिकों के अभिमतानुसार लाल रेखा के परिर्वतन का कारण कोई अन्य है। कुछ इसको ''सापेक्षता का सिद्धान्त '' के आधार पर समझतें हैं अर्थात उसको आकाश की वक्रता का परिणाम बतलाते हैं, तो कुछ उसे यह कह कर समझते हैं कि आकाश मार्ग में प्रकाशाणु (फोटोन) के रूप में ऊर्जा व्यय कर देता है, जिसके परिणामस्वरूप लाल रेखा में परिवर्तन दिख ाई देता है।

ब्रिटिश वैज्ञानिक सर जेम्स जीन्स स्पष्ट करते हैं: '' दूर स्थित नीहारिकाएं अपने से दूर जा रही है, इस मान्यता का केवल यही कारण है कि इनका जो प्रकाश हमें दिखाई देता है, वह सामन्यत: जितना हेाना चाहिए उससे अधिक लाल है। किन्तु गति के अतिरिक्त अन्य प्रकियाएं भी प्रकाश केा अधिक लाल बना सकती हैं । उदाहरणार्थ, सूर्य का प्रकाश केवल सूर्य के भार के कारण लाल बन जाता है: उससे कहीं अधिक लाल वह सूर्य के वातावरण के दबाव के कारण बनता है, जैसे कि हम सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय देखते हैं। अन्य प्रकार के ताराओं का प्रकाश भी किसी रहस्यमय प्रकार से लाल बनता है, जिस रहस्य का उद्घाटन हम अब तक नहीं कर सके हैं। इसके अतिरिक्त 'डि सीटर' के विश्व-संबंधी सिद्धान्त के आधार पर मात्र दूरी ही प्रकाश के रक्तिकरण का कारण बन

सकती है। इसलिए दूरस्थ नीहारिकाएं हम से दूर जा रही हैं, इस प्रकार की धारणा के प्रलोभन में हम आ जाते है।''

उक्त रक्तीकरण की प्रकिया का दूसरा प्रतिपादन केलिफोनिया इन्स्टीट्यूट के डा. ज्वीकी ने दिया है। इनके अनुसार जब प्रकाश किसी बडे तारे या नीहारिका के समीप से गुजरता है, तब वह प्रकाश न केवल अपने पथ से मुडता है, पर साथ-साथ गुरूत्वाकर्षण के कारण तारे की संहति का थोडा सा अंश भी उससे अलग कर देता है, अर्थात उससे प्रकाश की ऊर्जा कम हो जाती है। अब, क्वांटम सिद्धान्त के अनुसार ऊर्जा में कमी होने का अर्थ होता है कम्पन-आवृति में कमी , जिसके फलस्वरूप वह हमें अधिक लाल दिखाई देता है। उक्त सिद्धान्त के प्रस्तुत होने के बाद आकाशस्थ कई तारा पुजों के प्रकाश पर 'टेन ब्रगेनकेट' के द्वारा प्रयोग किए गये। इन प्रयोगों के परिणाम से ज्वीकी के सिद्धान्त की पुष्टि हुई है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं, जो इस बात की पुष्टि कर रहे हैं कि दूरस्थ आकाश गंगाओं का दूर जाने का सिद्धान्त सत्य न हो। आइन्स्टीन के अनुसार आकाश सान्त होते हुए भी असीम है। आकाश के सान्त होते हुए भी हम उसकी सीमा को नहीं पा सकते ; इस सिद्धान्त को वैज्ञानिक पोइनकेर ने काफी स्पष्ट किया है। 'सान्त आकाश का क्या अर्थ है? आकाश यदि सान्त है, तो इससे परे क्या है? इन प्रश्नो का उत्तर पोइनकेर ने इस प्रकार दिया है: ''अपना विश्व एक अत्यन्त विस्तृत गोले के समान है और विश्व में उष्णतामान का विभागीकारण इस प्रकार हुआ है कि गोले के केन्द्र में उष्णतामान अधिक है और गोले कि सतह की ओर क्रमश: घटता हुआ विश्व की सीमा (गोले की अन्तिम सतह) पर वह वास्तविक शून्य को प्राप्त होता है। सभी पदार्थो का विस्तार उष्णतामान के अनुपात से होता है अत: यदि केन्द्र से सीमा की ओर हम चलेंगे तो हमारे शरीर का तथा जिन पदार्थों के पास से हम गुजरेगें, उन पदार्थों का विस्तार क्रमश: घटना प्रारम्भ हो जायगा। किन्तु हमें इस परिर्वतन का कोई अनुभव नहीं होगा। यद्यपि हमारा वेग दिखने में वही रहेगा, किन्तु वस्तुत: वह घट जायेगा और हम कभी सीमा तक नही पहुँच पायेंगे; वस्तु तथा हम 'अन्त' को पा नही सकते। हमारी पहुंच केवल एक सीमा तक रहेगी। उसके बाद आकाश अवश्य होगा, किन्तु हमारी पहुंच से बाहर होगा।''

इस विचार को हम जैन दर्शन की इस उक्ति के समीप मान सकते है कि ''लोक के सब अन्तिम भागों में 'अबद्ध-पार्श्व-स्पृष्ट' पुद्गल होते हैं। लोकान्त तक पहुंचते ही सब पुद्गल स्वभाव से ही रूक्ष हो जाते हैं। वे गति में सहायता करने की

स्थिति में संघटित नहीं हो सकते । इसलिए लोकान्त से आगे पुद्गलों की गति हो ही नहीं सकती । यह एक लोक-स्थिति है।

ब्रह्माण्ड असीम है या ससीम है इसके बारे में वैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। नासा के नवीन परीक्षणों के आधार पर बहुत से खगोलशास्त्री और अंतरिक्ष विज्ञानी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को असीम मानते हैं। परन्तु ज्ञात ब्रह्माण्ड तो सीमित ही है। इस सीमित ब्रह्माण्ड का अन्तिम छोर बिग बैंग स्थान से 13.7 अरब प्रकाश वर्ष दूर है। परन्तु दूरी की दृष्टि से यह सीमा अधिक है क्योंकि ब्रह्माण्ड के फैलाव की गति तीव्रतर होती जा रही है। दूरी की दृष्टि से ब्रह्माण्ड की सीमा 78 अरब प्रकाश वर्ष मानी गई है। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड का आयतन अभी $1.9x10^{33}$ घन प्रकाश वर्ष है। इस ज्ञात ब्रह्माण्ड में लगभग $7X10^{22}$ तारे हैं और लगभग 100-140 अरब नीहारिकाएं हैं जो आपस में समूह और समुदाय बनाती हैं। नीहारिकाओं की संख्या ठीक से ज्ञात नहीं है यह इससे अधिक हो सकती है। अधिकतर अंतरिक्ष विज्ञानी मानते हैं कि ज्ञात ब्रह्माण्ड आकाशगंगा की भांति तश्तरीनुमा है। बिग बैंग मॉडल के अनुसार ब्रह्माण्ड की कोई आकाश सीमा नहीं है फिर भी यह ससीम हो सकता है। जैसे एक गेंद में कोई सीमा नहीं होती फिर भी उसका धरातल सीमित है।

6.2.5 तारों का विकास

वर्तमान धारणा के अनुसार तारों का निर्माण उनके ऐतिहासिक क्रम में होता है। यह माना जाता है कि ये गैस (मुख्यतया हाइड्रोजन) के द्रवीकरण से बनते हैं। यह द्रवीकरण गुरूत्वाकर्षण के कारण गैस के घनीभूत होने से होता है। गैस पिण्ड के केन्द्र में घनीभूत करण इतना अधिक होता हैं कि वहाँ थरमोन्यूक्लीयर क्रियाएं आरम्भ हो जाती हैं और इससे हाइड्रोजन गैस हीलियम गैस में परिवर्तित हो जाती है (और संभवतया कुछ भारी तत्वों में भी)। इस प्रक्रिया से प्रचण्ड ऊर्जा उत्सर्जित होती है। लगभग दस प्रतिशत हाइड्रोजन गैस व्यय होने तक तारे अपनी मुख्य अवस्था में रहते हैं उसके पश्चात् वे लाल भीमकाय पिण्ड में बदल जाते हैं और तेज गति से अपनी हाइड्रोजन का उपयोग करते हैं। हाइड्रोजन की समाप्ति पर अन्ततः वे सिकुड़ कर श्वेत पिण्ड बन जाते हैं। इस अवस्था में उनका सतही तापमान बहुत अधिक होता है और वे श्वेत दिखाई देते हैं।

सुपरनोवा - हाइड्रोजन समाप्त हो जाने पर तारे अपने ही गुरूत्वाकर्षण बल के प्रभाव में सिकुड़ जाते हैं। इससे उनके अंदर तापमान बहुत बढ़ जाता है और थरमोन्यूक्लियर क्रिया प्रारम्भ हो जाती है, इससे कुछ भारी तत्व भी बन जाते हैं। जब

भारी तत्वों का एटोमिक नम्बर 40 से अधिक हो जाता है तो ऊर्जा का व्यय बहुत बढ़ जाता है और तारा सिकुड़ कर छोटा होता जाता है। इस प्रक्रिया से तारे की घूमने की ध्रुवीय गति बढ़ जाती है और तारे का बहुत बड़ा भाग टूट कर अलग हो जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि हमारे सूर्य परिवार के ग्रह किसी सुपरनोवा द्वारा फेंके गये पदार्थ से बने हैं जो हमारे सूर्य द्वारा आकर्षित कर लिया गया। सुपरनोवा तारे का शेष बचा हुआ भाग ही श्वेत लघु तारा बन जाता है। जिन तारो में विस्फोट होता है वे सूर्य से लगभग 108 गुणा अधिक चमकीले हो जाते हैं। हमारी आकाशगंगा में यह एक दुर्लभ घटना है अभी तक ऐसी दो घटनाओं की ही जानकारी है। अन्य नीहारिकाओं में ऐसी घटनाऐं नियमित होती रहती हैं।

एक्स किरण तारे- हाल के वर्षों में पृथ्वी के वातावरण के बाहर अंतरिक्ष स्टेशन पर स्थित उपकरणों द्वारा ऐसे तारों की खोज हुई है जो एक्स किरणें उत्सर्जित करते हैं। इन तारों की प्रवृति और इनमें एक्स किरणों की उत्पत्ति के बारे में अधिक जानकारी नहीं है।

पल्सर्स- पल्सर्स ऐसे तारे हैं जो पल्स के रूप में रेडियो किरणें निश्चित काल क्रम से बहुत नियमित रूप से उत्सर्जित करते हैं। रेडियोटेलिस्कोप द्वारा ऐसे बहुत से पिण्डों की खोज हो चुकी है, इनमे से कुछ प्रकाश के पल्स भी उत्सर्जित करते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि पल्सर्स न्यूट्रॉन तारे हैं और अपनी ध्रुवीय गति से पल्स किरणें उत्सर्जित करते हैं।

क्वाजर्स- हाल के वर्षों में नीहारिकाओं से बाहर ऐसे पिण्डों की खोज हुई है जो उच्च ऊर्जा वाली विद्युत चुम्बकीय किरणें (रेडियो किरणें) उत्सर्जित करते हैं। इसकी खोज सबसे पहले रेडियो खगोलशास्त्रियों द्वारा की गई। अभी तक सैंकड़ों क्वाजर्स की खोज हो चुकी है, इनमें से कुछ प्रकाश उत्सर्जन के कारण सामान्य दूरबीन द्वारा भी देखे गये हैं। क्वाजर्स की रेड शिफ्ट से पता चलता है कि इनकी गति तेजी से कम हो रही है। इनसे होने वाली उच्च ऊर्जा उत्सर्जन की व्याख्या किसी भी ज्ञात प्रक्रिया से नहीं की जा सकी है।

न्यूट्रोन तारे- यह तारे की वह अवस्था है जिसमें वह अपने विकास के अन्तिम चरण में सभी आणविक ईंधन का व्यय कर चुका है और ऊर्जा का कोई भी स्रोत शेष नहीं बचा है। ऐसी अवस्था में गुरूत्वाकर्षण बल के कारण तारा सिकुड़ कर एक दम छोटा हो जाता है और उसकी छोटी सी उपरी सतह को छोड़कर शेष भाग मे केवल न्यूट्रोन होते हैं। ऐसे तारे का धनत्व श्वेत तारों के

घनत्व से 10^7 गुणा हो जाता है। किसी भी न्यूट्रोन तारे को अभी तक निश्चितता से नहीं देखा गया है परन्तु ऐसी धारणा है कि पल्सर्स न्यूट्रोन तारे हैं। ऐसे तारों का गुरूत्व बल मूल बल से दस अरब गुना अधिक हो जाता है। न्यूट्रोन तारे से प्रकाश निकलने के कारण इसकी ऊर्जा कम होती होती जाती है, जिससे इसका आकार और भी छोटा होता जाता है और गुरूत्वबल बढ़ता जाता है। एक स्थिति ऐसी आ जाती है कि इससे प्रकाश निकलना बंद हो जाता है। यही ब्लेक होल (श्याम विवर) कहलाता है।

अभी तक वैज्ञानिक श्याम विवर को साक्षात रूप में नहीं देख पाए हैं। श्याम विवर के निकट क्षेत्रों से आने वाली एक्स किरणें और अवरक्त किरणें इस बात का साक्ष्य है कि श्याम विवर का अंतरिक्ष में अस्तित्व है।

हमारे सूर्य के बराबर द्रव्यमान वाले श्याम विवर का तापमान निरपेक्ष शून्य से एक डिग्री का करोड़वां भाग ऊपर होगा। परन्तु यदि श्याम विवर एक लघु प्रोटोन के आकार का है तो उसका तापमान 120 अरब डिग्री केलविन होगा। ऐसी स्थिति में यह लघु श्यामविवर इलेक्ट्रान-पॉजीट्रोन युग्म तथा फोटोन, न्यूट्रीनों और ग्रेवीटोन जैसे भारहीन कणों का उत्सर्जन कर सकेगा । ऐसे लघु श्याम विवर का द्रव्यमान एक अरब टन होगा। जैसे-जैसे श्याम विवर से विकिरण और उत्सर्जन होगा उसका आकार घटता जायेगा। उत्सर्जन की गति समय के साथ बढ़ती जायगी और अन्त में श्याम विवर समाप्त हो जाएगा। परन्तु सूर्य के बराबर द्रव्यमान वाले श्याम विवर को इस प्रक्रिया में 10^{66} वर्ष लग सकते है। प्रोटोन आकार के लघु श्याम विवर का इसमे 10 अरब वर्ष लगेगें। श्याम विवर के जीवन काल के अन्त में एक भयंकर विस्फोट होगा जिसमें से उच्च ऊर्जा वाली गामा किरणें निकलेगी। बिग बैंग भी शायद इसी प्रकार का विस्फोट था परंतु यह बहुत बड़ा था। यदि ऐसा है तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि बिग बैंग से पूर्व भी ब्रह्माण्ड विद्यमान था।

डार्क पदार्थ तीन प्रकार का होता है

1. बेरियोनिक डार्क पदार्थ - प्रोटोन और न्यूट्रोन के रूप में जैसे अप्रकाशित गैस और तारे।
2. उष्ण डार्क पदार्थ - ये पदार्थ कण नगण्य भार वाले हैं जैसे न्यूट्रीनों।
3. शीत डार्क पदार्थ - इस पदार्थ को विद्युत चुम्बकीय किरणें नहीं पहचान सकती। इसकी अवस्थिति का ज्ञान तारों की गति पर आकर्षण बल से होता है। शीत डार्क पदार्थ के कणों को मन्द प्रतिक्रिया भारी कण कहते हैं।

6.2.6 ब्रह्माण्ड की संरचना

आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त ने स्पेस ओर समय नामक दो आयाम को स्पेस-समय नामक एक ही आयाम में परिवर्तित कर दिया। स्पेस-समय आयाम का एक गुण ज्योमिती है, एक गेंद के सतह की तरह स्पेस-समय में भी वक्रता हो सकती है। स्पेस-समय ज्योमिति को समझने के लिए यह आवश्यक हे कि हम सम्पूर्ण स्पेस ओर सम्पूर्ण समय की व्याख्या करें। यानि आज तक जो भी स्पेस एवं समय में हो चुका है और भविष्य में होगा वह ज्ञात होना चाहिए।

आइन्स्टीन का सिद्धान्त बताता है कि किसी भी दिशा में स्पेस-समय की वक्रता उस दिशा में विद्यमान पदार्थ ओर ऊर्जा से संबंध रखती है। इसमें कठिनाई यह है कि हम यह नहीं जानते है कि उस स्पेस खंड में क्या-क्या पूर्व में हो चुका है ओर क्या भविष्य में होगा जो पदार्थ-ऊर्जा की स्थिति में परिवर्तन करता है। इसलिए हम ऐसा सरलीकरण करते हैं जो छोटी जगह में नहीं कम से कम नीहारिका पुंज के स्तर पर वास्तविक स्थिति के निकट हो। सरलीकरण में

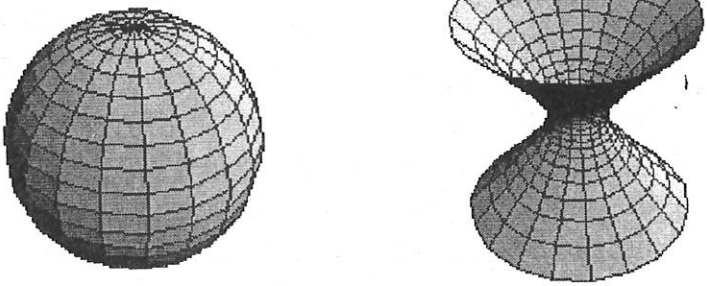

(अ) एन-आयात वाला गोलाकार ब्रह्माण्ड (ब) एन-आयात वाला अर्द्धखुला गोला रूप ब्रह्माण्ड

चित्र 6.13

यह भी माना जाता है कि हम स्पेस और समय को पृथक कर सकते हैं। यह मान लिया जाता है कि ब्रह्माण्ड में किसी भी समय स्पेस किसी भी दिशा और किसी भी बिन्दु पर एक समान है। इस प्रकार हम मान लेते हैं कि स्पेस एक रूप है और सभी दिशाओं में एक समान है। फिर हम तीन प्रकार की ऊर्जा परिस्थिति, जो स्पेस-समय को वक्र बनाती है के लिए, गणना करते हैं-(1) शून्य ऊर्जा (2) विकिरण ऊर्जा और (3) पदार्थ।

यदि किसी भी समय किसी भी बिंदु पर आकाश सभी दिशाओं में एक सा रहता है तो आकाश की वक्रता सब जगह एक ही होगी। यह वक्रता शून्य से अधिक, शून्य से कम या शून्य हो सकती है।

वक्रता शून्य से अधिक होने पर आइन्स्टीन सिद्धान्त बताता है कि ब्रह्माण्ड एन आयाम वाला बंद गोलाकार रूप है। यह गोला शून्य (बिग बैंग) से प्रारम्भ होकर अधिकतम विस्तार वान है और फिर सिकुड़ कर शून्य अवस्था में पहुँच जाता है।

वक्रता शून्य होने पर ब्रह्माण्ड सपाट (Flat) है और सभी दिशाओं में अनन्त विस्तार वाला है। इस मॉडल में स्पेस का विस्तार निरन्तर होता ही रहता है और यह खुला है।

वक्रता शून्य से कम होने पर ब्रह्माण्ड एन-आयाम वाला अर्द्ध खुला गोले के रूप में है जो बीच में सिकुड़ा हुआ है और अनन्त विस्तार वाला है (देंखे चित्र 6.14)। इस मॉडल में भी स्पेस का विस्तार निरन्तर होता ही रहता है और यह खुला है।

पूर्वोक्त विवरण में केवल पदार्थ को ही ब्रह्माण्ड मे उपस्थित माना गया। यदि शून्य ऊर्जा की उपस्थिति भी मानी जाय तो ब्रह्माण्ड में एक समान ऊर्जा घनत्व हो जाता है जिसे ब्रह्माण्डीय कान्स्टेण्ट कहते हैं।

आइन्स्टीन को अपनी ही खोज के परिणाम हमेशा पसन्द नहीं थे। जैसे उसके सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड जिसमें पदार्थ भरा है फैलता रहता है। आइन्स्टीन ऐसा सिद्धान्त चाहते थे जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड नित्य एक ही स्थिति मे रहें। ऐसे परिणाम प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने समीकरणों में ब्रह्माण्डीय कान्स्टेंट का प्रयोग किया। इस कान्स्टेंट के परिमाण के अनुसार ब्रह्माण्ड के फैलाव को बढ़ने वाला, घटने वाला या स्थिर रहने वाला बनाया जा सकता है। परन्तु जब इस कान्स्टेंट के रहते हुए ब्रह्माण्ड में पदार्थ के साथ विकिरण ऊर्जा भी सम्मिलित की जाती है तो स्थिति बहुत जटिल हो जाती है। हालांकि आइन्स्टीन ने बाद में कहा कि समीकरणों में ब्रह्माण्डीय कान्स्टेन्ट का प्रयोग उसके जीवन की सबसे बड़ी भूल थी।

अब वैज्ञानिक लगभग आश्वस्त है कि बिग बैंग की घटना हुई। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक प्रश्न है कि बिग बैंग के पहले क्या था? बिग बैंग के साथ तीन और अनुतरित प्रश्न हैं। (1) समतल आकार की समस्या (2) क्षितिज समस्या और (3) एक ध्रुवीय चुम्बक की समस्या। इन प्रश्नों के समाधान रूप में 1980 के दशक में अन्तरिक्ष विज्ञानी अतास गुटु द्वारा एक नया सिद्धान्त जिसको इनफ्लेशन मॉडल कहा जाता है, प्रस्तुत किया। इस मॉडल के अनुसार ब्रह्माण्ड तेजी से फैलते हुए एक बुलबुले के रूप में प्रारम्भ होता है जिसमें केवल शून्य ऊर्जा है तथा और कोई पदार्थ या विकिरण ऊर्जा नहीं है। इस फैलाव के और बुलबुले के ठंडा हो जाने के बाद शून्य ऊर्जा, पदार्थ और विकिरण ऊर्जा गति ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रक्रिया में ब्रह्माण्ड गर्म हो जाता है और बिग बैंग घटित हो जाती है।

उपरोक्त इनफ्लेशन मॉडल भी एक आदर्श सिद्धान्त नहीं है इस मॉडल की मान्यताओं, जैसे प्रारम्भिक उच्च तापमान और केवल एक ही बुलबुला, पर प्रश्नचिन्ह लगाए गये हैं और वैज्ञानिको द्वारा ऐसे नए प्रकार के नित्य इनफ्लेशन मॉडल प्रस्तुत किए गये हैं जिनमें एक ब्रह्माण्ड में से दूसरा ब्रह्माण्ड निकलता रहता है और फैलता रहता है।

बिग बैंग ब्रह्माण्डीय समस्या को हल करने के और भी उपाय खोजे गये हैं। एक शांत उद्‌भव मॉडल में ब्रह्माण्ड का तेजी से फैलाव नही होता बल्कि उसका ऐसा धीरे-धीरे विकास होता है कि वह हमारे जीवन काल में स्थिर सा लगता है।

प्रिन्सटन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पॉल स्टुहार्ट ने हाल ही में आवृतिक ब्रह्माण्ड का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उन्होने तर्क दिया कि ब्रह्माण्ड की वर्तमान अवस्था जिसमें इसका फैलाव तीव्रतर होता जा रहा है और जिसके लिए आवश्यक है कि ब्रह्माण्ड की अधिकांश ऊर्जा डार्क ऊर्जा होनी चाहिए, जो गुरूत्वाकर्षण सिद्धान्त के विपरीत विकर्षण वाली है, इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि ब्रह्माण्ड अपना इतिहास दोहराएगा। उन्होंने कहा कि वर्तमान फैलाव के बाद एक ऐसा समय आयेगा कि ब्रह्माण्ड सिकुड़ने लगेगा। सिक्रुड़ने की प्रक्रिया के अंत मे ब्रह्माण्ड एक बिन्दु पर सिमट जायगा और उसके बाद पुनः बिग बैंग की घटना घटित होगी और एक नया ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आयेगा।

प्रोफेसर स्टुहार्ट कहते हैं कि जो भविष्य में होने वाला हैं वह पूर्व में भी हुआ होगा। इस प्रकार बिग बैंग इस विश्व का प्रारम्भ नहीं है बल्कि पूर्व में विद्यमान

विश्व को वर्तमान विश्व से जोड़ने वाली एक घटना है। इस प्रकार लगातार फैलाव और सिकुड़न वाली प्रक्रिया के साथ यह विश्व आवृतिक अवस्था वाला है। यदि यह सिद्धान्त सही है तो यह अंतरिक्ष विज्ञान की उस गुत्थी को सुलझा देता है कि नीहारिका, तारे और ग्रह कैसे बनते हैं। पूर्व में विद्यमान ब्रह्माण्ड के नष्ट होने की प्रक्रिया में ऐसी क्वांटम तरंगे निकलती हैं जो नये फैलने वाले ब्रह्माण्ड में नीहारिकाओं को जन्म देती हैं।

स्टडी स्टेट थ्योरी

इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड हमेशा स्थिर अवस्था में रहता है। ब्रह्माण्ड के फैलाव के प्रभाव को निस्तेज करने के लिये माना गया कि हमेशा नया पदार्थ पैदा होता रहता है। यह नया पदार्थ आकाश से उत्पन्न होता है। इसी कारण ब्रह्माण्ड में जगह-जगह स्थानीय नया पदार्थ बनता रहता है परन्तु समग्र ब्रह्माण्ड स्तर पर कोई परिवर्तन नहीं होता है। एक अनुमान के अनुसार इस नये पदार्थ बनने की गति 10^{-43} किलोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर प्रति सैकण्ड है जो इतनी कम हे कि इसको मापा नहीं जा सकता। इसलिए स्टडी स्टेट थ्योरी के पक्ष में दूसरे साक्ष्य की आवश्यकता है। यदि यह प्रमाणित किया जा सके कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे पदार्थ का धनत्व दूरी और समय के साथ अपरिवर्तनीय है तो यह स्टडी स्टेट थ्योरी को न कि बिग बैंग थ्योरी को प्रमाणित करेगा। बिग बैंग थ्योरी के अनुसार ब्रह्माण्ड आदि और सान्त है। स्टडी स्टेट थ्योरी में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिससे हाल में खोजे गये माइक्रोवेव विकिरण की व्याख्या हो सके।

थ्योरी क्या है? स्टीफन हाकिंग के अनुसार ''कोई भी थ्योरी ब्रह्माण्ड या उसके एक भाग का मॉडल है और वे नियम है जो मॉडल में विद्यमान तथ्यों को हमारे प्रयोग से मिलाते हैं। यह थ्योरी हमारे मस्तिष्क में होती है इसका सच्चाई से कोई संबधं नहीं होता। किसी थ्योरी के अच्छी थ्योरी होने के लिए दो शर्ते हैं। यह एक ऐसे मॉडल के आधार पर जिसमें विकल्प न्यून हो हमारे वृहद् प्रयोगों की व्याख्या कर सके और भविष्य में होने वाली घटनाओं का सही पूर्वानुमान कर सके।

कोई भी भौतिक सिद्धान्त अस्थाई होता है इसेको कभी भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। चाहे कितनी ही बार कुछ परिणाम इस सिद्धान्त के अनुरूप हो, यह नहीं कहा जा सकता कि अगली बार परिणाम सिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं होंगें। ऐसी थ्योरी जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एक ही प्रयास में व्याख्या कर दे बहुत कठिन है।

हम पूरी स्थिति को खण्डों में विभाजित कर देते हैं और हर खण्ड के लिए आंशिक थ्योरी का प्रयोग करते हैं। हर आंशिक थ्योरी अन्य खण्डों के प्रभाव को नकारते हुए या उसकी कुछ आसान गणना करके कुछ सीमित प्रयोगों की ही व्याख्या करती हैं।

आज के वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड की व्याख्या दो आंशिक थ्योरी से करते हैं सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त और क्वाण्टम मेकेनिक्स। दुर्भाग्यवश ये दो थ्योरी आपस में मेल नहीं खाती, दोनो एक साथ सही नहीं हो सकती । आज भौतिक शास्त्र में एक बड़ा प्रयास एक नई थ्योरी की खोज का चल रहा है जो इन दोनों थ्योरी को संयुक्त कर सके।

आजकल लगभग सभी लोग मानते है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति बिग बैंग सिंग्यूलेरेटी से हुई। अब मैं अन्य भौतिक विज्ञानियों को आश्वस्त करना चाहता हूँ कि ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ में वास्तव में कोई सिंग्युलेरेटी नहीं थी - क्वांटम प्रभाव से उत्पन्न परिदृश्य के फलस्वरूप सिंग्युलेरेटी मानने की आवश्यकता नहीं है। 1970 में पेनरोज और मैंने आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के आधार पर सिंग्युलेरेटी अवधारणा को गलत सिद्ध किया। हमारा मानना है कि सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त अपूर्ण है, यह सिद्धान्त नहीं बता सकता कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार सभी भौतिक सिद्धान्त, सापेक्षता सिद्धान्त सहित, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय लागू ही नहीं होते।''

6.2.7 शून्य ऊर्जा

आधुनिक भौतिक शास्त्र के अनुसार शून्य (Vacuum) जगह बिल्कुल खाली नहीं हो सकती। क्योकि शून्य जगह में यदि पदार्थ नहीं है तो भी वहाँ कुछ कण और फील्ड उपस्थित होते हैं। ऐसी जगह में वरचुअल कण युग्म (जैसे इलेक्ट्रान-पॉजीट्रान) पैदा होते हैं और पुनः अपने को नष्ट कर देते है। तथा वहाँ शून्य विद्युत चुम्बकीय फील्ड के शून्य बिन्दु स्पंदन (Zero Point-Fluctuation) होते हैं। शून्य बिन्दु स्पंदन की ऊर्जा अनंत मानी गई है। यहाँ शून्य बिन्दु स्पंदन (ZPF) का अभिप्राय यह है कि ऐसे स्पंदन निरपेक्ष (Absolute) शून्य तापमान पर भी होते हैं जहाँ ताप जनित स्पंदन बंद हो जाते हैं। (ZPF) की एक विशेषता यह है कि इसमें गति करने वाले विद्युत आवेशित कण पर कोई रगड़ नहीं लगती (ड्रेग नहीं होता)।

प्रश्न उठता है कि शून्य बिंदु ऊर्जा कहाँ से आती है। इसके लिए दो सुझाव दिए गये हैं। प्रथम यह ब्रह्माण्ड का स्वर्भाव है और दूसरा ब्रह्माण्ड में विद्युत

आवेशित कणों की गति से यह ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसमें से दूसरा सुझाव अप्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित हुआ है।

एक भारतीय अणु वैज्ञानिक परमहंस तिवारी के अनुसार यह भौतिक संसार, जो हम अंतरिक्ष में देखते हैं, सब शून्य से बना है। डॉ. तिवारी का कहना है यह ब्रह्माण्ड खाली-खाली नहीं है, वरन् भार रहित, लचीलेपन से युक्त (इन्काम्प्रेसीबल) गतिशील तथा ऊर्जा से लबालब द्रव इसमें भरा हुआ है। इस द्रव द्वारा ही किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में खाली स्थान में से पदार्थों की रचना हुई है। श्री तिवारी द्वारा लिखित पुस्तकों स्पेसवोरटेक्स थ्योरी तथा ओरिजन ऑफ इलेक्ट्रान्स फ्राम एम्पटी स्पेश में इसका विस्तृत वर्णन है। श्री तिवारी के अनुसार मूल बल (बेसिक फोर्स) की उत्पत्ति घूमते हुए ब्रह्माण्डीय द्रव से हुई है। हमें ज्ञात गुरूत्वाकर्षण, विद्युत चुम्बकीय तथा नाभिकीय बल इस बेसिक फोर्स के ही कारण है। भौतिकी के सभी मूल समीकरण वोरटेक्स थ्योरी के अनुसार प्रतिपादित किए जा सकते हैं जिसमें आइन्स्टीन का सापेक्षता सिद्धान्त भी शामिल है।

एक नया तथ्य ब्रह्माण्ड की शोध से उभर कर आया है। अब तक प्रकाश की गति को ही सर्वोपरि गति माना जाता रहा है। पर अब ध्रुव 'कर्क' नीहारिका की गतिविधियों का विश्लेषण करते हुए इस गतिशीलता का नया कीर्तिमान सामने आया है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के डॉ. एल. एल. और डॉ. ज्याफे एनडीन ने इस नीहारिका के विद्युतीय चुम्बकीय क्षेत्र की चल रही गतिशीलता को प्रति सैकण्ड 595200 मील नापा है, जो प्रकाश गति की तुलना में लगभग चार गुना अधिक है। इस नीहारिका के मध्य में एक छोटा सूर्य ऐसा पाया गया है जिसका तापमान अपने सूर्य से 100 गुना अधिक है। वह अपनी धुरी पर प्रति सैकण्ड 33 बार परिक्रमा कर लेता है, यह भ्रमण गति भी अब तक की कल्पनाओं से बहुत आगे है।

6.2.8 ब्रह्माण्ड में जीवन

प्राचीन काल में लोकान्तरवासियों का सीधा संबंध धरतीवासियों से था। पृथ्वीवासियों से सम्पर्क साधने एवं ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान के लिए वे अपने विशेष यानों-विमानों में बैठकर आते-जाते रहते थे। इसके अनेकों प्रमाण आज भी विश्व के विभिन्न भागों में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। वर्तमान में धरती पर उतरने वाली उड़नतश्तरियाँ अन्तर्ग्रही आवागमन के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

वैदिक ग्रंथों में देवी-देवताओं का विमानों में सवार होकर आकाश गमन का वर्णन मिलता है। सुमेरू पर्वत, विन्ध्याचल, हिमालय की घाटियों में देवयानों के उतरने का भी उल्लेख है। ऋग्वेद में एक ऐसे रथ का वर्णन है, जो पृथ्वी, जल और आकाश तीनों में चलता था। अश्विनी कुमारों का त्रिचक्र रथ अश्व के बिना ही अंतरिक्ष में भ्रमण करता था। महर्षि भारद्वाज ने 'यन्त्र सर्वस्व' में बिजली, वाष्प, सौर ऊर्जा, जल, वायु, तेल, और चुम्बक से चलने वाले विमानों का वर्णन किया है। रामायण में पुष्पक विमान, गुरूड़ विमान, यन्त्र कल्पतरू में व्योम विमान, महाभारत में शाल्व के विमान का उल्लेख मिलता है। प्राचीन चीनी लोक कथाओं में भी आकाश गमन करने वाले विमानों का वर्णन मिलता है। बाईबिल में कहा गया है कि उत्तर दिशा में एक प्रकाश का बवंडर उत्पन्न हुआ जिसमें से एक विमान प्रकट हुआ। उसके अन्दर चार सजीव प्राणी थे जिनकी आकृति मनुष्यों जैसी थी।

युनानी कथाओं में आकाश गमन करने वाले देवी-देवताओं का वर्णन मिलता है। मिस्त्र और बेबीलोन की प्राचीन सभ्याताओं में भी ऐसे अनेक प्रमाण मिले हैं, जिनसे अंतर्ग्रही विमानो के आवागमन का वर्णन सही सिद्ध होता है।

स्विट्जरलैण्ड के सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेता एरिकफ्रॉम के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में बाह्य अंतरिक्ष से यात्री यानों में बैठकर आते थे। इस कथन की पुष्टि मूर्धन्य वैज्ञानिक डॉ. पीटर कोलोसिमो ने भी की है। उनका कहना है कि कभी-कभी तो अंतरिक्ष यात्री धरतीवासियों से विवाह संबंध बनाकर घर बसा लेते थे और गृहस्थी का सुख भोगकर लम्बे समय बाद अंतरिक्ष में लौट जाते थे।

रूस के सुप्रसिद्ध खगोल-विशारद आई.एस. श्क्लोव्सकी ने इंटेलीजेंट लाइफ इन दि यूनिवर्स नामक पुस्तक में अनेक तर्को और वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर यह लिखा है कि - हमारी आकाशगंगा क्षेत्र में लगभग 10 लाख ऐसे ग्रह हैं जहाँ धरती के समान ही बुद्धिमान और सभ्य लोग निवास करते हैं। इनमें से कई लोक तो इतने सुन्दर हैं कि उनकी तुलना स्वर्ग से की जा सकती है।

सन् 1971 में पृथ्वीत्तर जीवन की खोज के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय कमेटी बनाई गई जिसकी बैठक रूस के आर्मीनिया प्रदेश में हुई। अनेको वैज्ञानिकों ने यह सम्भावना व्यक्त की कि अन्य ग्रहों पर भी जीवन है। सन् 1969 में आस्ट्रेलिया

में गिरी एक उल्का के विश्लेषण-परीक्षण से ज्ञात हुआ कि उनमें पाँच अमीनो - एसिड ऐसे हैं - जो पृथ्वी पर जीवित प्राणियों में पाये जाते हैं। इसके अतिक्ति 11 प्रकार के अन्य अमीनो एसिड और भी हैं जो पृथ्वी पर कुछ ही जीवित प्राणियों में विशेष रूप से पाये जाते हैं। ये अमीनो एसिड वाम-हस्त एवं दक्षिण - हस्त दोनो प्रकार के थे। जब कि पृथ्वी पर वाम-हस्त अमीनो एसिड ही पाये जाते हैं। वैज्ञानिकों ने अमीनो एसिड की इस विकसित स्थिति के आधार पर घोषणा की कि जिन ग्रहों-उपग्रहों से उल्का पिण्ड टूट कर गिरा, वहाँ पृथ्वी से भी अधिक विकसित एवं बुद्धिमान प्राणियों के होने की सम्भावना है।

हारवर्ड वेधशाला (न्यूयार्क) के अवकाश प्राप्त ज्योतिषी डॉ. हारलो शेषले के अनुसार तो 10 करोड़ से भी अधिक ग्रहों में घास, वृक्ष और जीव रहते हैं। 73 वर्षीय रूसी वैज्ञानिक ए.आई. ओपरिन की राय मे अन्य ग्रहों पर जीवन है। श्री ओपरिन, जो सोवियत विज्ञान अकादमी की जीव विज्ञान इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर और जीव शास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय सोसायटी के उपाध्यक्ष भी हैं, का कहना है कि कार्बन यौगिकों के विकास की प्रक्रिया ही पृथ्वी पर जीवन का आधार है तो अन्य ग्रहों पर जहाँ भी कार्बन यौगिक हैं, जीवन का होना बिल्कुल निश्चित है - (1) आदिम कालीन आर्गनिक पदार्थ हाइड्रो कार्बन, (2) विभिन्न प्रकार के जटिल आर्गेनिक पदार्थो के जलीय घोल में प्रायमरी सूप का निर्माण और (3) जटिल बहु आण्विक खुली प्रणाली। ये तीन प्रक्रियाएँ ही प्राणियों के उद्‌भव के स्रोत हैं और यह विकास क्रम अंतरिक्ष में व्यापक रूप से विद्यमान है।

अब यदि अंतरिक्ष में जीवन है तो उनमें बौद्धिक विकास और शब्द ध्वनि की स्थिति भी होनी चाहिए। अंतरिक्ष वैज्ञानिक काफी समय से यह कहते आ रहे हैं कि आकाश से बहुत ही व्यवस्थित संदेश आ रहे हैं किन्तु हमारी ग्रहणशीलता भिन्न प्रकार की होने से हम उन्हें समझ नहीं पा रहे हैं, पर यह निश्चित है कि किसी ग्रह में अत्यन्त बुद्धिमान प्राणियों का निवास है अवश्य। प्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्दाशेव ने उन विशेषताओं पर प्रकाश डाला है जिनके द्वारा अंतरिक्ष से स्थायी तौर पर आने वाली ध्वनियों में से उन ध्वनियों को पहचाना जा सकता है, जो किसी कृत्रिम स्रोत से आ रही है। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से आने वाली ध्वनि तरंगों के वर्ण छटाओं के अलग-अलग चार्ट तैयार किए हैं। एक चार्ट में उन्होंने दिखलाया है कि पृथ्वी से

हजारो लाखों प्रकाश वर्षो की दूरी पर स्थित सभ्यताओं के रेडियो संकेतो की वर्ण छटा (रेडियो फोटो) किस प्रकार की होगी। यह वर्ण छटा प्राकृतिक स्त्रोतों से निकलने वाली वर्ण छटा से बिल्कुल भिन्न होगी।

1965 में प्रसिद्ध ज्योतिर्विद शोला मित्स्की ने अश्विनी के नक्षत्र मण्डल मे एस.टी.ए. 102 के रेडियो ध्वनि विक्षेपण का अध्ययन करते हुए यह पता लगाया कि उसका प्रवाह निर्धारित समय पर बदलता रहता है, यह अवधि 100 दिन की होती है। इंग्लैण्ड की जोड्रेल अंतरिक्ष वेधशाला द्वारा भी ऐसी सूचनाएँ प्राप्त की गई हैं, जिनसे निकोलाई कार्दाशेव के मत की पुष्टि होती है। इन सभी वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अश्विनी के नक्षत्र मण्डल में अवश्य ही पृथ्वीवासियों से कहीं अधिक मानसिक शक्ति और वैज्ञानिक प्रगति से सम्पन्न बुद्धिमान प्राणी निवास करते हैं और वे सैंकड़ो वर्षों से पृथ्वी के साथ सम्पर्क साधने के प्रयत्न में हैं।

सन् 1968 मे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय, लन्दन के कुछ शोध छात्र उस समय आश्चर्य चकित रह गये जब उन्होंने अन्तरिक्ष से आने वाली बीप-बीप-बीप की विचित्र ध्वनि सुनी। यह संकेत किन्हीं बुद्धिमान प्राणियों द्वारा सम्प्रेषित थे। उसका अनुमान इस बात से हुआ कि संकेत निश्चित गति और नियमित समय पर आ रहे थे। मुलार्ड रेडियो वेधशाला में इनकी विस्तृत खोज चल रही है। वेधशाला के संचालक, प्रसिद्ध नक्षत्रविद् श्री मार्टिन राइल ने जाँच के बाद पाया कि यह पल्सर (संकेत) क्रमशः 1.337, 1.5, तथा 1.9 सेकण्ड के क्रम से आ रहे हैं और नियमित आ रहे हैं। उनका स्त्रोत 200 प्रकाश वर्ष दूर के किसी कुल आधे मील व्यास वाले नक्षत्र में हैं। सम्भव है, इतना बड़ा कोई अंतरिक्ष स्टेशन ही आकाशस्थ प्राणधारियों ने लगा रखा हो।

1971 में रूस और अमेरिका ने मिलकर एक संस्था का गठन किया, जिसे सोवियत अमेरिका कांग्रेस ऑन एक्स्ट्रा टेरिस्टेरियल लाइफ के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह संस्था अमेरिका के ब्यूराकन प्रदेश में गठित हुई। इसके अतिरिक्त खगोल विद्याविदों एवं अन्य वैज्ञानिकों ने सेटी (SETI- सर्च फार एक्स्ट्रा टेरिस्टोरियल इन्टलीजेन्स) नामक संस्था गठित की। कई वर्षों से आकाश में रेडियो सिग्नल भेजे जा रहे हैं और प्रत्येक आकाशीय पिण्ड की रेडियो एक्टीविटी ज्ञात करके उनका नक्शा बनाया जा रहा है। इस कार्य की जटिलता के बारे में सेटी के पायोनियर डॉ.

फ्रेन्क डी ड्रेक कहते हैं -यह कार्य उस सुई को ढुंढने के समान है जो विशाल घास के ढेर में खो गई है।

कहा जाता है कि अन्य ग्रहों पर पृथ्वी जैसी परिस्थितियां न होने से वहाँ विकसित स्तर का जीवन होने मे संदेह है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि धरती जैसी बनावट वाले प्राणी ही अन्य लोकों में भी हो। जीवन के असंख्य स्वरूप हो सकते हैं उनमें से एक वह भी है जो पृथ्वी पर पाया जाता है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हेज होवेर कहते हैं कि अन्य ग्रहों से वहाँ की परिस्थितियों में निर्वाह कर सकने योग्य शरीरों वाले तथा उन्हीं साधनों पर निर्वाह कर सकने वाले प्राणी हो सकते हैं।

अंतर्ग्रही जीवन में अनुसंधानी और नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. फ्रांसिस क्रिक ने यह माना है कि जीवन धरती की अपनी सम्पदा नहीं है वरन् वह अंतरिक्ष से बरसा अनुदान है। डॉ. लेस्ली अगिल ने भी अपने अनुसंधानों में यह मत सम्मिलित किया है कि धरती के रसायन इस स्थिति में नहीं हैं कि वे मनुष्य जैसी जटिल बौद्धिक संरचना का आविर्भाव कर सकें। वे अधिक से अधिक सूक्ष्मजीवी एवं वनस्पति स्तर का जीवन उत्पन्न कर सकते हैं। उपरोक्त दोनो ही वैज्ञानिक अपने-अपने तर्कों और प्रमाणों के आधार पर धरती के जीवन को अंतरिक्ष से उतरा अनुदान या उपहार मानते हैं निजी उत्पादन नहीं।

एक फ्रान्सिसी खगोल विद्याविशारद ने खोजकर बताया कि उड़नतश्तरियां इन्हीं दिनों आने लगी हो ऐसी बात नहीं है, इनका आवागमन बहुत समय से चल रहा है। रोम में ईसा से 212 वर्ष पूर्व उड़नतश्तरी देखी गई थी। शेक्सपियर के ग्रंथों में ही नहीं बाइबिल में भी उनका उल्लेख है। उड़नतश्तरी अनुसंधान संस्था निकैप ने ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण प्रकाशित कराया है, जिनसे अन्य लोकों के प्रबुद्ध व्यक्तियों का अपनी धरती पर आना सिद्ध होता है। कैलीफोर्निया के रेडियो एस्ट्रोनॉमी इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर डॉ. रोनाल्ड एन ब्रेस्वेल ने ऐसे आधार प्रस्तुत किए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि अन्य ग्रह-तारकों में सम्मुन्नत सभ्यता वाले प्राणी निवास करते हैं और वे अपनी पृथ्वी के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

इंग्लैण्ड की ज्योतिर्विज्ञान विद्या के निदेशक सरबर्नाड पावेल जो रेडियो टेलिस्कोप से निरन्तर किसी भूले-भटके अंतरिक्षीय यान की टोह लगाते रहते है, का

कहना है कि मात्र हमारी आकाशगंगा में लगभग पाँच प्रतिशत तारे ऐसे हैं जिन पर जीवन सम्भव है। ब्रह्माण्ड तो अत्यन्त विराट है। हमारी आकाशगंगा जैसी नौ खरब आकाशगंगाएँ और भी है जिनकी कोई जानकारी नहीं है। अब तक लगभग 1600 से भी अधिक ऐसी घटनाओं की जानकारी मिली है जिनसे अन्यान्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व सिद्ध होता है।

ब्रह्माण्ड शोध कार्य के उपयुक्त एक अति महत्वपूर्ण विज्ञान हाथ में आया है-रिलेटिविस्टिक वेलोसिटी अर्थात् आपेक्षित तीव्र गति। इस आधार पर पाँच हजार वर्षों की यात्रा दस वर्ष में ही की जा सकेगी। इस विज्ञान का विवेचन करते हुए विज्ञानी डोनाल्ड ने उसे गुरूत्वाकर्षण का उल्लंघन कहा है। उड़नतश्तरियों का दूरवर्ती ग्रह-नक्षत्रों से धरती पर आना-जाना इसी आधार पर सम्भव है। एलेग्जेण्डर सेवेरस्की और वर्क हार्ड इस शोध के अग्रणी माने जाते हैं।

शिकागो विश्वविद्यालय के एनरिको इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर स्टडीज के शोध प्राध्यापक जान एच वार्कर ने अपना निष्कर्ष व्यक्त करते हुए कहा है कि अन्य ग्रह-नक्षत्रों द्वारा हमारी पृथ्वी पर लगभग एक लाख टन अन्तरिक्ष धूलि बरसाई जाती है जिसमें बहुमूल्य खनिज, रसायन ही नहीं, ऐसे जीवाणु भी होते हैं जिन्हें धरती पर उत्पन्न हुए नहीं कहा जा सकता।

जीवशास्त्रियों का एक कथन यह भी है कि अंतरिक्ष में उड़ते पाये जाने वाले जीवाणु भ्रमणशील आदिवासी हैं जो कहीं एक जगह नहीं टिकते। ग्रहों की दुनिया में चलते रहने वाले आकर्षण-विकर्षण की तरंगों पर सवार होकर वे करोड़ो मील की द्रुतगामी यात्राएँ मुफ्त में और सहज में पूरी किया करते हैं। इसी संदर्भ मे यह भी बताया गया है कि 35 करोड़ वर्ष पूर्व जब धरती बनी थी तो जीवन का उद्भव उसने अपने भीतर नहीं किया वरन् यहाँ की अनुकूल परिस्थितियों में अन्तरिक्षीय जीवाणु आकर बस गये और उनके विविध वंशजो ने क्रमशः इस समस्त लोक पर कब्जा कर लिया।

स्विस पुरातात्विविद एरिकवान डैनिकेन की मान्यता है कि आधुनिक मानव जिसे होमियोसैपिएन्स कहा गया है, अंतरिक्षवासियों और बंदर की संकर संतान है। उस समय धरती पर केवल बंदर ही थे, मनुष्य नहीं। मनुष्य कृत्रिम प्रेरित उत्परिवर्तन से उत्पन्न हुआ है।

6.3 जैनलोक और वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड का तुलनात्मक अध्ययन

जैन लोक का विवरण सर्वज्ञ भगवान द्वारा अनुभूत सच है। वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड का स्वरूप हजारो-हजारों वैज्ञानिको द्वारा भौतिकी, गणित, खगोल शास्त्र, अंतरिक्ष विज्ञान के सूत्रों और परीक्षण द्वारा अर्जित खण्ड-खण्ड और भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञान के आधार पर मानव द्वारा निर्मित एक चित्र है। मनुष्य की अपूर्णता और उसके द्वारा निर्मित उपकरणों की सीमाएं उनके द्वारा उपार्जित ज्ञान पर भी सीमाएं आरोपित करती है। इस प्रकार प्राप्त सीमित ज्ञान सच ही हो इसकी कोई गारंटी नहीं है। आज जो सच लगता है वह कल गलत हो सकता है। फिर भी आज मानव के पास अपनी सीमित शक्ति और सामर्थ्य के उपयोग के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। यह उसका साहस और विवेक ही है कि वह अपूर्ण होते हुए भी सच को जानने का पुरूषार्थ कर रहा है। मानव जो कुछ भी अपनी क्षमता के बल पर प्राप्त कर रहा है उसके पीछे तर्क है, प्रमाण भी है चाहें वे तात्कालिक ही हों। सर्वज्ञ की वाणी सच होते हुए भी कालक्रम से उसमें कितना परिणमन हो गया है कहा नहीं जा सकता। उसके लिए एक कसौटी आवश्यक है जो हमें सच की पहचान करा सकें। वैज्ञानिक ज्ञान अपूर्ण होते हुए भी एक ऐसी कसौटी उपलब्ध कराता है। विवेक और तर्क का उपयोग और विज्ञान का सहारा लेकर यदि हम पुरूषार्थ करें तो सम्भवतया सच का दर्शन कर पाने में सफल हो सकते हैं।

सर्वज्ञ भगवान पूर्ण हैं, वे निरपेक्ष रूप से इस विश्व को जानते हैं।(हमारा ज्ञान सापेक्ष है और इसीलिए अपूर्ण भी है)। वे परमाणु पुद्गल जैसे सूक्ष्मतम पदार्थ को जानते हैं तो लोक जैसी विशालतम रचना को भी जानते हैं। विज्ञान के बल पर आज हम ब्रह्माण्ड के बारे में अपेक्षाकृत काफी कुछ जानते हैं परन्तु भगवान महावीर के काल में लोगों को ब्रह्माण्ड के बारे में ऐसा ज्ञान नहीं था। फिर सर्वज्ञ भगवान् लोगो की लोक संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान कैसे करें? मेरा मानना है कि उन्होने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो सामान्यतया ग्राह्य हो। अलंकार और उदाहरणों का भी प्रयोग किया। लोक जैसे विषय के बारे में भगवान ने गुणात्मक विवरण ही प्रस्तुत किया होगा जैसे संख्यात, असंख्यात, अनंत, अनंतानंत, आदि।

छद्मस्थ आचार्यो के काल में जब शास्त्रों की रचना हुई, उनके पास परंपरा से चले आ रहे अवशेष ज्ञान के अतिरिक्त ऐसा कोई स्रोत नहीं था जिससे उस ज्ञान

की तुलना की जा सके। अत: लेखन में कल्पना के पुट से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार लोक का जो स्वरूप हमें आज शास्त्रों से प्राप्त होता है उसमें दो प्रकार के अंश हैं एक वह जो सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत मोटा-मोटा और गुणात्मक वर्णन है और दूसरा वह जो आचार्यों द्वारा कल्पित संख्यात्मक वर्णन है। यदि हम इन दोनों को अलग कर दें और साथ ही साथ विज्ञान द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का भी संज्ञान ले लें तो सच को गृहण करनें में सफल हो सकते हैं। हम यहाँ एक ऐसा ही प्रयास कर रहे हैं। ब्रह्माण्ड के विषय में कुछ बातें अवश्य ही ध्यान में रखनी होगी। प्रथम लोक जैसे व्यापक विषय को समझने के लिए हमारी समझ और कल्पना भी उतनी ही विशाल होनी चाहिए। जैसे असंख्यात द्वीप समुद्रों वाले मध्यलोक में हमारी पृथ्वी का क्या स्थान हो सकता है, उसे नगण्य ही कहा जायगा। दूसरा ब्रह्माण्ड में दूरी का माप वही नहीं होगा जिसका पृथ्वी पर प्रयोग किया जाता है। श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार द्वीप, समुद्र आदि की लम्बाई-चौड़ाई आदि मापने के लिए विशेष प्रकार के योजन का उपयोग होता है, जो सामान्य योजन से 1000 गुना है। दिगम्बर-परम्परा के अनुसार द्वीप आदि को मापने वाला योजन सामान्य योजन से 500 गुना है। इस प्रकार विशेष योजन का मान 8000 मील या 4000 मील होता है। वास्तव में पृथ्वी पर योजन लोक के योजन की तुलना में बहुत छोटा है। हम आगे देखेंगे कि लोक के संबंध में योजन को प्रकाश वर्ष मानना बहुत युक्ति संगत है।

6.3.1 जम्बूद्वीप और मध्यलोक

सबसे पहला प्रश्न है जम्बूद्वीप कहाँ है। अधिकांश लोग पृथ्वी पर जंबूद्वीप को ढूंढते है। जम्बूद्वीप तो थाली के आकार का है और पृथ्वी गोल है। क्या तीन लोक को जानने वाले सर्वज्ञ भगवान को नहीं मालूम था कि पृथ्वी गोल है? समेरू पर्वत कहाँ है? फिर अधिकांश लोग पृथ्वी के किसी पर्वत को सुमेरू मानने लगते हैं। तो सूर्य सुमेरू की परिक्रमा कैसे करेगा ? पृथ्वी पर हेमवत्, हरि, विदेह आदि क्षेत्रों को ढूंढने का प्रयास किया जाता है। ऐसे सब प्रयास आज तक असफल ही रहे हैं।

चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है और वैज्ञानिकों ने चन्द्रमा पर यान और मानव को उत्तार दिया। जैनी लोग इस सत्य को स्वीकारने को तैयार नहीं, कहते हैं वे लोग चन्द्रमा पर नही जा सकते, अन्यत्र कहीं गये होंगे। आंख बन्द करने से सूर्य नहीं छिप सकता, सत्य को स्वीकारना ही होगा।

तो फिर जम्बूद्वीप कहाँ है, कैसे सूर्य और चन्द्र सुमेरू पर्वत की परिक्रमा कर रहे है? इस प्रश्न का समाधान पाने के लिए आइये अपनी दृष्टि को थोड़ा विस्तार दें, जम्बूद्वीप और आकाशगंगा की तुलना करें।

जम्बूद्वीप थालीनुमा है और आकाशगंगा भी थालीनुमा है। जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है और आकाशगंगा का व्यास एक लाख प्रकाश वर्ष है। जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख योजन है और आकाशगंगा की परिधि 250-300 हजार प्रकाश वर्ष है। (नवीन खोजों से भविष्य में इसमें कुछ परिवर्तन भी हो सकता है।) जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरूपर्वत है और आकाश गंगा के मध्य में केन्द्र है। सुमेरू पर्वत दस हजार योजन चौड़ा और एक लाख योजन ऊंचा माना गया है, आकाश गंगा का केन्द्र कम से कम एक से दो हजार प्रकाश वर्ष या अधिक चौड़ा है। जम्बूद्वीप में सूर्य और चन्द्रमाँ सुमेरू पर्वत के चक्कर लगाते है, आकाशगगा में सूर्य और चन्द्रमा केन्द्र की परिक्रमा कर रहे हैं। जम्बूद्वीप के चारों तरफ दो लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है जिसमें 48 द्वीप है, आकाशगंगा के चारों तरफ प्रभा मण्डल है जिसका व्यास 250-400 हजार प्रकाश वर्ष है और उसमें 146 तारा समूह और कई लघु नीहारिकाऐं हैं। प्रभा मण्डल के बाहर भी आकाश का बहुत विस्तार है। जम्बूद्वीप के एक किनारे भरत क्षेत्र है जिसमे हम रहते हैं। आकाशगंगा के किनारे हमारा सूर्य है जिसके गृह पृथ्वी पर हम रहते हैं । इस प्रकार यदि एक योजन को एक प्रकाश वर्ष मान लिया जाय तो जम्बूद्वीप और आकाशगंगा में बहुत समानता सिद्ध होती है। इस प्रकार क्या आकाशगंगा को जम्बूद्वीप माना जा सकता है ?

आगे विचार करें। यदि जम्बूद्वीप आकाशगंगा है तो इसको वेष्टित कहते हुए द्वीप और समुद्र क्या हैं ? भौगोलिक स्थिति में आजतक किसी ऐसे द्वीप या समुद्र को नही देखा गया जिसका आकार चूडीदार हो। मेरा मानना है कि नीहारिका द्वीप है और चूड़ीदार रचना उसके परिक्रमा पथ का प्रदर्शन है। अर्थात् नीहारिका द्वीप है जो परिक्रमा कर रही है। एक के बाद दूसरी नीहारिका, दूसरी के बाद तीसरी और इस प्रकार असंख्यात नीहारिकाएं हैं (अर्थात् असंख्यात द्वीप हैं) और वे सब परिक्रमा कर रही हैं। द्वीपों के बीच जो समुद्र है वह नीहारिकाओं के प्रभामण्डल और आकाश क्षेत्र हैं। आकाशगंगा के सबसे निकट एन्ड्रोमीडा नीहारिका है। अत:

वही धातकी खंड है। लवण समुद्र आकाशगंगा के प्रभामण्डल और एन्ड्रोमीडा के प्रभामण्डल और उनके बीच आकाशीय क्षेत्र से मिलकर बना है। धातकी खण्ड का विस्तार 4 लाख योजन है और वर्तमान जानकारी के अनुसार एन्ड्रोमोडा नीहारिका, जो भी थालीनुमा है, लगभग 220 हजार प्रकाश वर्ष व्यास विस्तार की है। धातकी खण्ड में दो मेरू पर्वत हैं और एन्ड्रोमीडा में भी दो केन्द्र हैं। धातकी खण्ड को वेष्टित करते हुए कालोदक समुद्र है जिसमे 48 द्वीप हैं। एन्ड्रोमीडा की परिक्रमा करती हुई भी कई लघु नीहारिकाएँ हैं जिनमें अभी तक 14 की खोज हो गई है। आगे की नीहारिकाओं के बारे मे अभी तक अधिक जानकारी नहीं हो पाई है।

द्वीपों की संख्या असंख्यात है अर्थात् उनकी गिनती नहीं हो सकती। नीहारिकाओं की भी सही संख्या कभी ज्ञात नहीं हो सकती। इसके कई कारण है। एक तो इतनी अधिक दूरी से आने वाले संकेतों का ग्रहण करना कठिन होता है। दूसरा नीहारिकाऐं बनती और नष्ट होती रहती हैं। इसलिए नीहारिकाओं की सही संख्या कभी ज्ञात नहीं होगी।

जैन मत के अनुसार लोक अनादि निधन है, अकृत्रिम है। परन्तु लोक के सभी द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य गुण वाले हैं। परिणमन द्रव्य का स्वभाव है। अत: विज्ञान के अनुसार तारे का विनाश होता है या नीहारिकाओं का विनाश होता है और नये तारे और नीहारिकाओं का निर्माण होता है तो इसमें जैन मत का विरोध नहीं है। ऐसी घटनाओं का जैन शास्त्रों मे स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है परन्तु ये सब परिणमन सिद्धान्त में निहित हैं। तारों का विघटन या नीहारिका का विनष्ट होना पदार्थ के गुणानुसार है और स्वीकार्य है। जैन मत यह नहीं मानता कि बिग बैंक जैसे किसी एक घटना से सृष्टि का निर्माण हुआ। स्थानीय स्तर पर तोड़फोड़ की घटनाएं हो सकती हैं परन्तु लोक तो अनादि निधन है और अकृत्रिम ही है।

अंतरिक्षविदो ने सबसे दूर नीहारिका एम 87 देखी है जो हमसे 5 करोड़ प्रकाश वर्ष दूर है। अंतरिक्ष विज्ञानी अभी तक 11-15 अरब प्रकाश वर्ष दूर तक पहुँचने में सफल हुए हैं जहाँ से माइक्रोवेव विकिरण प्राप्त हो रहे हैं। यह विश्वास किया जा रहा है कि ये माइक्रोवेव विकिरण बिग बैंग के 3 लाख वर्ष बाद के समय के हैं। यदि ऐसा है तो वैज्ञानिकों के अनुसार हम ब्रह्माण्ड के छोर के निकट पहुँच गये हैं। परन्तु मध्यलोक के अन्त तक अर्थात् स्वयंभूरमण द्वीप तक पहुँचना असम्भव

है क्योंकि वहाँ तक की नीहारिकाओं की गिनती नहीं हो सकती। अत: यह मानना उचित होगा कि वैज्ञानिकों ने अभी तक मध्य लोक के एक सीमित भाग को ही देखा है।

मध्यलोक के जितने भी अंश को वैज्ञानिक जान पाये हैं उसके अनुसार वे ब्रह्माण्ड को सपाट मानते हैं। अर्थात् मध्य लोक सपाट है जो जैन धारणा से मेल खाता है। यह अवश्य है कि निहारिका के प्रभामण्डल की तरह मध्यलोक का भी प्रभामण्डल होना चाहिए। मध्यलोक एक राजू प्रमाण माना गया है। इसका प्रभामण्डल उर्ध्व और अधो दिशाओं में कम से कम एक राजू तो होगा। अत: यह माना जा सकता है कि अधोलोक की रत्नप्रभा पृथ्वी और ऊर्ध्व लोक का प्रथम स्वर्ग मध्यलोक के प्रभाव क्षेत्र मे स्थित है।

उपरोक्त मन्तव्य को स्वीकार करने पर ऐसा लगता है कि लोक संबंधी जैन धारणा विज्ञान सम्मत है। यही नहीं, यह भी अनुमान हो जाता है कि विज्ञान अभी तक ब्रह्माण्ड के एक अंश को ही जान पाया है। अब हम जम्बूद्वीप संबंधी अन्य विवरण को भी समझने का प्रयास कर सकते हैं। आकाशगंगा के विस्तार क्षेत्र मे भरत आदि क्षेत्रो की भी पहचान की जा सकती है। चित्र 6.10 और 6.11 में हमारे सौर परिवार का स्थान दिखाया गया है, यही क्षेत्र भरत क्षेत्र है। हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी को भरत क्षेत्र और भारत वर्ष को आर्य खण्ड माना जा सकता है। उत्तरी ध्रुव को हिमवान पर्वत और हिमालय पर्वत को विजयार्ध पर्वत मान सकते हैं। जैन मत के अनुसार जम्बूद्वीप में ताराओ की संख्या 133950×10^{14} है और विज्ञान के अनुसार आकाशगंगा मे लगभग एक खरब (10^{11}) तारे हैं। शायद जम्बूद्वीप के ताराओं में ग्रह, उपग्रह, पुच्छलतारें (और संभवतया बड़े उल्का पिण्ड भी) शामिल होंगे। यदि इन सबकी गणना की जाय तो दोनों संख्याओं में अन्तर कम हो जाता है। जैन दर्शन मे सुमेरू पर्वत की जो कल्पना है उसका अभिप्राय शायद यही है कि जम्बूद्वीप के केन्द्र में द्रव्यमान का बहुत बड़ा भाग केन्द्रित है। यही स्थिति आकाशगंगा में भी पाई जाती है। वैज्ञानिकों को आशंका है कि आकाशगंगा के केन्द्र में श्याम विवर होने के कारण वहाँ द्रव्यमान का घनत्व बढ़ा हुआ है। जैन दर्शन में भी श्यामविवर (ब्लेक होल) का वर्णन पाया जाता है। हम भरत आदि क्षेत्रो की पहचान जैसे भी करें यह तो सिद्ध होता ही है कि आकाशगंगा में सर्वत्र जीवन फल-फूल रहा है। कई कर्मभूमियाँ हैं और कई भोग भूमियाँ है जहाँ हमसे श्रेष्ठ जीव भी है और हमसे निकृष्ट जीव भी है।

जम्बूद्वीप और मध्य लोक संबंधी जो परिकल्पना यहाँ प्रस्तुत की गई है वह विद्वानों को एकाएक स्वीकार नहीं भी हो क्योंकि इसमें शास्त्रों में दिए गये वर्णन के अनुसार बहुत से प्रश्न अनुतरित रहते हैं। परन्तु मेरा मानना है कि यह सोच की एक नई दिशा है और इस दिशा में आगे बढ़ने पर हम जैन खगोल और वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के बीच एक सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए जैन शास्त्रों में दिए गए कई प्रकार के संख्यात्मक और अन्य विवरण का परित्याग आवश्यक हो सकता है। इस दिशा में और भी चिंतन अपेक्षित है।

6.3.2 लोक का आकार

लोक का आकार है या नहीं और यदि है तो कैसा है इस निर्णय पर विज्ञान अभी नहीं पहुँचा है। कुछ वैज्ञानिक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को असीम मानते हैं और ज्ञात ब्रह्माण्ड को ससीम मानते हैं। ससीम ब्रह्माण्ड का कोई आकार वैज्ञानिकों ने प्रस्तुत नहीं किया है। आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार पुद्गल और ऊर्जा स्पेस - समय आयाम मे विकृति उत्पन्न करते हैं और उसमें वक्रता आ जाती है (देंखे चित्र 2.1)। आइन्स्टीन ने सिद्ध किया कि गुरूत्वाकर्षण बल स्पेस-समय की इस वक्रता के कारण होता है। जैन मत इससे थोड़ा भिन्न है। आकर्षण पुद्गल का स्वभाव है, कोई बाह्य क्रिया पुद्गल में स्वभाव का आरोपण नहीं कर सकती। पुद्गल में आकर्षण गुण होने के कारण स्पेस-समय के वक्रता क्षेत्र में उसका प्रवेग (Acceleration) होता है। यदि पुद्गल में आकर्षण गुण नहीं है तो उसमें प्रवेग भी नहीं होगा। इस दृष्टि से अष्टस्पर्शी पुद्गल त्वरित हो सकते हैं, द्विस्पर्शी और चतु:स्पर्शी नहीं क्योंकि अष्टस्पर्शी पुद्गल में ही द्रव्यमान और गुरूत्वाकर्षण गुण होता है। इस पुद्गल से स्पेस-समय में वक्रता जैन दर्शन द्वारा मान्य है।

जैन दर्शन के अनुसार आकाश एक अखण्ड अमूर्त द्रव्य है और यह अनंत है। पुद्गल की उपस्थिति में आकाश की पर्याय स्पेस के बारे में अध्याय 2 में विवेचना की गई थी। अब कल्पना करें एक भ्रमणशील पुद्गल पिण्ड, जैसे तारे, ग्रह, उपग्रह आदि, जो अपनी धूरी पर परिभ्रमण कर रहे है और साथ ही साथ किसी केन्द्र की परिक्रमा भी कर रहे हैं वे किस प्रकार स्पेस को विकृत करेंगे (ब्रह्माण्ड में व्याप्त ऊर्जा का प्रभाव भी पुद्गल के प्रभाव के समान ही होगा)। ये सब पिण्ड नीहारिका के सदस्य है जिसमें ऐसे अरबों सदस्य हैं और नीहारिका स्वयं किसी और केन्द्र की

परिक्रमा कर रही है, तो वक्रता कैसी होगी। इस प्रकार की अरबों नीहारिकाएं जो सभी अपने-अपने तरीके से परिक्रमा कर रही हैं किस प्रकार स्पेस को वक्र कर देंगी। यदि ये सब नीहारिकाएं एक प्लेन में हैं तो जो चित्र उभर कर आता है उसमें ऐसा लगता है कि स्पेस पूर्ण रूप से वक्र होकर लगभग वृताकार हो जायगी।

ऊर्ध्वलोक और अधोलोक, मध्यलोक से भिन्न हैं। इन लोकों में रहने वाले जीव वैक्रिय शरीर धारी है और उनके निवास के लिए स्थूल पृथ्वी की आवश्यकता नहीं होती। अत: जो पृथ्वियां स्वर्गलोक और अधोलोक में है वे हमारी पृथ्वी से भिन्न होनी चाहिए। ऐसा माना जा सकता है कि ये पृथ्वियां कम घनत्व वाली तरल सी अवस्था में है जिन्हें विमान कहा गया है। मध्यलोक में पदार्थ का घनत्व अधिक होने पर त्रस नाड़ी 1 राजू विस्तार प्रमाण है और अधोलोक तथा उर्ध्व लोक में पदार्थ का घनत्व कम होने पर भी त्रसनाड़ी का प्रमाण 1 राजू विस्तार माना गया है। इस प्रकार त्रसनाड़ी जो अधोलोक से उर्ध्व लोक तक 14 राजू है सभी जगह 1 राजू विस्तार प्रमाण है। इस त्रसनाड़ी में स्थूल जीव, सूक्ष्म जीव, सूक्ष्म पुद्गल और बादर पुद्गल पाए जाते हैं।

त्रस नाड़ी का आयतन 11-14 घन राजू है और सम्पूर्ण लोक का आयतन 343 घन राजू है। त्रस नाड़ी से बाहर लोक के शेष भाग में केवल सूक्ष्म पदार्थ (ऊर्जा) ओर सूक्ष्म जीव हैं। चूंकि सभी प्रकार की वर्गणाएं लोक में व्याप्त है अत: द्विस्पर्शी, चतु:स्पर्शी और अष्टस्पर्शी पुद्गल सूक्ष्म अवस्था में इस शेष क्षेत्र में अवस्थित हैं।

आकाश एक अखण्ड अनंत द्रव्य है। उसके एक भाग में लोक का व्यवहार हो रहा है और वक्रता के कारण उस भाग में तारतम्यता खण्डित हो गई है। परन्तु सम्पूर्ण आकाश में इसका प्रभाव नहीं होता है। आकाश में लोक को वेष्टित करते हुए कुछ सलवटें पड़ जाती हैं जो लोक प्रभावित क्षेत्र को शेष आकाश से पृथक करती हैं, इन्हें वातवलय कहा गया है। ये वातवलय अखण्ड तथा अनन्त आकाश और लोक के बीच विभाजन रेखा हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य जो अमूर्तिक हैं वे भी इस विभाजन रेखा को पार नहीं करते। इस प्रकार धर्म और अधर्म लोक में ही व्याप्त हैं, अलोक में नहीं। जीव और पुद्गल की गति और अवस्थिति क्रमश: धर्म और अधर्म की प्रेरणा से होती है और इसलिए कोई जीव या पुद्गल अलोक में नहीं जा सकता। अलोक अनंत है, उसमें समय और दिशा भी नहीं है।

उपरोक्त परिदृश्य से यह स्पष्ट है कि सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त का ज्ञान भगवान महावीर को था। इस ज्ञान के बिना वे लोक का आकार निश्चित नहीं कर सकते थे। इस प्रकार आइन्स्टीन ने सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त की केवल गणितीय खोज की, मूल सिद्धान्त की नहीं। फिर भी आइन्स्टीन के लिए यह खोज अति सराहनीय है क्योंकि वे महावीर की तरह केवल ज्ञानी नहीं थे।

एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न है कि विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड तो तीव्रतर गति से फैल रहा है, एक स्थायी लोक की कल्पना कैसे सम्भव है ? जैन दर्शन के दृष्टिकोण से निम्न कारणों के आधार पर विश्व-आकाश का विस्तार होना सर्वथा असम्भव है ;

1. आकाश 'अगतिशील' द्रव्य है।

2. आकाश एक अखण्ड द्रव्य है तथा क्षेत्र की दृष्टि से अनंत और असीम है। अर्थात् ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ आकाश न हो । ऐसी स्थिति में आकाश का विस्तार कैसे और कहां हो सकता है ?

3. यदि आकाश को सान्त भी मान लिया जाय तो भी नाना प्रश्न खड़े हो जाते हैं। जैसे-सान्त आकाश के परे क्या है ? यदि 'कुछ' है, तो वह आकाश से किस प्रकार भिन्न है और वह कुछ' विस्तारमान है या स्थिर ? यदि वह भी विस्तारमान है, तो 'किसमें' विस्तृत हो रहा है ? यदि उससे भी परे कोई तत्व है और उससे परे अन्य कोई तत्व, तो इस प्रकार अनवस्था दोष आ जायेगा। यदि वह 'कुछ' स्थिर है, तो आकाश को स्थिर मानने में क्या आपत्ति है ? दूसरे पक्ष में यदि सान्त आकाश से परे 'कुछ' नहीं है तो आकाश का विस्तार किसमें होगा? क्योंकि 'कुछ नहीं' में आकाश का विस्तार हो नहीं सकता। इस प्रकार से सामान्य तर्क पर आधारित प्रश्न भी सुलझ नहीं पाते हैं।

जैन दृष्टि से लगता है कि अभी तक वैज्ञानिकों को मध्यलोक का एक भाग ही ज्ञात है। सम्भव है कि प्रोफेसर स्टुहार्ट के सिद्धान्त के अनुरूप मध्यलोक का एक भाग एक औसत स्थिति के अन्दर-बाहर सिकुड़ता फैलता रहता है। क्योंकि ब्रह्माण्ड में गति और अवस्थिति दोनों ही गुण वाले पदार्थ विद्यमान है। अभी फैलाव की स्थिति में है, बाद मे वह पुनः सिकुड़ कर अपनी पूर्व स्थिति में भी आ सकता है। यह एक ओसीलेटिंग व्यवस्था हो सकती है जिसमें नीहारिकाएं आगे-पीछे होती

रहती है, विनष्ट नहीं होती। चूंकि अलोक में धर्म, अधर्म द्रव्य नहीं है इसलिए कोई भी पदार्थ वातवलय को पार नहीं कर सकता।

पूर्व में आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त के सरलीकृत सूत्रों के हल से तीन प्रकार की निष्पतियां प्राप्त की गई थी। आकाश की वक्रता शून्य होने पर ब्रह्माण्ड सपाट और अनंत है। वक्रता शून्य से अधिक होने पर ब्रह्माण्ड गोलाकार है और वक्रता शून्य से कम होने पर वह डमरू नुमा है जो दोनों मुँह पर खुला है। ये निष्पतियां केवल पदार्थ को ब्रह्माण्ड में उपस्थित मानने पर प्राप्त हुई थी ऊर्जा की उपस्थिति भी मानने पर भिन्न परिणाम प्राप्त होंगे। व्यवहार में स्थितियाँ मिश्रित होती हैं और सभी प्रकार की अवस्थाओं की संभावना एक साथ रहती हैं। अत: ब्रह्माण्ड में उपरोक्त सभी हल एक साथ देखने को मिलेंगे। जैन दर्शन में त्रिशराव संपुटाकार लोक का जो चित्र है वह इसी प्रकार का है। इस रचना में अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक का एक भाग डमरूनुमा है। ऊर्ध्वलोक का शेष भाग गोलाकार जैसा। लोक के दोनों छोर पर धरातल सपाट हैं जो लोक को सीमित आकार प्रदान करते हैं।

अब हम मोटे तौर पर जैन लोक का वैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत कर सकते हैं। लोक का आकार संभवतया त्रिशराव संपुटाकार है। वक्राकार सतह के कारण अधोलोक का घनफल 196 घनराजू, उर्ध्वलोक का घनफल 147 घनराजू है और सम्पूर्ण लोक का घनफल 343 घनराजू संभव है। मध्य लोक में जम्बूद्वीप आकाश गंगा के रूप में हैं और द्वीप नीहारिकाओं के रूप में हैं। जैन दर्शन के अनुसार विश्व के सब स्थानों में सूर्य-चन्द्र की गति नही होतीं है। पुष्करवर द्वीप के प्रथम अर्धांश तक का सारा क्षेत्र 'समय-क्षेत्र' या अढाई द्वीप कहलाता है। इस समय-क्षेत्र को छोडकर समस्त स्थानों में जहाँ आकाशीय पिण्ड अवस्थित हैं, वहाँ दिन, रात्रि आदि कालमान नहीं होते । इसलिए व्यवहारिक काल केवल 'समय-क्षेत्र' तक सीमित है। अढाई द्वीप से बाहर के ज्योतिष्क देव स्थिर हैं। हम जानते है कि दिन और रात्रि ग्रह आदि पिण्डों के अपनी धूरी पर परिभ्रमण के कारण होते हैं। अत: जैन दर्शन के अनुसार हमारी आकाश गंगा , एन्ड्रोमिडा नीहारिका और इसके समीप वाली नीहारिका के प्रथम आधे भाग में स्थित तारों के ग्रह अपनी धूरी पर परिभम्रण करते है। शेष सभी नीहारिकाओं में तारे और ग्रह तो हैं पर वे ग्रह हमारे चन्द्रमा की भांति अपनी धूरी पर

भ्रमण नहीं करते । मनुष्य का वास अढाई द्वीप तक अर्थात समय-क्षेत्र में ही है। अढाई द्वीप से परे द्वीपों यानि अन्य नीहारिकाओं पर तिर्यंच और स्थावर जीवों का वास माना गया है। इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ दिन रात्रि, आदि कालमान नहीं है वहाँ तिर्यंच तो जीवित रह सकते हैं परन्तु मनुष्य के लिए ऐसा स्थान अनुकूल नहीं है।

मध्य लोक में पुद्गल पदार्थ का औसत घनत्व लोक में सबसे अधिक है और इसलिए यहाँ लोक का विस्तार सबसे कम 1 राजू है। अधोलोक और उर्ध्वलोक में लोक का विस्तार अधिक होने से वहाँ स्थित त्रसनाडी में पुदगल पदार्थ का औसत घनत्व कम होना चाहिए। उर्ध्व लोक के बारे में कहा गया है कि ऊपर-ऊपर के देव गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा हीन-हीन हैं। क्या इसका अभिप्राय यह भी है कि ऊपर-ऊपर के स्वर्ग लोकों में औसत घनत्व भी हीन हीन है? यह सभंव है। अत: संभवतया मध्यलोक से जैसे-जैसे उर्ध्व या अधो दिशा में जाते है तो त्रस नाडी में औसत धनत्व कम होता जाता है। इस दृष्टि से उर्ध्व लोक के सिद्ध क्षेत्र में और अधोलोक के नित्यनिगोद क्षेत्र में पदार्थ का औसत धनत्व त्रस नाडी में सबसे कम होगा । उर्ध्व लोक और अधोलोक में पृथ्वियाँ किस प्रकार की है? औसत धनत्व कम होने से सम्भव है वहाँ की पृथ्वियाँ मध्यलोक की पृथ्वियों से भिन्न हों। उर्ध्व लोक और अधोलोक में वैक्रिय शरीर धारी जीव रहते हैं और इनके लिए ठोस भूमि आवश्यक नहीं है।

पूर्व में कहा गया है कि ऋणात्मक कार्मण शरीर वाला जीव उर्ध्व लोक तक गमन करता है और धनात्मक कार्मण शरीर वाला जीव अधोलोक में ही प्रवेश कर सकता है। यह संभवतया उर्ध्व लोक और अधोलोक की विशेषताओं के कारण होता है। कथंचित उर्ध्व लोक में स्वर्ग की पुद्गल संरचना ऐसी है कि वहाँ ऋणात्मक कार्मण शरीर वाला जीव ही प्रवेश कर सकता है और अधोलोक की पृथ्वियाँ ऐसी हैं कि वहाँ धनात्मक कार्मण शरीर वाला जीव ही प्रवेश कर सकता है। इस प्रकार उर्ध्व लोक और अधोलोक की रचना में प्रयुक्त पुद्गल भिन्न प्रकार के होने चाहिए।

त्रस नाडी से बाहर केवल सूक्ष्म निगोद जीव ही वास करते है। यह क्षेत्र बहुत बडा है इसका घनफल 329 घनराजू के लगभग है। त्रस जीव के अभाव मे यह माना जा सकता है कि इस क्षेत्र में पुद्गल भी सूक्ष्म रूप में अर्थात ऊर्जा रूप में विद्यमान है। सूक्ष्म निगोद जीवों के औदारिक , कार्मण और तेजस तीनों ही शरीरों

को सूक्ष्म निगोद वर्गणा से बना माना गया है। वर्गणाएं समस्त लोक में व्याप्त हैं और इनकी उपस्थिति में सूक्ष्म निगोद जीवों का जीवन सम्भव है। इन जीवों को ऑक्सीजन की भी आवश्यकता नहीं होती । सूक्ष्म निगोद जीवों के बारे में बहुत अधिक जानकारी नहीं है।

आइन्स्टीन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त की एक परिणति यह है कि सभी संदर्भ फ्रेम में प्रकाश की गति समान रहती है और किसी भी वस्तु की गति प्रकाश की गति से अधिक नहीं हो सकती। यह सिद्धान्त यदि सही है तो केवल फोटोन जैसे अष्टस्पर्शी पुद्गल पर ही लागू होगा। जैन मत के अनुसार द्विस्पर्शी परमाणु पुद्गल की उत्कृष्ट गति अनंत मानी गई है। इसलिए यह अपेक्षा की जाती है कि जैसे-जैसे पुद्गल के स्पर्श कम होंगे उसकी गति सीमा बढ़ती जायगी। चतु:स्पर्शी पुद्गल की गति सीमा तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकण्ड से अधिक होगी और द्विस्पर्शी पुद्गल की गति सीमा उससे भी और अधिक होगी। त्रस जीवों का सूक्ष्म शरीर चतु:स्पर्शी स्कंधों से बना होता है। इस प्रकार त्रस जीवों के सूक्ष्म शरीर में द्रव्यमान और गुरुत्वाकर्षण नहीं होता और अन्तराल गति में यह शरीर एक से चार समय में जम्बूद्वीप से अन्तिम स्वर्ग तक या अन्तिम नरक तक यात्रा कर सकता है।

7. जीव की उत्पत्ति और विकास

7.1 जीव की उत्पत्ति
- 7.1.1 अजीव से जीव की उत्पत्ति
- 7.1.2 पानस्परमिया सिद्धान्त
- 7.1.3 डी.एन.ए. डिजाईन और जीव की उत्पत्ति
- 7.1.4 जैन दर्शन में जीवन

7.2 जीव विकास
- 7.2.1 जीव विकास : रहस्यमयी प्रकृति
- 7.2.2 डारविन का विकासवाद और मानवीय सभ्यता
- 7.2.3 रशियन डी.एन.ए. खोज
- 7.2.4 होलोग्राफिक विश्व

7.3 जैन दर्शन में चेतना का विकास

7.4. नाम कर्म

7.5 गुण स्थान

7.6 आत्म विकास

7.7 जीव विकास और मस्तिष्क विकास

7.8 जीव विकास : एक समीक्षा
- 7.8.1 जन्म और गर्भ काल
- 7.8.2 जीव का ऊर्ध्वारोहण

7.1 जीव की उत्पत्ति

7.1.1 अजीव से जीव की उत्पत्ति

कुछ वैज्ञानिक जीव की उत्पत्ति अजीव तत्व से मानते हैं। इस आधुनिक परिभाषा में यह माना जाता है कि कुछ प्राथमिक रसायनों से जीव की उत्पत्ति ऐसी परिस्थिति में संभव है जो पृथ्वी के जन्म के प्रारंभिक काल में पाई जाती थी। ये प्राथमिक अजीव तत्व, जिनसे जीव की उत्पत्ति हो सकती है, हैं - मिथेन गैस, अमोनिया गैस, जल, हाइड्रोजन सल्फाइड गैस, कार्बन डाई ऑक्साइड और फोस्फेट। जीव वैज्ञानिक जो देशमंड बरनॉल के अनुसार जीव उत्पत्ति के इस क्रम में चरणों की पहचान इस प्रकार की जा सकती है।

प्रथम चरण : जैविक मोनोमर अणुओं की रचना

द्वितीय चरण : जैविक पॉलीमर अणुओं का बनना

तृतीय चरण : पॉलीमर अणुओं से कोशिका का विकास।

1953 में वैज्ञानिक मिलर और यूरे ने एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया। उन्होंने जल, मिथेन, अमोनिया और हाइड्रोजन को एक पात्र में भरा। उन्होंने उसमे ऑक्सीजन नहीं भरी क्योंकि यह पृथ्वी के प्रारंभिक काल में अनुपस्थित थी। इस मिश्रण को निरंतर उबलती हुई स्थिति में रखा गया और उत्पन्न वाष्प के द्रवीकरण की व्यवस्था की गई। सभी गैसें एक चेम्बर से होकर गुजरती थी जिसमें दो इलेक्ट्राड के बीच विद्युत स्पार्क पैदा किया गया। एक सप्ताह के बाद पाया गया कि पात्र में बहुत से अमीनो एसिड और कुछ अन्य अणु बन गये हैं। इस प्रयोग के पश्चात् होने वाले ऐसे कई अन्य प्रयोगों में पाया गया कि जीवन के लिए आवश्यक सभी प्रकार के छोटे अणु इस विधि से बनाए जा सकते हैं। वस्तुत: इन प्रयोगों से निम्न अणु बन जाते हैं।

(1) 20 अमिनो अम्ल, जो प्रोटीन संरचना में काम आते हैं, में से 17 अमिनो अम्ल।

(2) सभी प्यूरीनस और पिरीमिडीनस जो न्यूक्लिक अम्ल बनाते हैं।

इसके बावजूद यह देखा गया कि इस विधि से जीवन के लिए आवश्यक रिबोज की संरचना और इससे न्यूक्लिक योसाइड का बनना बहुत ही कठिन है। अत: यह प्रश्न अनुतरित ही रहता है कि पॉलीमर, जो जीवन के आधार है, कैसे अजीव तत्वों से बन सकते हैं।

उपरोक्त प्रयोगों में बनने वाले बहुत से यौगिक अंतरिक्ष में भी पाये गये हैं। यह सिद्ध करता है कि ये प्रयोग उसी प्रकार की परिस्थिति उपस्थित करते हैं जो पृथ्वी के प्रारंभिक काल मे पाई जाती थी।

सभी चयापचय की विक्रिया एनजाइम्स पर निर्भर करती है जो प्रोटीन से बनते हैं। प्रोटीन का निर्माण डी.एन.ए. में अंकित सूचना से होता है तथा डी.एन.ए. और आर.एन.ए. के बनने में प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि

- न्यूक्लिक एसिड के बिना प्रोटीन नहीं बन सकते।
- प्रोटीन के बिना न्यूक्लिक एसिड नहीं बन सकते।

इस मुर्गी और अंडे वाली समस्या का कुछ समाधान उस खोज से मिलता है कि कुछ आर.एन.ए. अणु एनजाइम की तरह व्यवहार करते हैं। रिबोजाइम इस प्रकार का एक आर.एन.ए. अणु है जिसमें जीवन निर्माण के दोनो गुण पाये जाते है यथा

- सूचना का संग्रहण
- एक केटेलिस्ट का कार्य

यद्यपि कोई भी रिबोजाइम अणु प्रकृति में स्वतंत्र रूप से अभी तक नहीं पाया गया है परन्तु प्रयोगशाला में रिबोजाइम का निर्माण सम्भव हो सका है। अतः यह सम्भावना है कि जीवन का प्रारंभ सबसे पहले आर.एन.ए. से हुआ और उसके बाद प्रोटीन ने चयापचय का काम करना शुरू किया और डी.एन.ए. ने सूचना संग्रहण का काम प्रारंभ किया। इस प्रकार आर.एन.ए. से जीवन का प्रारम्भ हुआ, इसके कई और प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं।

अंतरिक्ष खोजों द्वारा अंतरिक्ष में कई प्रकार के आरगेनिक अणु पाये गये हैं जिसमे प्रमुख है मिथेन, मिथॉनल, फारमेल्डीहाइड, साइनो एसिटिलीन, पॉलीसाइक्लिक एरोमेटिक हाइड्रोकारबन, आदि। इसी प्रकार कुछ इनआरगेनिक तत्व भी पाये गये हैं जैसे-कारबनडाईऑक्साईड, कारबनमोनोऑक्साइड, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, और हाइड्रोजन साइनाइड। अंतरिक्ष से इन आरगेनिक अणुओं की बरसात पृथ्वी पर निरन्तर होती रहती है। एक अनुमान के अनुसार एक दिन में 30 टन ऐसे अणु पृथ्वी पर गिरते हैं।

यह ज्ञात है कि इन सरल आरगेनिक अणुओं से स्वतः पुनर्निर्माण में समर्थ जीव के बनने के बीच अनेक चरण होते हैं। परन्तु एक ऐसे वातावरण में जिसमें पहले से कोई जीव विद्यमान नहीं है सम्भव है कि इन अणुओं ने इकट्ठे होकर ऐसी परिस्थिति का निर्माण किया हो जिसमें जीव की रसायनिक उत्पत्ति हो सके। यह प्रक्रिया सूप सिद्धान्त के नाम से जानी जाती है। हालांकि वैज्ञानिक ब्रुक्स और शॉ

(1973) के अनुसार ऐसे कोई भूगर्भीय प्रमाण नहीं है कि पृथ्वी पर इस प्रकार का सूप कभी मौजूद था। वर्ष 2004 में कुछ वैज्ञानिकों ने अवश्य ही दूर अंतरिक्ष में पोली साइक्लिक ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन की खोज की जो अब तक के खोजे गये हाइड्रोकारबन में सबसे जटिल है।

जटिल पॉलीमर बनने के एक और प्रमाण रूप में 1980 में एक आयरन - सल्फाइड सिद्धान्त की प्रस्तावना की गई। इस सिद्धान्त के संशोधित स्वरूप में वर्ष 2002 में विलियम मार्टिन और माईकल रसेल ने बताया कि सम्भव है कि सर्वप्रथम जीव की उत्पत्ति समुद्रतल की गहराई में उपस्थित काले धुँआ स्रोत में हुई हो।

फिर भी यह प्रश्न अनुतरित ही है कि कैसे एक सरल आरगेनिक अणु से जटिल जैविक कोशिका बनती है। इस पथ में होने वाली लम्बी प्रक्रिया के लिए बहुत से विचार व्यक्त किए गये हैं। इनमें से कुछ मानते हैं कि पहले जीन बने और कुछ मानते हैं कि पहले प्रोटीन बने। इन दिनों ऐसे भी प्रस्ताव आये हैं जिसमें इन दो मुख्य विचारधाराओं का मिश्रण है।

जीव उत्पत्ति के लिए और भी अनेक प्रस्ताव आये हैं। बुलबुला सिद्धान्त एक ऐसा ही प्रस्ताव है। इस प्रस्ताव में यह माना गया है कि समुद्री सतह पर बनने वाले बुलबुलों मे एक प्रकार का तेलीय पदार्थ होता है और ये बुलबले लहरों द्वारा किनारे पहुँच जाते हैं। इन बुलबुलों के फटने पर यह तेलीय पदार्थ बाहर आ जाता है। जब यह तेलीय पदार्थ काफी माला में इकट्ठा हो जाता है तो उससे प्रोकेरियोट्स, यूकेरियोट्स और बहुकोशिका जीव की उत्पत्ति हो सकती है।

ग्लासगो विश्वविद्यालय की डॉ. ए. ग्राहम एवं कैरम स्मिथ ने 1985 में मिट्टी से जीव की उत्पत्ति का विचार रखा। उनके अनुसार मिट्टी में सिलीकन क्रिस्टल मिश्रण के रूप में मौजूद हैं। इन आरगेनिक पदार्थ से जटिल आरगेनिक अणुओं का निर्माण हो सकता है।

वैज्ञानिक थॉमस गोल्ड ने नब्बे के दशक मे उष्ण बायोस्पीयर का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनके अनुसार जीव की सर्वप्रथम उत्पत्ति पृथ्वीतल पर नहीं बल्कि पृथ्वीतल से कई किलोमीटर नीचे गहराई में हुई। यह अब ज्ञात है कि पृथ्वीतल से पांच किलोमीटर नीचे तक आर्किया के रूप में सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं जिनकी प्रथम उत्पत्ति जीवाणु के साथ-साथ या उससे भी पूर्व मानी गई है। जीवाणु पृथ्वी तल और समुद्र में ही पाये जाते हैं।

एक और विचार के अनुसार यह माना गया है कि जीव की उत्पत्ति सर्वप्रथम पृथ्वी पर नहीं अंतरिक्ष में हुई। इस सिद्धान्त के अनुसार जटिल आरगेनिक अणु रूप में जीव पुच्छल तारों द्वारा पृथ्वी पर लाए गये या जीव पहले मंगल ग्रह पर उत्पन्न हुआ और वह पृथ्वी पर लाया गया। इन विचारों के पक्ष मे कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

7.1.2 पानस्परमिया सिद्धान्त

एक अन्य विचार जिसे पानस्परमिया कहते हैं, के अनुसार यह माना गया है कि जीव ब्रह्माण्ड मे सब जगह उपस्थित है और इन्हीं जीवों के पृथ्वी पर पहुँचने पर वहाँ जीवन का प्रारम्भ हुआ। ये विचार सर फ्रेड हायल और चन्द्र विक्रमसिंघे द्वारा प्रस्तुत किए गये। उनके अनुसर ऐसे जीव अंतरिक्ष से पृथ्वी पर बराबर आते रहते हैं और इन्हीं के कारण पृथ्वी पर संक्रामक रोग और नई - नई प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती रहती हैं तथा नए-नए प्रकार के जीव उत्पन्न होते रहते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस सिद्धान्त की पुष्टि तब तक नहीं हो सकती जब तक हमारी आकाशगंगा में ही जीव की खोज नहीं हो जाती या हमारा किसी अन्य सभ्यता से संपर्क नहीं हो जाता है। ऐसा होने पर ही 'पानस्परमिया' सिद्धान्त को प्रमाणिक माना जा सकता है। परन्तु परिस्थितियां इस सिद्धान्त की पुष्टि अवश्य करती हैं। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि एक प्रकार के जीवाणु अति विपरीत परिस्थिति में भी लम्बे समय तक जीवित रह सकते हैं जो अंतरिक्ष यात्रा में उपस्थित होती है। ऐसी कठिन लम्बी यात्रा में ये जीवाणु सम्भवतया प्रसुप्त अवस्था में रहते हैं। वैज्ञानिकों ने ऐसे जीवाणु पाये हैं जो 100 डिग्री से. से अधिक के तापमान पर जीवित रहते हैं, कुछ जीवाणु तीव्र क्षारिक वातावरण मे रह सकते हैं और कुछ समुद्र में 11 किलोमीटर की गहराई में ज्वालामुखी मुख पर रहते हैं। कुछ जीवाणु ध्रुवी बर्फ में एक मील नीचे अर्द्ध प्रसुप्त अवस्था में पाये गये हैं। ऐसे जीवाणु जिन्हें अपनी ऊर्जा उत्पादन के लिए सूर्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती चट्टानों में और पृथ्वी तल के नीचे झीलो में पाए गये हैं। कुछ जीवाणुओं पर उच्च शक्ति रेडियो विकिरण का भी प्रभाव नहीं होता है।

वैज्ञानिक नारलीकर और उनके साथियों ने हैदराबाद के उपर 41 किलोमीटर ऊँचाई पर भी कुछ जीवाणुओं को जीवित पाया। इस प्रकार 'पानस्परमिया' सिद्धान्त की आंशिक पुष्टि तो हो ही जाती है। या तो सूक्ष्म जीव अंतरिक्ष से पृथ्वी पर आते हैं अथवा ये सूक्ष्म जीव हमारी पृथ्वी के वातावरण को इस प्रकार संक्रमित करते हैं कि जीवन का प्रारम्भ हो सके।

'पानस्परमिया' सिद्धान्त का सबसे बड़ा विरोध इस बात को लेकर है कि जीवन के लिए कारबन, नाइट्रोजन और ऑक्सीजन जैसे भारी तत्वों में रसायनिक क्रिया के लिए उचित घनत्व और तापमान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की परिस्थितियाँ अंतरिक्ष में सामान्य नहीं हैं अत: अंतरिक्ष में सर्वत्र जीवन उपलब्ध नहीं हो सकता। वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रकार की परिस्थितियां अंत: गृही वातावरण मे तो उपलब्ध हैं परन्तु अंत: तारा आकाश में नहीं। परन्तु यह तर्क इस बात का विरोध नहीं करता कि अंतरिक्ष में जीवाणु प्रसुप्त अवस्था में रह सकते हैं।

'पानस्परिमिया' सिद्धान्त के पक्ष में सोचने वाले अन्य वैज्ञानिकों का विचार है कि इनआरगेनिक पदार्थ से जीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती और इसलिए जब से इस ब्रह्माण्ड में पदार्थ मौजूद है तब से जीवन भी रहा है। यह विचार जैन सिद्धान्त से सबसे निकट है।

7.1.3 डी.एन.ए., डिजाइन और जीव की उत्पत्ति (चार्ल्स बी. थैक्सटन)

डी.एन.ए. कोड एक जिनेटिक भाषा है जिसके द्वारा कोशिका को सूचना दी जाती है। कोशिका बहुत ही जटिल इकाई है जिसकी सम्पूर्ण क्रिया के नियंत्रण के लिए अनेकों डी.एन.ए. निर्देशों की आवश्यकता होती है। एक अति सूक्ष्म और सरल तथा एक कोशीय जीवाणु ई-कोलाई के डी.एन.ए. में भी बहुत-बहुत सूचना होती है। यह सूचना विश्व के सबसे बड़े पुस्तकालय में रखी हुई समस्त ग्रंथो की सूचना से भी अधिक है। डी.एन.ए. बहुत ही जटिल परंतु बहुत सही सूचना वाला अणुकुल है। यदि इसके अक्षरों के क्रम में कोई गलती हो जाती है तो यह किसी संदेश में टाइपिंग गलती के समान है। ऐसा संदेश जब कोशिका को दिया जाता है तो वह गड़बड़ पैदा करता है, इसको म्यूटेशन कहते हैं।

एक डी.एन.ए. कोड जीवन का डिजाइन मानचित्र है। जीव की उत्पत्ति, इस कोड की उत्पत्ति है। इस कोड में जीव की विशिष्ट जटिलता निहित है। डीएनए के न्यूक्लोटाइड्स का क्रम या प्रोटीन में अमिनो अम्ल, भाषा के अक्षरों के समान हैं। ई-कोलाई डी.एन.ए. के न्यूक्लोटाईड क्रम और न्यूक्लोटाइड के एक रेन्डम क्रम मे कोई प्रत्यक्ष अंतर नहीं है फिर भी ई-कालाई के डी.एन.ए. में इन अक्षरों का क्रम बहुत विशिष्ट अर्थ रखता है। केवल इसी क्रम में जीव की जैविक क्रिया सम्पन्न करने की क्षमता है।

सूचना सिद्धान्त (Information Theory) के आधार पर यह कहा जाता है कि कोई भी अल्प सूचना वाली व्यवस्था प्राकृतिक तरीके से बन सकती है।

परन्तु ऐसा कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है कि सूचना बहुल वाली व्यवस्था भी प्राकृतिक तरीके से बन सकती है। बल्कि, सभी ज्ञात साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि जटिल सूचना वाली व्यवस्था के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है।

डी.एन.ए. और प्रोटीन संरचना बहुल सूचना वाली है। यह सूचना मानव बुद्धि द्वारा रचित अन्य रचना जैसे कविता या कम्प्यूटर प्रोग्राम जैसी जटिल है। इसलिए हम कह सकते हैं कि अणुकुल स्तर की रचना भी 'ज्ञान' के माध्यम से हुई है। ऐसे प्रयास जिसमें बहुल सूचना वाले अणुकुल अपने आप या किसी प्राकृतिक प्रक्रिया से बन गए हो अभी तक असफल ही रहे हैं। मोलीक्यूलर बायोलॉजी और सूचना सिद्धान्त से मिलने वाली नई जानकारी के बल पर हम अब कह सकते हैं कि जीव की उत्पत्ति का आधार ज्ञान है। इस 'ज्ञान ' के आधार को केवल विज्ञान से नहीं जाना जा सकता। इस विश्व में सबसे सरल प्राणी, जिसमें अपना डी.एन.ए. है, भी अपनी विशिष्ट जटिलता के लिए पहचाने जाते हैं। अत: स्वयं जीव इस बात का प्रमाण है कि उसकी उत्पत्ति के समय कोई विशेष ज्ञान उपलब्ध था।

हमने उपर डी.एन.ए. कोड को एक सूचना के रूप में परिभाषित किया है। ऐसा मानना कि डी.एन.ए. पदार्थ की शक्ति से बना है यह स्वीकार करने के बराबर होगा कि सूचना पदार्थ की शक्ति से बन सकती है। परन्तु हम जानते है कि सूचना का भौतिक आधार (संप्रेषण विधि) संप्रेषित की जाने वाली सूचना से बिल्कुल भिन्न है। इस भौतिक आधार का सूचना की उत्पत्ति से कोई संबंध नहीं है। इसी प्रकार जिनेटिक कोड में रहने वाली सूचना का डी.एन.ए. की रसायनिक संरचना से कोई संबंध नहीं है। बेस युग्मों के क्रम द्वारा दी जाने वाली सूचना का बेस युग्मों से कोई संबंध नहीं है। जिन रसायनों द्वारा कोशिका को सूचना दी जाती है उन रसायनों में कोई सूचना नहीं है। ये तथ्य उन सब सिद्धान्तों को तहस नहस कर देते हैं जो यह मानते हैं कि जीव की उत्पत्ति भौतिक पदार्थ से हुई है। ऐसे कुछ सिद्धान्त मानते हैं कि रसायनों में उपस्थित स्व-व्यवस्था गुणों ने ही सर्वप्रथम बनने वाले डी.एन.ए. को वांछित सूचना प्रदान की।

डारविन ने अपने समय के बहुत से बुद्धिजीवियों को आश्वस्त कर दिया था कि विश्व में डिजाइन (जीव की) केवल ऐसे ही हो जाती है और यह प्राकृतिक कारणों का परिणाम है। परंतु इस स्थिति मे अब नाटकीय परिवर्तन हो गया है हालांकि कुछ ही लोगो ने इसकी महत्ता को स्वीकार किया है। डी.एन.ए. की व्याख्या और जिनेटिक कोड के रहस्य के उद्घाटन ने विश्व में जीव की वास्तविक डिजाइन के सत्य को जानने की नई संभावनाओं को जन्म दिया है।

7.1.4 जैन दर्शन में जीवन

जैन दर्शन के अनुसार जीव की न तो उत्पत्ति ही होती है और न ही विनाश। जीव केवल पर्याय परिवर्तन करता है अर्थात् एक योनि त्याग कर दूसरी योनि में जन्म लेता है। लोक में जीव की कुल संख्या में परिवर्तन नहीं होता। जीव द्रव्य पुद्गल से भिन्न है, जीव चेतन है और अजीव अचेतन। इसलिए अजीव से जीव नहीं बन सकता और जीव से अजीव नहीं बन सकता। जीव की योनि पौद्गलिक है अत: जीव को शरीर धारण करने के लिए पुद्गल की आवश्यकता होती है। शरीर की अपनी आवश्यकताएं हैं और वैज्ञानिक इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति को जीव की उत्पत्ति मान बेठे हैं।

सूक्ष्म जीव लोक में सर्वत्र विद्यमान है। वे विषम परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं और लोक में एक स्थान से दूसरे स्थान गमन भी करते हैं। वैज्ञानिक इस प्रश्न का हल ढूंढ रहे हैं कि बिग बैंग के बाद पृथ्वी का जब जन्म होता है या प्रलय के बाद पुन: जीवन प्रारम्भ होता है तो जीवन की उत्पत्ति कैसे होती है। जैन दर्शन के अनुसार ऐसी स्थिति में भी स्थावर जीव पृथ्वी पर पाये जाते हैं। ये जीव ही जीवन विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ करने में सक्षम हैं। विकल्प रूप में लोक में अन्य क्षेत्र से भी सूक्ष्म जीव नवीन पृथ्वी पर आ सकते हैं। इन जीवों के शरीर मे जीन विद्यमान होते हैं। ये जीन उपयुक्त परिस्थितियों में प्रोटीन बना सकते हैं। प्रोटीन बनाने के लिए पुद्गल अपने गुण स्वभाव से अमिनो अम्ल उपलब्ध कराते हैं जैसे कि उपर बताया गया है। इस प्रकार कोशिका का निर्माण संभव है और जीवन का प्रारंभ हो जाता है।

स्थावर जीव पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक या अग्निकायिक होते हैं। इसलिए पृथ्वी से, जल से, वायु से या अग्नि से जीवन विकास क्रम प्रारंभ हो सकता है जैसा कि कुछ वैज्ञानिकों ने पाया है। पुच्छल तारे या अन्य माध्यम से भी सूक्ष्म जीव अंतरिक्ष से पृथ्वी पर आ सकते हैं। वैज्ञानिको द्वारा प्रतिपादित सभी संभावनाएं पृथ्वी पर जीवन प्रारंभ का कारण हो सकती है। मुख्य तथ्य यही है कि जीव की उत्पत्ति अजीव से नहीं हो सकती, अजीव केवल योनि निर्माण में प्रयुक्त होता है। जीन विकास के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है और यह ज्ञान आत्मा का गुण है। आत्मा ही अपनी ज्ञान शक्ति से जीन विकास करती है।

7.2 जीव विकास

कुछ वैज्ञानिक मानते है कि जीवाश्म जीव विकास का इतिहास बताते हैं। जीवाश्म जीव संरचना के अभिलेख हैं। जीवाश्म साक्ष्य के आधार पर डायनोसोर और

पक्षियो के बीच संबंध खोजा गया है। दोनों के बीच संबंध बनाने वाले जीव ही होते हैं जैसे आर्किया और जीवाणु। जीन की खोज के बाद जीव विकास के अध्ययन के लिए एक नया आधार मिल गया। वैज्ञानिक अब जीवाश्म, जीव संरचना, जीन विज्ञान, भौगोलिक प्रमाण और पृथ्वी संबंधी अन्य सूचनाओं को समन्वित कर जीव विकास का अध्ययन करते हैं। जिनेटिक अध्ययन से पता चलता है कि मानव डीएनए चिपांजी के डीएनए से 1.6 प्रतिशत, गोरिला के डीएनए से 1.6 प्रतिशत और बबून के डी एन ए सें 6.6 प्रतिशत भिन्न है। जीव शास्त्र में यह माना गया है कि सभी प्राणी एक ही पूर्वज की संतान हैं। जिनेटिक विज्ञान इस प्रतिपादन की पुष्टि करता है। उदाहरण के लिए सभी जीव कोशिकाओं मे जीन न्यूक्लिक अम्ल से बने होते हैं। सभी प्राणी न्यूक्लिक अम्ल से प्रोटीन बनाने में उसी जिनेटिक कोड का प्रयोग करते हैं। इस तथ्य से अधिकांश वैज्ञानिक यह अर्थ लगाते हैं कि सभी प्राणी एक ही पूर्वज की संतान है। परंतु प्राणियों की तीन श्रेणी–आर्किया, जीवाणु और यूकेरियोट्य, के आपसी संबंध के बारे में वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं।

पृथ्वी पर जीव विकास का निम्नलिखित क्रम माना जाता है।

4.6 अरब वर्ष पूर्व	–	पृथ्वी की उत्पत्ति
3 अरब वर्ष पूर्व	–	सूर्य प्रकाश से फोटोसिन्थेसिस विधि से आक्सीजन बनाने की विधि का उद्‌भव/ ऑक्सीजन बाहुल्य वातावरण का विकास.
2 अरब वर्ष पूर्व	–	कोशिकीय आक्सीजन श्वास प्रणाली का विकास
1 अरब वर्ष पूर्व	–	समुद्रों में बहुकोशीय वनस्पति और जीवों का उद्‌भव
50 करोड़ वर्ष पूर्व	–	धरती पर वनस्पति और फंगस का अधिपत्य। अस्थिधारी और दूसरे तिर्यंच का शीघ्रता से विकास और फिर स्थल पर्यावरण व्यवस्था का विकास।

1859 से चार्ल्स डारविन ने जीव विकास के लिए अपना स्वाभाविक वरण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनका सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं कर सका कि एक ही श्रेणी के जीवों के गुणों में वैविध्य क्यों है?

1930 और 1940 के दशकों में ग्रेगर मेन्डिल के जीन आधारित अनुवांशिक सिद्धान्तों ने विकास के लिए आधुनिक विश्लेषण के नये गणितीय तरीके सामने रखे। 1953 में फ्रांसिस क्रिक और जेम्स वाटसन ने डी एन ए की खोज की। इस खोज ने जीव विकास की हमारी समझ को आणविक आधार दिया। 1970 के दशक में मोहो

किमुरा ने आणविक विकास के निष्पक्ष सिद्धान्त को प्रतिपादित किया और इस प्रकार विकास प्रक्रिया में जिनेटिक अंतर के महत्व को मुख्य बना दिया।

जीवाणुओं में समानान्तर जीन प्रवाह सुविज्ञात है परंतु पौधों और पशुओं में भी ऐसा होता है यह अभी 10-12 वर्ष पूर्व ही ज्ञात हुआ। अब यह माना जाता है कि समानान्तर जीन प्रवाह सभी प्राणियों में होता है और इस प्रक्रिया में जीवाणु और विषाणु जीन ट्रांसफर और संग्रहण तथा जीन वृद्धि और मिश्रण के माध्यम बनते हैं।

विकास प्रक्रिया इस बात का विश्वास नहीं दिलाती कि आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी से अधिक बुद्धिमान, जटिल, या अधिक नैतिक होगी। सामान्य भाषा में विकास का अर्थ है कि एक प्रकार के जीव समुदाय से कालांतर में दूसरे प्रकार के जीव की उत्पत्ति होती है। इस अर्थ में जब कभी ऐसे नये जीवाणु बन जाते हैं जिनमे एंटी बॉडी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता होती है तो यह समझा जायगा कि विकास हुआ।

जब विकास एक सिद्धान्त के रूप में लिया जाता है तो यह बताता है कि विकास क्यों और कैसे हुआ। इस सिद्धान्त के तीन मुख्य पक्ष हैं -

1. एक ही पूर्वज से सब जीवों का विकास
2. एक ही श्रेणी के जीवों में नवीन गुणों की स्थापना
3. ऐसी प्रक्रिया जिससे कुछ गुणों का ह्रास हो जाता है और कुछ गुण बने रहते हैं।

विकास प्रक्रिया में दो मुख्य क्रियाएं होती हैं, प्रथम वह क्रिया जिससे एक प्रजाति के जीन में नये अंतर हो जाते हैं और दूसरी वह जिससे वर्तमान जीन अंतर क्रिया की गति प्रभावित होती है। ये विकास प्रक्रियाएं हैं - म्यूटेशन, तारतम्यता, हिट्रोजायगोसिटी, पुनर्मिश्रण, जीन प्रवाह, समुदाय संरचना, स्थिति से परे होना, स्वाभाविक वरण और सामंजस्य।

जीव विज्ञानी गोगारटन का मत है कि मूल जीव प्रजाति विकास चार्ट हाल के जीनोम शोध के परिणामों से मेल नहीं खाता। जीनोम शोध परिणाम इंगित करते है कि आर्किया, जीवाणु और यूकेरियोट्य वर्ग के प्राणी एक पूर्वज की संतान नहीं हैं।

7.2.1 जीव विकास : रहस्यमयी प्रकृति (स्टीफन जे. गौल्ड)

1859 में चार्ल्स डारविन ने स्वाभाविक वरण का सिद्धान्त दिया। सार संक्षेप में इस सिद्धान्त से जीव अपनी पुनरावृति की सफलता हेतु संघर्ष में अपनी विकास प्रणाली में परिवर्तन की वह कुंजी ढूंढता है जिससे वह बदलते वातावरण मे अपनी जाति की रक्षा कर सके। इस प्रकार स्वाभाविक वरण का सिद्धान्त एक

सामान्य प्रगति का सिद्धान्त न होकर केवल तात्कालिक सामंजस्य का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त एक प्रबल तर्क तो है परन्तु जीव विकास का केवल अकेला कारण ही नहीं है। डारविन ने स्वयं कहा था कि जीव विकास के एक नहीं कई कारण हैं और स्वाभाविक वरण सिद्धान्त पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए।

स्वाभाविक वरण सिद्धान्त द्वारा जीव विकास की पूर्ण व्याख्या नहीं किये जाने के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम, जीव और उनकी पुनरावृति की सफलता के लिये डारविन के तर्क से परे जैविक व्यवस्था के और भी सशक्त कारण हैं। प्रथम व्यक्तिगत जीव के डी.एन.ए. बेस युग्म के सबसे नीचे स्तर पर देखा जाय तो कोई भी परिवर्तन निष्पक्ष होता है और इसलिए रेन्डम होता है। और सामूहिक जीव समुदाय के ऊंचे स्तर पर संतुलन की आवश्यकता जीवों की उत्पत्ति और मृत्यु दर पर आधारित विकास क्रम को जन्म दे सकता है। यदि किसी कारणवश जीवों का सामूहिक संहार हो जाता है तो यह उस जीव की जैविक प्रकृति के बहुत बड़े भाग को ही नष्ट कर सकता है। क्योंकि ऐसी दशा में जीव द्वारा सामान्य स्थिति में किए जाने वाले सामान्य वरण की प्रक्रिया के लिए अवसर ही नहीं मिलता।

दूसरा, हमारा विकास परिवर्तन संबंधी सिद्धान्त कितना ही समर्थ और पूर्ण क्यों न हो हम अपने जैविक विकास के इतिहास और पथ को समझने और अंत: अंकित करने का प्रयास भी करते हैं। इतिहास क्रम को देखा जाय तो कभी तीव्र अव्यवस्था होती है, यद्यपि कभी परिस्थितियों में बहुत ही नगण्य और अस्पष्ट सा परिवर्तन होता है परन्तु उनका प्रभाव बहुत संवेदनकारी हो सकता है। इन छोटी सी लगने वाली घटनाओं का परिणाम पर व्यापक असर हो सकता है।

होमोसेपियन्स् को धरती पर अवतरित हुए बहुत समय नहीं गुजरा है। यह इसलिये हुआ क्योंकि जैविक प्रगति की कहानी और काल के अनुसार बढ़ती हुई बौद्धिक जटिलताओं पर आधारित जीव विकास सिद्धान्त ऐसी ही गणना करता है। मानव विकास हजारों परस्पर संबंधित घटनाओं का परिणाम है। यदि इनमे से एक भी घटना ठीक समय पर या सही प्रकार से नहीं होती या भिन्न रूप से हो जाती तो संभव था कि जीव का इतिहास अलग ही होता और मानव का अवतरण नहीं होता।

इसलिए, ऐतिहासिक घटनाओं और जीव प्रगति पथ को समझने के लिए हमें प्रचलित विकास सिद्धान्तों से परे जाना होगा और पृथ्वी पर जीवन विकास के लिए उपलब्ध भूगर्भीय साक्ष्यों का भी सहारा लेना पड़ेगा। ऐसी धारणा पश्चिमी विज्ञान के द्वारा प्रस्तुत मॉडल, पश्चिमी सभ्यता की मनोवैज्ञानिक आशाएं और

सामाजिक प्रचलनों से बिल्कुल भिन्न होगी। डारविन ने ही अपनी पुस्तक के अन्त में लिखा है कि चूंकि स्वाभाविक वरण का सिद्धान्त प्रत्येक जीव के द्वारा और उसके हित में कार्य करता है, सभी भौतिक और मानसिक शक्ति पूर्णता की तरफ ही कार्य करेगी।

हमारे जीवन विकास पथ में ऐसे बहुत से पक्ष हैं जो भौतिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं लेकिन ये सभी पक्ष बहुत ही हल्के और साधारण हैं और इनसे जीवन विकास में सही परिणाम को प्रमाणित करने की आशा नहीं की जा सकती है। जैसे, कैसे-फूल, मशरूम, मानव आदि का विकास हुआ। उदाहरण के लिए भौतिक सिद्धान्त हमें यह नहीं बताते कि क्यों क्रेब मछली, सर्प आदि का जन्म हुआ, क्यों कीट-पतंग बने और क्यों पृथ्वी पर अन्य जीवों की अपेक्षा रीढ़धारी जीव सबसे अधिक जटिलता वाले प्राणी हैं ?

विश्व में सबसे प्राचीन प्रस्तर रचना जिनमें जीवाश्म सुरक्षित है अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में पाई जाती है और यह 3.5 अरब वर्ष पुरानी है। इन प्रस्तर रचनाओं में प्रोकेरियोटिक कोशिका वाले जीवाणुओं के जीवाश्म पाये गये हैं। इसमें किसी को शंका नहीं है कि इसके बाद ही अधिक जटिल जीवों का उद्भव हुआ। लगभग 2 अरब वर्ष पहले पहली यूकेरियोटिक कोशिका बनी और 60 करोड़ वर्ष पूर्व बहुकोशिका जीव की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् जटिलता के क्रम में रीढ़ रहित जीव बने, फिर रीढ़धारी जलचर बने और अन्त में रेंगने वाले जीव, स्थनधारी जीव और मानव का विकास हुआ। जीव विकास के इतिहास का सबसे सशक्त पक्ष यह है कि जीवाणु हमेशा इस धरती पर रहे हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

हमारा यह मानना कि जीव विकास अधिक जटिलता के साथ होता है, हमारा अपने प्रति पक्षपात से भरा हुआ प्रतीत होता है। ऐसी धारणा में हम यह भूल जाते हैं कि कम जटिलता वाले जीव भी उतनी ही अच्छी प्रकार से विकास करते हैं।

अपने विकास इतिहास काल मे जो 3.5 अरब वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ जीव अस्सी प्रतिशत से अधिक समय एक कोशीय ही रहा। जीवाश्म साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि बहुकोशीय जीव का उद्भव 60 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ। एक कोशीय जीव के इस काल मे कोशिका साधारण प्रोकेरियोटिक रचना से यूकोरियोटिक कोशिका में विकसित हुई और इसमें केन्द्रक, मिटोकोन्ड्रिया और अन्य संरचना का विकास हुआ। लगभग तीन अरब वर्ष के इस लम्बे काल में बहुकोशीय जीव का विकास नहीं हुआ। यदि हम जटिलता को विकास का मापदण्ड मानते हैं तो हम यहाँ

देखते हैं कि विकास क्रम ने अपना समय लिया। विकास क्रम में इस प्रकार के विलम्ब को सामान्य प्रगति के सिद्धान्त के विरूद्ध ही माना जायगा यद्यपि यह ज्ञात है कि इस काल में ऑक्सीजन की उचित मात्रा उपलब्ध नहीं थी। इसके पश्चात् आश्चर्यजनक ढंग से अपेक्षाकृत कम समय मे बहुकोशीय जीव का तेजी से विकास हुआ। परन्तु केम्ब्रियन काल के पूर्व अधिकांश जीवों का नाश हो गया। फिर शेष बचे - कुचे जीवों से केम्ब्रियन काल प्रारम्भ हुआ। बाद के लगभग सात करोड़ वर्ष के काल खण्ड का इतिहास ठीक से ज्ञात नहीं है। फिर 53 करोड़ वर्ष पूर्व जैविक विकास पुनः प्रगति पर आरूढ़ हुआ और बहुत तेजी से बहुकोशिका रूपी जैविक विविधता का इतिहास प्रारंभ हुआ तथा 50 लाख वर्ष में कई प्रकार की जैविक संरचनाएं अस्तित्व में आ गई।

इस प्रकार तीन अरब वर्ष का एक कोशीय काल, उसके बाद 50 करोड़ वर्ष का काल खण्ड जिसमें जीव का तेजी से संरचनात्मक विकास हुआ और उसके पश्चात् 50 लाख वर्ष का काल जिसमे विकसित संरचना के आधार पर जैव विविधता फैली, ऐसे इतिहास को किसी भी दृष्टि से यह नहीं कहा जा सकता है कि जीव विकास किसी निश्चित नियम के आधार पर हुआ या बढ़ती जटिलता के साथ हुआ।

जीवाश्म इतिहास के आधार पर कहा गया है कि कई बार जीवों का सामुहिक संहार हुआ है। इस प्रकार का अंतिम संहार लगभग 6 1/2 करोड़ वर्ष पूर्व संभवतया एक 7 से 10 किलोमीटर व्यास वाले उल्कापिण्ड के पृथ्वी से टकराने से हुआ। इस घटना से डायनासोर का अस्तित्व पृथ्वी से समाप्त हो गया और तभी से स्तनधारी जीवों का वर्चस्व बढ़ गया।

विद्वान लोग मानते हैं जीव विकास क्रम में सबसे पहले रीढ़ रहित जीव, फिर जलचर, फिर रेंगने वाले जीव उसके बाद डायनासोर, फिर स्तनधारी जीव और अन्त में मनुष्य का उद्‌भव हुआ। परन्तु इस पक्षपात पूर्ण इतिहास पर हम कभी गंभीरता से विचार नहीं करते। हम कभी यह नहीं सोचते कि जलचर के बाद भी रीढ़रहित जीवों का विकास होता रहा। जलचर स्थलचर जीवों के आगमन के बाद भी विकास करते रहे। तथ्य तो यह है कि मत्स्य प्रजाति के जीवों का अधिक विकास डायनासोर काल में हुआ। मनुष्य का विकास क्रम के अन्त मे ही क्यों हुआ? स्तनधारी जीवों में हम प्राचीन हैं और कई स्तनधारी जीवों का विकास मनुष्य के बाद हुआ।

पर जीव विकास के किसी अन्य मान्य सिद्धान्त की उपलब्धि के बिना हम डारविन के सिद्धान्त को त्याग नहीं रहे हैं। वैज्ञानिक जे.बी.एस.हालडेन का कहना है कि प्रकृति हम जैसा सोचते हैं वह उससे कहीं अधिक रहस्यमयी है।

7.2.2 डारविन का विकासवाद और मानवीय सभ्यता (पं. श्रीराम शर्मा आचार्य)

डार्विन के विकासवादी जोड़-तोड़ की सैद्धांतिक परीक्षा की जा सकती है। उनके अनुसार एक कोशीय जीव अमीबा प्रारम्भ में हुआ। फिर वह हाइड्रा में विकसित हुआ। उससे मछली, मेंढक, सर्पणशील पक्षी, स्तनधारी जीव आदि के श्रेणी-विकास पथ से बात बंदर तक पहुँची। वही बंदर प्रागैतिहासिक मानव रूप में परिवर्तित हुआ। मनुष्य निरन्तर अपना विकास करता बढ़ रहा है। विकासवाद द्वारा यह नहीं बताया जा सकता कि अमीबा से ही नर-मादा दो श्रेणियां कैसे विकसित हुई? उस एककोशीय जीव से दो कोशीय हाइड्रा कैसे पैदा हुआ? क्या अन्य सब जीव भी इसी गुणोत्तर श्रेणी में रखे जा सकते हैं? सर्पणशील जीव श्रेणी विकास के क्रम में पंखधारी बने। तब चींटे, पतंगे, मच्छर जैसे कृमि किस प्रक्रिया में पनपे ? मांसाहारी पक्षी, जल-जन्तु आदि विकसित हुए तो गाय, भैंस, बकरी, हाथी जैसे शाकाहारी प्राणी कैसे बन गये? सहसा मांसाहार से शाकाहार की प्रवृति-परिवर्तन किस इच्छा के कारण हुआ? फिर एक ही जीव के नर-मादा में अन्तर का कारण कया है? हाथी के दांत होते हैं हथिनियों के नहीं। मुर्गे के कलंगी होती है, मुर्गियों में नहीं। मोर जैसे रंग-बिरंगे पंखो वाले की मादा मोरनी बिना पंखों के क्यों ? पक्षियों की उम्र कुछ ही वर्ष होती है, सर्प और कछुओं की आयु सैंकड़ों वर्ष होती है, ऐसा क्यों ? एक जीव से दूसरी किस्म का उसी से मिलता जीव इच्छा के कारण विकसित हुआ, तब एक ही विकास - श्रेणी में और एक -दूसरी से जुड़ी विकास-श्रेणी मे इतनी भिन्नताएँ क्यों हैं ?

सुविधापूर्ण जीवन की इच्छा ने शरीर संस्थानों में इच्छित परिवर्तन किए, तो मनुष्य की इच्छा शक्ति तो अत्यधिक प्रबल और विकसित है। वह पक्षियों को आकाश में उड़ते देखकर खुद ही वैसा गगनचारी होने को लालयित है। मछलियों की तरह अगाध जल-प्रवाह में निर्द्वन्द्व विचरण करने को तरस रहा है और गोते मारने का अभ्यास कर रहा है। तब भी वह इन विशेषताओं से सम्पन्न क्यों नहीं बन पा रहा है? हजार-हजार वर्षों से मनुष्य द्वारा की जा रही सामूहिक इच्छा कोई प्रभाव नहीं दिखा रही?

शायद विकासवादी कह दें कि वह ऐसी इच्छाओं में उतना समय और शक्ति नहीं लगाता। अपितु औद्योगिक - वैज्ञानिक विकास में प्रवृत है - और इन क्षेत्रों में निरन्तर अभूतपूर्व प्रगति कर रहा है। परन्तु नित नए ऐतिहासिक - पुरातात्विक तथ्य सामने आकर उनका यह दावा भी खंडित कर रहे हैं। यह स्पष्ट होता जा रहा है कि

प्राचीन काल का मनुष्य पिछड़ा होने के स्थान पर बौद्धिक सामर्थ्य, विज्ञान, तकनीक, उद्योग, वाणिज्य, नभसंचरण, स्थापत्य, वास्तुकला और अध्यात्म सभी से इतना विकसित था कि वहाँ तक पहुँचने में आधुनिक विज्ञान को शताब्दियां लग सकती है।

अंतरिक्ष-अभियान को विज्ञान की रोमांचकारी प्रगति बताया जाता है। किन्तु भारद्वाज संहिता के वैज्ञानिक प्रकरण में विमान की विकसित तकनीक का वर्णन है, जो पुष्पक विमान समेत अतीत के विभिन्न विमानों की वास्तविकता पर प्रकाश डालता है।

मय सभ्यता के समय के कैलेंडर प्राप्त हुए हैं, जो आगामी 4 हजार लाख वर्ष तक सूर्य चन्द्र ग्रहण की प्रतिवर्ष की घोषणाएँ करने में सक्षम हैं और इतने वर्षों तक पंचांग का काम करते रहेंगे। इन कैलेण्डरों में पृथ्वी का वर्ष 365.2420 दिनों का बताया गया है। आधुनिक इलेक्ट्रोनिक उपकरणों से निकाली गई अवधि 365.2422 दिन की है। अभी भी यह नही कहा जा सकता कि मय-कैलेण्डर में जो 0.0002 का अन्तर है, वह गलत ही है। हो सकता है, आज के वैज्ञानिकों की गणना मे ही अभी कुछ कमी हो। इन कैलेण्डरों द्वारा किसी स्थान पर पड़ने वाले विशेष नक्षत्रीय विकिरण तक जाने जा सकते थे। उसी आधार पर दुर्गों, प्रासादों, नगरों और नक्षत्र-वेधशालाओं का निर्माण होता था। 'इन्का' सभ्यता में भी मय-कैलेण्डरों का ही आधार लिया जाता था।

मिश्र सभ्यता, मय सभ्यता और इन्का सभ्यता के खंडहर इस तथ्य के प्रमाण हैं कि उस समय अत्याधुनिक किस्म के नगर बसते थे। मन्दिर, मूर्तियों, सड़कें, जल-मल निष्कासन की नालियाँ, स्टेडियम आदि परिष्कृत ढंग से बनाए जाते थे। भाषा, गणित, इतिहास, विज्ञान, दर्शन, अध्यात्म, संगीत की शोध होती थी और ग्रंथ रचे जाते थे। तिहानको नगर में भवनों हेतु 100-100 टन पत्थरों को प्रयोग किया गया दिखता है। 6 फीट लम्बे ओर डेढ़ फुट चौड़े पत्थरों से बनी सुन्दर सुघड़ नालियाँ है, जो आज की कंक्रीट नालियों से भी अच्छी हैं। एक 4 मंजिला इमारत के बराबर ऊँचा भवन है, जो 20 हजार टन की एक ही प्रस्तर शिला है जो उल्टी खड़ी की गयी लगती है। इस भवन से 800 मीटर दूरी पर पत्थरों को पिघलाकर एक प्रकोष्ठ बनाया गया है। पत्थर अत्युच्च ताप-ऊर्जा से ही पिघल सकते हैं ? इसे पैदा करने की विधि उन्हें कैसे ज्ञात थी ?

तात्पर्य यही है कि विकासवाद की स्थापना के विरोध में इतने सारे प्रमाण मिलते हैं कि इसकी धज्जियाँ उड़ती है। यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वज जीवन के

सभी क्षेत्रों में हम से अधिक विकसित थे। सम्भवत: किसी भयंकर युद्ध में या जल-प्रलय, भूस्खलन आदि की चपेट में वे संस्कृतियाँ और उनका इतिहास नष्ट-भ्रष्ट अवश्य हो गया है, पर बचे अवशेष भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि वे अति समर्थ पूर्व पुरूष अध्यात्मिक सिद्धान्तों का दैनन्दिन जीवन में परिपालन करते थे। उनकी आध्यात्मिक क्षमताएँ अति विकसित थी।

अन्य प्रमाण -

- पेरू के एक पार्वत्य प्रदेश में 'नाजका' नामक अति प्राचीन किन्तु सुविकसित नगर के वंशावशेष। इस शहर से एक सौ मील दूरी पर विशालकाय पत्थरों पर पशु-पक्षियों के चित्र-विचित्र रेखांकन। एक चित्र 300 गज लम्बा।
- लीमा के दक्षिण में एक पर्वत श्रंखला पर 820 फीट ऊंचा प्रस्तर का एक विशालकाय खड़ा त्रिशुल।
- चिली के तारापाकार मरूस्थल के बगल में स्थित पहाड़ी पर 330 फुट ऊंची खड़ी एक मानव मूर्ति
- दमिश्क की 'टेरेस ऑफ बाल बैक' कभी आधुनिक 'एरोड्रोम' से अधिक सुरक्षित अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा था।
- टिहानको की 13 हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित छत भी पुराना अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा था।
- चिली से 3600 किलोमीटर दूर स्थित ईस्टर ड्रीप 'ह्यूमन वर्ड आइसलैण्ड' के नाम से प्रसिद्ध द्वीप पर एक अति विकसित वेधशाला के प्रमाण। यह 5000 किलोमीटर दूर टिहानको से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।
- ब्रेसिया (इटली) की गुफाओं की भित्तीयों में अन्तरिक्ष यात्रियों की वेशभुषा में सज्जित आकृतियाँ हैं।
- ईसा पूर्व 18 वीं शताब्दी का एक एटलस तुर्की के टापाकापी राजप्रसाद में मिला है। इसमें अमेरिका के पठार समेत विभिन्न महाद्वीपों का पर्वत-शिखर और पठार नदियाँ और समुद्र, द्वीप, भूमध्य रेखीय राज्य, दक्षिणी ध्रुव आदि को दिखाया गया है।
- काहिरा और एलेक्जेन्ड्रिया के मध्य बने विशाल पिरामिड। 'च्योप्स के पिरामिड' उस स्थान पर बने हैं जो गुरूत्वाकर्षण शक्ति के मध्य में है। इसका अर्थ है कि उस समय के लोगों को चुम्बकीय बलों और नक्षत्रीय विकिरणों की जानकारी थी।

सबसे बड़ी बात है मनुष्य के अन्तराल में पायी जाने वाली आदर्शवादी सदाशयता और योगाभ्यास के आधार पर अथवा कई बार बिना प्रयास के भी अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकसित होना। ये सभी बाते ऐसी हैं जो डार्विन की विकास थ्योरी से तालमेल नहीं बिठाती। क्रमिक विकास का सिद्धान्त मनुष्येत्तर छोटे जीव - जन्तुओं पर तो किसी कदर लागू हो सकता है, पर मनुष्यों पर नहीं। उनकी मानसिक स्थिति ही असाधारण नहीं है वरन् भाव संरचना भी ऐसी है जिसे वंशानुक्रम प्रवाह से उपलब्ध हुआ सिद्ध करना कठिन है। वह स्व-उपार्जित भी नहीं। क्योंकि जिन परिस्थितियों में मनुष्य रहता है उसमें ऐसी गुंजायश है नहीं कि आदर्शवादी दृढ़ता को इतने क्रमबद्ध ढंग से नियोजित किया जा सके।

अध्यात्मवादी इस रहस्य का समाधान इस प्रकार करते हैं कि मनुष्य देवी परिवार का एक घटक है। वह देवताओं की सन्तति है। पुरातत्ववेत्ता और जीवन-विज्ञानी ऐसा ही कुछ सोचते हैं कि मानवी संरचना मात्र रासायनिक पदार्थ की परिणति नहीं है कि वे विकास-क्रम को नभचरों और थल में विचरण कर सकने वाले पक्षियों से आगे बढ़ने में अत्यन्त कठिनाई अनुभव करते हैं। वे जीव-विज्ञानी भी सब कुछ इसी तरह से सोचते हैं कि मनुष्य स्तर का जीवन किसी अन्य ग्रह से धरती पर उतरा है। ग्रह-नक्षत्रों को सर्वथा रासायनिक संरचना नहीं माना जाता है वरन् इस मान्यता को बहुत हद तक सही माना जाता है कि पृथ्वी से भी पुरानी विकसित सभ्यताएँ इस ब्रह्माण्ड मे कितने ही तारकों में विद्यमान रही होगीं।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध खगोलवेत्ता सरफ्रेड हायल ने अपना नवीन अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है - प्रस्तुत प्रमाणों और तथ्यों को देखते हुए डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त सही नहीं मालूम पड़ता है जिसमें एक कोशीय जीवों से क्रमशः विकसित होते-होते प्राणियों के वर्तमान स्वरूप की श्रंखला जोड़ी गई है। जीवन की संरचना इतनी जटिल है कि उसे प्रोटीनों ओर रसायनों की परिणति नहीं कहा जा सकता। जीवन के विभिन्न घटक अपने आप मे पूर्ण हैं और वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी न्यूनाधिक हेर-फेर के साथ बने रहते हैं। उदाहरण के लिए मछली को करोड़ो वर्ष अपने इसी रूप मे निर्वाह करते हो गये पर पर उसमें कोई चमत्कारी परिवर्तन नहीं हुआ है। यही बात अन्य जीवधारियों के संबंध मे भी सोची जा सकती है। यदि बन्दर से विकसित होकर आदमी बना तो फिर शेष जाति के बन्दर दृष्टिगोचर होते हैं वे क्यों उसी आदिम स्थिति में बने हुए हैं ?

संसार भर में उपलब्ध होने वाले अद्भुत अवशेषों से इस बात की पुष्टि होती है कि पुरातन काल में किसी उच्च सभ्यता का अस्तित्व रहा है और वह अति

मानवी स्तर की रही होगी। आइन्स्टीन ने एक भेंट वार्ता में प्रो. चार्ल्स हैपगुड से कहा था कि अन्य लोकवासियों के संबंध में समुचित प्रमाण एकत्रित किए बिना सार्वजनिक प्रतिपादन करना तो ठीक नहीं होगा किन्तु मैं व्यक्तिगत रूप से यह विश्वास करता हूँ कि प्रागैतिहासिक अवधि में अन्य लोकवासियों का आवागमन हमारी धरती पर रहा है।

डार्विन के विकास सिद्धान्त में एक बड़ी खामी यह है कि उसमें मूल प्रकृति किसी की भी नहीं बदलती। आकृति में भी नाममात्र का ही अन्तर हुआ माना जाता है। मनुष्य केा जिन वानरों की सन्तान बताया जाता है, वे सामान्य वानरों से बहुत बातों में भिन्न हैं। लेकिन विकास अवधि का उन पर भी कुछ विशेष अन्तर नहीं हुआ है। विचार करने की शैली, भाषण, लेखन जैसी मानवी विशेषताओं का इतने दिन बाद भी कुछ शिक्षण नहीं हो पाया है। यहाँ तक कि घर बनाना, कल के लिए आवश्यक वस्तुओं का संकलन का विचार तक नहीं उठा है। दैनिक जीवन में काम आने वाले उपकरण तक उनके पास नहीं हैं। जबकि मनुष्य ने दो शताब्दियों मे ही इतने वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध कर लिए हैं कि उसकी स्थिति कहाँ से कहाँ पहुंची। यह कारण बताते हैं कि जीवन विकास का वह क्रम ठीक नहीं है जो डार्विन ने बताया है।

मनुष्य अपने आप में सर्वांगपूर्ण है। उसकी पूंछ गायब नहीं हुई है वह सदा से बिना पूंछ का ही था। चार पैर से वह कभी नहीं चला। दो वर्ष का होते-होते अभिभावकों की भाषा बोलने लगता है और वैसे ही स्वभाव की प्रकृति बना लेता है। यह मौलिकता है विकास क्रम नहीं। यह मौलिक विशेषताएँ इतनी तीव्रता से कैसे बढ़ी। इसका उतर यह हो सकता है कि मनुष्य की सूक्ष्म संरचना एवं वंश परम्परा ऐसी है जो सम्भवत: अन्य किसी लोकवासी परिजनों से उसे विरासत में मिली हो।

7.2.3 रशियन डीएनए खोज

मानव डीएनए एक जैविक इन्टरनेट है और यह कृत्रिम इन्टरनेट से कई मायनों में श्रेष्ठ है। नवीन रसियन शोध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कई अतीन्द्रिय क्षमताओं की व्याख्या करती है जैसे दूर दर्शन, अंत: प्रज्ञा, तुरंत और दूरी पर उपचार, स्वचिकित्सा, पूर्व घोषणा, आभामण्डल (आध्यात्मिक गुरू आदि का), मस्तिष्कीय शक्ति द्वारा मौसम पर प्रभाव आदि। इसके अतिरिक्त ऐसी बिल्कुल नई प्रकार की औषधि का पता चला है जिसमें शब्दों और ध्वनि के प्रयोग से बिना चीर फाड़ किए और बिना किसी जीन को बदले डीएनए को प्रभावित कर उसके सूचना तंत्र को नये सिरे से संरचित किया जा सकता है।

डीएनए का 10 प्रतिशत भाग ही प्रोटीन बनाने के काम आता है। शेष 90 प्रतिशत भाग को कूड़ा अंश समझा जाता है। रशियन शौधकर्ताओं ने भाषा विज्ञानियों और जिनेटिक विज्ञानियों से मिलकर इस 90 प्रतिशत डीएनए को समझने का प्रयास किया है। उनके परिणाम, उपलब्धि और निर्णय क्रांतिकारी हैं।

उनके अनुसार हमारा डी एन ए केवल हमारे शरीर निर्माण के लिए ही उत्तरदायी नहीं है, यह सूचना संग्रहण और प्रसारण का भी कार्य करता है। रशियन भाषा विज्ञानियों ने पाया कि जिनेटिक कोड, विशेष तौर पर कुड़ा समझे जाने वाले 90 प्रतिशत भाग में, उन्हीं नियमों की पालना करता है जो मानवीय भाषा के लिए बने हैं। उन्होंने पाया कि डीएनए अल्केलाइन ग्रामर का अनुसरण करते हैं और उनके उसी प्रकार के नियम हैं जैसे हमारी भाषा के होते हैं। रशियन जैव भौतिक विज्ञानी और आणविक जैव शास्त्री जोहर गरजाजेव और उनके साथियों ने डीएनए पर ध्वनि कंपन के प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि जीवित क्रोमोसोम स्थानीय लेजर विकिरणों का प्रयोग करते हुए एक होलोग्राफिक कम्प्यूटर की तरह कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, इसका अर्थ यह हुआ कि क्रोमोसोम ने लेजर किरणों के कुछ विशिष्ट आवृति स्वभाव में परिवर्तन किया और इसके द्वारा डीएनए आवृति को प्रभावित किया और इस प्रकार जिनेटिक सूचना तंत्र को ही प्रभावित कर दिया। यह सब प्रयोगों से सिद्ध किया गया। इसका अभिप्राय यह है कि यदि सही आवृति का प्रयोग किया जाय तो जीवित डीएनए हमेशा भाषा द्वारा परिष्कृत लेजर किरणों, यहाँ तक कि रेडियो तरंगों से, प्रतिक्रिया करता है। यह निर्णायक तौर पर वैज्ञानिक व्याख्या करता है कि क्यों दृढ़ संकल्प, मनन चिंतन, सम्मोहन आदि मानव और उनके शरीर पर इतना प्रबल प्रभाव डालते हैं। रशियन शोध कर्त्ताओं ने सही परिष्कृत रेडियो और प्रकाश तरंगों का प्रयोग कर ऐसे उपकरण भी बनाए हैं जो कोशिकीय चयापचय प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते है और इस प्रकार जिनेटिक विकृति को सुधार सकते हैं। उन्होंने यह सिद्ध करने में भी सफलता पाई है कि इस विधि से एक्स-किरणों द्वारा प्रतिघातित क्रोमोसोम को पुनः सामान्य बनाया जा सकता है। उन्होंने किसी विशेष डीएनए के सूचना तंत्र को पढ़ने और उसे दूसरे डीएनए में प्रसारित करने में और इस प्रकार किसी एक कोशिका को अपने से भिन्न जिनोम से युक्त करने में भी सफलता प्राप्त की। इस प्रकार उन्होंने डीएनए सूचना के प्रसारण से एक मेंढक के भ्रूण को एक विशेष प्रजाति की छिपकली (सलमंडर) के भ्रूण में परविर्तन करने में सफलता प्राप्त की। यह एक अविश्वसनीय क्रांति और चमत्कार है

जो विश्व को बदल सकता है। इस शोध का प्रभाव एल्केलाइन क्रम वाली जैव रासायनिक क्रियाओं के बनिस्पत जीव विकास पर कहीं अधिक है।

योगी और आध्यात्मिक गुरूओं को प्राचीनकाल से ही ज्ञात है कि हमारे शरीर को भाषा, शब्दों और विचारों से ढाला जा सकता है। यह सब अब वैज्ञानिक विधि से सिद्ध हो गया है।

रशियन वैज्ञानिकों ने यह भी पाया है कि हमारा डी एन ए शून्य से चिंतनपरक पैटर्न बना सकता है और इस प्रकार चुम्बकीय प्रतिबिम्ब पैदा कर सकता है। ये प्रतिबिम्ब ब्रह्माण्ड के दो भिन्न भाग के बीच एक प्रकार के गुफा मार्ग बन जाते हैं जिनके द्वारा स्पेस-समय के प्रभाव से परे सूचना का प्रसारण हो सकता है। डीएनए इन प्रसारणों को आकर्षित करता है और हमारी चेतना इसे ग्रहण करती है। प्रकृति में इस प्रकार के असाधारण (अतीन्द्रिय) प्रसारणों का प्रयोग लाखों करोड़ों वर्षों से होता रहा है। कीट पतंगों का व्यवस्थित जीवन इसी प्रभाव का जीवंत साक्ष्य है। आधुनिक मानव को अंत: प्रज्ञा के रूप मे इसका केवल बहुत ही हल्का ज्ञान है। परतु कीट पतंगों की तरह हम भी इस विधा का पूर्ण उपयोग कर सकते हैं। प्राचीन काल में पशुओं की तरह मनुष्य भी सामूहिक चेतना से घनिष्ट संबंध रखता था और एक समूह रूप मे व्यवहार करता था। परन्तु अपनी व्यक्तिगत चेतना को विकसित करने और अनुभव करने के प्रयास से हमें उस सामूहिक चेतना और अतीन्द्रिय प्रसारण क्षमता को भूलना पड़ा।

हमें अब ज्ञात है कि इन्टरनेट की तरह हमारा डीएनए नेटवर्क में सूचना भेज सकता है, वहाँ से सूचना प्राप्त कर सकता है और इस प्रकार नेटवर्क के अन्य सहभागियों से सम्पर्क कर सकता है। इस विधि से दूर उपचार, दूर संवेदन, दूर संचार आदि की व्याख्या हो जाती है। शोधकर्ताओं का विचार है कि यदि मानव पुन: अपने समग्र व्यक्तित्व से सामूहिक चेतना को विकसित कर ले तो वह ईश्वर की तरह इस पृथ्वी पर सृजन, परिवर्तन एवं संशोधन की शक्ति प्राप्त कर सकता है।

उदाहरण के लिए केवल एक व्यक्ति के लिए मौसम को प्रभावित करना कठिन है। परंतु सामूहिक चेतना से ऐसा किया जा सकता है। पृथ्वी पर उपस्थित रेजोनेन्स तरंगों का जिन्हें शूमान तरंगे कहते हैं, मौसम पर बहुत प्रभाव है। यही तरंगे हमारे मस्तिष्क में भी उत्पन्न होती हैं और जब एक समूह अपने विचारों को एक रूप कर लेता है या कोई आध्यात्मिक गुरू अपने विचारों को लेजर की भांति केन्द्रित कर देता है तो वैज्ञानिक आधार पर यह कोई आश्चर्य नहीं है कि मौसम प्रभावित हो जाय।

डी एन ए एक आरगेनिक सुपर संचालक भी है जो सामान्य शारीरिक तापमान पर कार्य करता है। कृत्रिम सुपर संचालक के कार्य के लिए - 200 डी.से. से - 140 डी.से. तक के तापमान की आवश्यकता होती है।

7.2.4 होलोग्राफिक विश्व

1982 मे पेरिस विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञानी एलेन आसपेक्ट व उसकी टीम ने पाया कि कुछ विशेष परिस्थितियों में इलेक्ट्रोन जैसे अणुकण आपस में एकदम संपर्क स्थापित कर लेते हैं चाहे वे कितनी ही दूरी पर स्थित क्यों न हो। इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता चाहे यह दूरी 10 फीट या 10 अरब मील है। किसी न किसी प्रकार एक कण को यह पता रहता है कि दूसरा कण क्या कर रहा है। समस्या यह है कि यह कृत्य आइन्स्टीन के प्रसिद्ध सिद्धान्त का खण्डन करता है, जिसमें कहा गया है कि कोई भी प्रसारण प्रकाश की गति से अधिक गति पर गमन नहीं कर सकता।

लंदन विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञानी डेविड बॉम का मानना है कि एलेन आसपेक्ट की खोज का अर्थ है कि विश्व में सत् का अभाव है, इसके बावजूद कि सबकुछ दिखाई देता है। यह विश्व वास्तव में काल्पनिक या माया है, एक विशाल और सुन्दर होलोग्राम है। एक होलोग्राम किसी वस्तु का त्रि-आयामी प्रतिबिम्ब है और यह लेजर किरणों के प्रयोग से बनता है। होलोग्राम में एक विशेषता हैं। यदि गुलाब के होलोग्राम को दो हिस्से में बांट दिया जाय और उसे फिर लेजर किरणों से प्रकाशित किया जाय तो प्रत्येक हिस्से में अभी भी पूरे गुलाब का प्रतिबिम्ब होगा। इसी प्रकार उस आधे होलोग्राम को फिर दो हिस्सो में विभजित किया जाय तो भी प्रत्येक टुकड़े में पूरे गुलाब का प्रतिबिम्ब होगा हालांकि अब यह आकार में छोटा होगा। इस प्रकार होलोग्राम के हर हिस्से में पूरे होलोग्राम की सूचना रहती है।

होलोग्राम के प्रत्येक हिस्से में पूर्ण स्वभाव का तथ्य हमें प्रकृति को समझने का एक नायब तरीका प्रदान करता है। यदि हम किसी होलोग्राफिक वस्तु के किसी हिस्से को अलग करें तो हमें उस वस्तु का टुकड़ा नहीं बल्कि उसका एक छोटा पूर्ण ही प्राप्त होगा। इस तथ्य ने बॉम को आसपेक्ट की खोज को एक अलग दृष्टि से समझने को प्रेरित किया। बॉम मानता है कि दो अणु कण उनके बीच की दूरी को नकारते हुए हमेशा आपस में संपर्क बनाए रखते हैं इसका कारण यह नहीं कि वे एक दूसरे को रहस्यमय संकेत भेजते रहते हैं बल्कि यह है कि उनके बीच की दूरी काल्पनिक, माया

है। बॉम का कहना है कि सच्चाई के एक गहरे स्तर पर इन कणों का पृथक अस्तित्व नहीं है बल्कि ये एक ही सच्चाई के विभिन्न पहलु हैं। ऐसे कण पृथक-पृथक न होकर एक ही अंतरंग सत्ता के अंश हैं, और पूर्ण हैं। और चूंकि यह विश्व कणों से निर्मित है अत: यह विश्व ही एक होलोग्राम है, प्रतिबिम्ब है।

मस्तिष्क शोध के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए स्टेनफोर्ड के न्यूरोफिजियोलॉजिस्ट कार्ल प्राइब्राम भी पूर्वोक्त प्रतिबिम्ब सिद्धान्त से बहुत प्रभावित हुए। मस्तिष्क में स्मृतियां कैसे और कहाँ संग्रहित रहती हैं, इस रहस्य का समाधान पाने में प्राइब्राम को होलोग्राफी सिद्धान्त ने आकर्षित किया। कई दशकों के शोध से ज्ञात होता है कि स्मृतियाँ किसी स्थान विशेष के बजाय पूरे मस्तिष्क में रहती हैं। 1920 के दशक में मस्तिष्क विज्ञानी कार्ल लेशली के कई प्रयोगों में पाया कि वह चूहे के मस्तिष्क का चाहे कोई भी हिस्सा काट दे वह चूहे की जटिल कार्य करने की क्षमता को समाप्त नहीं कर सकता यदि चूहे ने उस कार्य को सर्जरी से पहले सीखा है।

फिर 1960 के दशक मे प्राइब्राम को होलोग्राफी सिद्धान्त का पता चला। प्राइब्राम का मानना है कि स्मृतियां न्यूरान या न्यूरान समूह में नहीं रहती हैं बल्कि स्नायु आवेग के पैटर्न में रहती है जो उसी तरह पूरे मस्तिष्क में व्याप्त है जैसे होलोग्राम के प्रत्येक हिस्से में लेजर प्रकाश के पैटर्न पूरे होलोग्राम को सुरक्षित रखते हैं। दूसरे शब्दों में प्राइब्राम का मानना है कि मस्तिष्क एक होलोग्राम है। प्राइब्राम का सिद्धान्त यह भी बताता है कि कैसे मानव मस्तिष्क की छोटी सी जगह में इतनी सारी स्मृतियाँ संग्रहित हो जाती हैं। एक अनुमान के अनुसार एक औसत मानव मस्तिष्क अपने जीवनकाल मे लगभग 10 अरब सूचनाएँ एकत्रित कर लेता है। एक होलोग्राम भी, अपनी अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त इसी प्रकार प्रचुर मात्रा में सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है। प्रयोगों से पाया गया है कि एक घन सेन्टीमीटर होलोग्राफिक फिल्म में 10 अरब सूचनाएँ संग्रहित की जा सकती हैं जो एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के पूरे सेट से पांच गुना है। मानव सोच का यह विलक्षण गुण है कि कोई भी विचार युगपत् अन्य विचारों से संबद्ध होता है और यही गुण होलोग्राम का भी है।

प्राइब्राम के मस्तिष्क के होलोग्राफिक मॉडल से मस्तिष्क की स्मृति संबंधी समस्या का ही हल नहीं मिलता बल्कि यह भी समझ में आता है कि मस्तिष्क कैसे ढेर सारी संवेदनाओं को जो उसे इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होती है (जैसे, आंख, कान आदि) हमारे अनुभवों में परिवर्तित करता हैं। सूचनाओं को

कोड करने और फिर उन्हें डिकोड करने में होलोग्राम दक्ष होता है। होलोग्राम एक लेन्स का कार्य करता है, यह अर्थहीन सी दिखने वाली आवृतियों को एक प्रयोजन पूर्ण प्रतिबिम्ब में परिवर्तित कर देता है। प्राइब्राम का मानना है कि मस्तिष्क भी एक प्रकार का लेन्स है और यह होलोग्राफिक सिद्धान्त पर कार्य करते हुए इन्द्रियों से प्राप्त संवेदनाओं को अर्थ पूर्ण अनुभव में परिवर्तित कर देता है।

प्राइब्राम का यह विश्वास प्रयोगों से भी सिद्ध हुआ है। यह पाया गया है कि हमारी कोई भी इन्द्रिय पूर्व में मानी गई आवृति रेन्ज से कहीं बड़ी आवृति रेन्ज में संवेदनशील है। उदाहरण के लिए शोध कर्ताओं ने पाया कि हमारी आँख श्रवण आवृतियों के प्रति भी संवेदनशील है, हमारी नाक की सुंघने की क्षमता वायुमण्डलीय आवृतियों पर निर्भर करती है और हमारे शरीर की कोशिकाएँ (स्पर्श संज्ञा) भी कई प्रकार की आवृतियों के प्रति संवेदनशील है। ये खोजे इंगित करती है कि यह मस्तिष्क की होलोग्रफिक प्रकृति ही है कि वह इन आवृतियों को छांटता है और विभिन्न प्रकार के अनुभव संभव बनाता है।

जीव शास्त्र जैसे ठोस विज्ञान के लिए भी होलोग्राफिक अवधारणा महत्वपूर्ण है। वरजीनिया इन्टरमोंट कॉलेज के मनोवैज्ञानिक कीथ फ्लायड के अनुसार सता की सच्चाई एक होलोग्राफिक भ्रांति है। यह सच नहीं है कि मस्तिष्क से चेतना पैदा होती है। बल्कि यह चेतना ही है जो मस्तिष्क में चित्त और शरीर को बनाती है और उनको भी जो हमारे चारों तरफ भौतिक रूप में दिखाई देती हैं।

यदि मायारूपी यह शरीर चेतना का एक होलोग्राफिक प्रतिबिम्ब है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हम में से प्रत्येक अपने स्वास्थ्य के लिए वर्तमान आयुर्विज्ञान के ज्ञान से कहीं अधिक उत्तरदायी है। हम जिसे रोग का प्रभाव मानते हैं वह वास्तव मे चेतना मे परिवर्तन के कारण हो सकता है, यही चेतना हमारे शरीर के होलोग्राम में परिवर्तन करती है।

7.3 जैन दर्शन में चेतना का विकास

जीव का गुण चेतना है। वह चेतना सामान्य रीति से एक प्रकार की है तथा विशेष की अपेक्षा दो प्रकार है, एक शुद्ध चेतना और दूसरी अशुद्ध चेतना। शुद्ध चेतना आत्मा का निज स्वरूप है और अशुद्ध चेतना आत्मा और कर्म के निमित्त से होती है। शुद्ध चेतना ज्ञान रूप है। अशुद्ध चेतना के दो प्रकार है। एक कर्म चेतना दूसरी कर्मफल चेतना। इस प्रकार चेतना के मुख्यत: तीन भेद किए गये हैं। (1) ज्ञान चेतना (2) कर्म चेतना (3) कर्मफल चेतना। मतिज्ञानादि आठ प्रकार के ज्ञान

या पदार्थ को जानने में जो विकल्प रूप ज्ञान है उसको ज्ञान चेतना कहते हैं। बुद्धिपूर्वक मन, वचन, काय से जो जीव करता है उसे कर्म या कर्म चेतना कहते हैं। यह चेतना अशुभ उपयोग, शुभ उपयोग और शुद्ध उपयोग के भेद से तीन प्रकार की है। पूर्वोपार्जित पुण्य या पाप के कारण जो सुख तथा दु:ख प्राप्त होता है उसका अनुभव करना कर्मफल चेतना है। कर्मफल चेतना में फल भोगने की मुख्यता है।

स्थावर काय जीव की चेतना शक्ति अल्प विकसित होने के कारण, वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम कम होने के कारण शक्ति की कमी होने से, ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्र उदय होने कारण ज्ञान कम होने से तथा केवल स्पर्शन इन्द्रिय होने से पूर्व उपार्जित कर्म को केवल विवश होकर भोगने के लिए बाध्य होते हैं। इसलिए स्थावर जीव बाह्य सुख-दु:ख से, प्रतिकूल वातावरण से स्वयं को बचाने के लिए अधिक सक्रिय नहीं हो पाता है। अत: इनमें केवल पूर्व उपार्जित कर्म को भोगने रूप प्रधानत: कर्मफल चेतना है। भले स्थावर जीव शक्ति की कमी से सुख-दु:ख को विवश होकर भोगता है तथापि कुछ प्रतिक्रिया भी करता है। जैसे जिधर पानी होता है उधर वृक्ष की जड़ फैलती है। जिधर प्रकाश होता है, उधर वृक्ष की शाखाएँ बढ़ती हैं। लाजवन्ती को छूने पर लाजवन्ती मुरझा जाती है। योग्य जलवायु से वृक्ष पल्लवित होता है और विपरीत वातावरण से वृक्ष मुरझा जाता है। मौलश्री वृक्ष सुन्दर स्त्री को देखकर काम चेतना से युक्त हो जाता है। वैज्ञानिकों ने पाया है कि यदि कोई वृक्ष को मारने के लिए जाता है तो वह भयभीत हो जाता है, पत्ते कान्ति रहित हो मुरझाने लगते हैं और कोई पानी देने जाता है तो वृक्ष प्रसन्न हो जाते हैं। संगीत सुनने से वृक्ष अधिक पुष्प फल आदि देते हैं और प्रदूषित वातावरण में वृक्ष कम विकसित होते हैं। इसी प्रकार अन्य स्थावर जीवों में भी प्रतिक्रियाऐं होती हैं।

त्रस जीवों के वीर्यान्तराय कर्म के कुछ क्षयोपशम से स्थावर जीवों की अपेक्षा कुछ शक्ति अधिक होने से इनके कर्मफल चेतना के साथ-साथ कर्म चेतना भी पाई जाती है। इसलिए त्रस जीव में स्थावर जीव की अपेक्षा कुछ अधिक सक्रियता है। त्रस नाम कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय कर्म के कुछ क्षयोपशम से स्थावर जीवों से इनमें कुछ अधिक ज्ञान रहता है। आत्म रक्षा के लिए इधर-उधर भाग सकते हैं इसलिए ये कर्मफल चेतना (अनुभव) के साथ-साथ कर्म चेतना से युक्त होते हैं। चाहे कर्म चेतना हो अथवा कर्मफल चेतना हो दोनों का ही फल बंध है अर्थात् दोनों ही चेतनाएँ बंध करने वाली हैं।

जितना-जितना आवरण हटता है उतना-उतना ज्ञान प्रकट होता है। परन्तु इतना होने पर भी वस्तु का ज्ञान नहीं होता। आत्मा के परिणाम जिस तरफ उन्मुख

ऋजु होते हैं उसी का ज्ञान होता है इसी का नाम उपयोग है। इसी उपयोग की विवक्षा में पंचेन्द्रिय नाम कर्म और मनुष्य कर्म ये दोनों हेतु हैं। ज्ञान चेतना सिद्ध अवस्था में है, परन्तु सम्यक दर्शन होने के बाद ज्ञान चेतना प्रारम्भ हो जाती है और यह चेतना उत्तरोत्तर विशुद्ध से विशुद्धस्तर होते-होते सिद्ध अवस्था में परम विशुद्ध हो जाती है। सम्यक दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से उपशम, क्षय या क्षयोपशम रूप से प्रारम्भ हो जाता है। अशुभ उपयोग से केवल दु:ख ही दु:ख मिलता है और शुद्ध उपयोग से इंद्रिय जनित सांसारिक सुख मिलता है तथापि आध्यात्मिक दृष्टि से यह इंद्रिय जनित सुख भी दु:ख स्वरूप है क्योंकि यह इंद्रिय जनित सुख कर्मोदय से प्राप्त होने के कारण भोग करते वक्त आसक्ति व अतृप्ति के कारण नवीन कर्म बंध का कारण है।

7.4 नाम कर्म

कर्म आठ प्रकार के है उनमें से एक नाम कर्म है। जिस कर्म से जीव में गति आदि के भेद उत्पन्न हो, देहादि की भिन्नता का कारण हो वह नाम कर्म है। नाम कर्म से जीव की देह का निर्माण होता है। नाम कर्म की मध्यम रूप से बयालीस उत्तर-प्रकृतियां होती हैं।

1. गति :- गति नाम कर्म के उदय से आत्मा भव अन्तर को ग्रहण करता है। गति चार प्रकार की है। नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्य गति और देवगति। गति नामकर्म की सहायता से जीव यह निर्णय करता है कि इन चार गतियों में से किस गति में जाना है।
2. जाति :- जाति - व्यवहार में निमित्त जाति नाम कर्म है। जाति पाँच प्रकार की है - एकेन्द्रिय द्वीइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। जाति नाम कर्म की सहायता से जीव यह निर्णय करता है कि इन पाँच जातियों में से किस जाति में जन्म लेना है।
3. शरीर :- जिस कर्म के उदय से आत्मा के शरीर की रचना होती है। शरीर पाँच प्रकार का है - औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर। तैजस और कार्मण शरीर तो जीव के साथ रहते हैं। शरीर नाम कर्म की सहायता से जीव यह निर्णय करता है कि औदारिक और वैक्रिय शरीरों में से कौन से शरीर का निर्माण करना है।
4. अंगोपांग:- जिसके उदय से अंगोपांग की रचना होती है वह अंगोपांग नाम कर्म है। अंग हैं सिर, पीठ, जांघ, बाहु, उदर, नल, हाथ, पैर और उपांग है

ललाट, नासिका, आंख, अंगुलि आदि। अंगोपांग नाम कर्म की सहायता से जीव यह निर्णय करता है कि इन अंग, उपांगों में से किन-किन अंग उपांगों की रचना करनी है।

5. निर्माण - जिसके निमित्त से शरीर मे अंग और उपांग - की निष्पत्ति (यथा स्थान और यथा प्रमाण रचना) होती है वह निर्माण नामकर्म है। वह निर्माण कर्म दो प्रकार का है - स्वस्थान निर्माण और प्रमाण निर्माण। निर्माण नाम कर्म की सहायता से जीव यह निर्णय करता है कि शरीर में इन अंग-उपांगों का स्थान कहां होगा और उनका प्रमाण क्या होगा।

6. बंध :- शरीर नाम कर्म के उदय से ग्रहण किए गये पुद्गलों का परस्पर प्रदेश संश्लेष जिसके द्वारा होता है वह बन्ध नामकर्म है। यही अस्थि आदि का बंध करता है। बंध नाम कर्म की सहायता से जीव ग्रहण किए पुद्गलों का आपस में बंध करता है और अस्थि आदि का निर्माण करता है।

7. संघात:- निश्छिद्र भाव से पुद्गलों का परस्पर एकत्व हो जाना, संगठन हो जाना संघात नाम कर्म है। संघात नाम कर्म की सहायता से जीव निश्छिद्र शरीर का निर्माण करता है अर्थात् ग्रहण किए गए पुद्गलों की यथोचित व्यवस्था करता है।

8. संस्थान - जिसके कारण शरीर की आकृति बनती है वह संस्थान नाम कर्म है। संस्थान छह प्रकार का है समचतुरस्त्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक। संस्थान नाम कर्म की सहायता से जीव शरीर की आकृति तय करता है और उसका निर्माण करता है।

9. संहनन :- जिस कर्म के उदय से अस्थिजाल का बन्धन विशेष होता है वह संहनन नामकर्म है। यह छह प्रकार का है - वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच नाराच, अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपटिका। संहनन नाम कर्म की सहायता से जीव आकृति के अनुसार अस्थि तंत्र का निर्माण करता है।

10. स्पर्श :- जिस कर्म के उदय से आठ प्रकार के स्पर्श का प्रादुर्भाव होता है वह स्पर्श नाम कर्म है। स्पर्श नाम कर्म की सहायता से जीव के शरीर में स्पर्श का निर्माण होता है।

11. रस :- जिस कर्म के उदय से शरीर मे पाँच प्रकार से रसों का प्रादुर्भाव होता है वह रस नामकर्म है। रस नाम कर्म की सहायता से जीव शरीर में पांच प्रकार के रसों का निर्माण करता है।

12. गन्ध :- जिसके उदय से शरीर में गंध होती है वह गंध नाम कर्म है। गंध नाम कर्म की सहायता से जीव के शरीर में निर्दिष्ट गंध उत्पन्न होती है।
13. वर्ण :- जिसके उदय से शरीर में वर्ण विशेष होता है वह वर्ण नाम कर्म है। वर्ण नाम कर्म की सहायता से जीव शरीर में निर्दिष्ट वर्ण की व्यवस्था होती है।
14. आनुपूर्वी :- जिसके उदय से विग्रह गति में पूर्व शरीर का आकार बना रहता है वह आनुपूर्वी नामकर्म है। यह चार प्रकार का है। इस नाम कर्म के कारण विग्रह गति में जीव के पूर्व भव के शरीर की आकृति बनी रहती है।
15. अगुरुलघु :- जिसके निमित्त से शरीर अगुरूलघु होता है वह अगुरूलघु नाम कर्म है। इस नाम कर्म की सहायता से जीव अगुरुलघु शरीर का निर्माण करता है।
16. उपघात :- जिस कर्म के उदय से स्वयंकृत बंधन और पर्वत आदि से गिरना आदि हो वह उपघात नाम कर्म है। विष सेवन करना, अग्नि में जलकर मर जाना आदि भी उपघात है। उपघात नाम कर्म के कारण जीव की पूर्वोक्त प्रकार की दुर्घटनाएं होती हैं या जीव विभिन्न प्रकार के शारीरिक कष्ट पाता है।
17. परघात: - जिसके उदय से जीव अपने दर्शन और वाणी से ही प्रतिपक्षी और प्रतिवादी को पराजित कर देता है अथवा दूसरे का घात करने में समर्थ होता है।
18. आतप :- जिसके उदय से आतपन होता है वह आतप नाम कर्म है। यह एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय जीव के होता है। आतप नामकर्म के कारण जीव को उच्च ताप पर तपना पड़ता है जैसे सूर्य पर पृथ्वीकायिक जीव
19. उद्योत :- जिस कर्म के उदय से उद्यत (प्रकाश) होता है वह उद्योत नाम कर्म है। उद्योत नामकर्म से जीव के शरीर में प्रकाश की व्यवस्था बनती है, जैसे जूगनू के शरीर में होती है।
20. उच्छवास :- जो उच्छवास प्राणापन का कारण होता है वह उच्छवास नामकर्म है। इस नामकर्म की सहायता से उच्छवास व्यवस्था का निर्माण होता है। जैसे हवा में उच्छवास, पानी में उच्छवास।
21. विहायोगति :- आकाश में गति (सामान्य गमन) का प्रयोजन विहायोगति नामकर्म है। यह दो प्रकार की है प्रशस्त और अप्रशस्त। इस नाम कर्म की सहायता से जीव के शरीर में उड़न गति व्यवस्था बनती है।

22. प्रत्येक शरीर :- जिस कर्म के उदय से शरीर एक ही आत्मा के उपयोग्य हो वह प्रत्येक शरीर नाम कर्म है। इस नाम कर्म के कारण एक शरीर एक ही जीव के उपयोग योग्य बनता है।

23. साधारण शरीर :- जिसके उदय से एक ही शरीर बहुत सी आत्माओं के उपभोग का कारण होता है वह साधारण शरीर नाम कर्म है। इस नाम कर्म के कारण एक शरीर अनेक जीवों के उपयोग योग्य बनता है।

24. त्रस :- जिस कर्म के उदय से जीव के दो इंन्द्रिय आदि त्रस जीवों में जन्म होता है वह त्रस नाम कर्म है। इस नाम कर्म से जीव दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय वाले गमनशील शरीर का निर्माण कर सकता है।

25. स्थावर :- जिसके उदय से जीव पंच स्थावर एकेन्द्रियो में जन्म लेता है वह स्थावर नामकर्म है। इस नामकर्म से जीव केवल एकेन्द्रिय शरीर का निर्माण करता है।

26. सुभग :- जिस कर्म के उदय से अन्य प्राणी उससे प्रीति करते हैं वह सुभग नाम कर्म है। इस नाम कर्म से ऐसे शरीर का निर्माण होता है जो अन्य जीवों को अच्छा लगे।

27. दुर्भग :- जिस कर्म के उदय से दूसरे उससे प्रीति नहीं करे वह दुर्भग नाम कर्म है। इस नामकर्म से ऐसे शरीर का निर्माण होता है जो अन्य जीवों को अच्छा नहीं लगता है।

28. सुस्वर :- जिस कर्म के उदय से उसका स्वर सबको कर्णप्रिय लगे वह सुस्वर नामकर्म है। इस नामकर्म से जीव के शरीर में स्वर तंत्र की रचना ऐसी होती है कि उसका स्वर अन्य जीवों को अच्छा लगता है, जैसे कोयल, गीतकार आदि।

29. दु:स्वर :- जिसके उदय से कर्कश, कर्णकटु स्वर की प्राप्ति हो वह दु:स्वर नामकर्म है। इस नामकर्म से जीव के शरीर रचना ऐसी होती है कि उसका स्वर अन्य जीवों को अच्छा नहीं लगता है। जैसे गर्दभ।

30. शुभ :- जिसके उदय से प्राणी का शरीर रमणीय प्रतीत हो, वह शुभ नाम कर्म है। इस नाम कर्म से जीव का शरीर देखने में सुन्दर बनता है।

31. अशुभ :- देखने व सुनने वाले को प्राणी का शरीर रमणीय प्रतीत नहीं होता है, वह अशुभ नामकर्म है। इस नाम कर्म से जीव का शरीर देखने में सुन्दर नहीं लगता है।

32. सूक्ष्म :- जिसके उदय से सूक्ष्म शरीर प्राप्त हो वह सूक्ष्म नाम कर्म है। इस नाम कर्म से जीव को ऐसा सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है जिसका दूसरे घात नहीं कर सकते और जो दूसरों से बाधित नहीं होता।

33. स्थूल :- जिस कर्म के उदय से स्थूल शरीर प्राप्त हो वह स्थूल नाम कर्म है। इस नाम कर्म से जीव को ऐसा शरीर प्राप्त होता है जो अन्य जीवों को बाधा पहुंचाता है।

34. पर्याप्ति :- जिसके उदय से आत्मा अन्तर्मुहूर्त में आहारादि पर्याप्तियों को पूर्ण करने में समर्थ हो जाता है उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं। पर्याप्तियां छह हैं। इस नाम कर्म की सहायता से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर लेता है।

35. अपर्याप्ति- : जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर सकता वह अपर्याप्ति नाम कर्म है।

36. स्थिर :- जिस नाम कर्म के उदय से उपवास आदि तप करने पर भी अंग - उपांग स्थिर बने रहते हैं वह स्थिर नाम कर्म है।

37. अस्थिर :- जिस के उदय से एक आदि थोड़े से उपवास करने पर या साधारण शीत उष्ण आदि से ही शरीर में अस्थिरता आ जाती है वह अस्थिर नाम कर्म है।

38. आदेय :- जिस कर्म के उदय से जीव का वचन बहुमान्य होता है।

39. अनादेय :- जिसके उदय से युक्तिपूर्ण वचन भी अमान्य हो जाते हैं।

40. यशकीर्ति :- प्रसिद्धि में कारण कर्म यशकीर्ति नाम कर्म है। इस नाम कर्म के कारण जीव यश कीर्ति प्राप्त करता है।

41. अयश:कीर्ति :- अपयश को विस्तारित करने वाला कर्म अयश:कीर्ति नामकर्म है। इस नामकर्म के कारण जीव अपयश और अपकीर्ति को प्राप्त होता है।

42. तीर्थंकर :- जिसके उदय से आर्हन्त्य पद प्राप्त होता है वह तीर्थंकर नामकर्म है। इस नाम कर्म के कारण ऐसे शरीर का निर्माण होता है जो तीर्थंकर अवस्था के योग्य हो और उसमें धर्म तीर्थ स्थापना करने की शक्ति प्राप्त हो।

7.5 गुणस्थान

गुणस्थान आत्म विकास का परिचायक है। जैसे-जैसे आत्मा का आध्यात्मिक विकास होता है इसके गुणस्थान में वृद्धि होती जाती है। गुणस्थान का एक नाम जीवसमास भी है। जिसमें जीव भले प्रकार रहते हैं उसे जीवसमास कहते हैं। जीव रहते हैं, गुणों में अर्थात् भावों में। और ये भाव पाँच हैं -

1. औदयिक – कर्मों के उदय से होने वाले भाव।
2. औपशमिक – कर्मो के उपशम से होने वाले भाव।
3. क्षायिक – कर्मों के क्षय से होने वाले भाव
4. क्षायोपशमिक – कर्मों के क्षयोपशम से होने वाले भाव।
5. पारिणामिक – कर्मों के उदयादि के बिना जीव के स्वभाव मात्र से उत्पन्न होने वाले भाव।

कर्म के बिना जीव के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम भी नहीं होते। पारिणामिक भाव तो अनादिनिधन स्वाभाविक भाव है। उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम भाव कर्मकृत हैं और चार अवस्थाएँ द्रव्य कर्म की हैं। अत: द्रव्यकर्म भी व्यवहारनय से आत्मा के भावों का कर्ता होता है और संसारी जीव यथायोग्य इन भाव वाले होते हैं। इसी से वे चौदह गुणस्थानों में विभाजित किए गये हैं।

1. मिथ्यादृष्टि – जिनकी दृष्टि मिथ्या होती है, उन्हें मिथ्यादृष्टि कहते हैं। दृष्टि, रूचि, श्रद्धा, प्रतीति के विपरीत होने से जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं। उन्हें धर्म में रूचि नहीं होती। मोहनीय कर्म के एक भेद मिथ्यात्व के उदय से जो जीव अपने हिताहित का विचार नहीं कर सकते, अथवा विचार कर सकने पर भी ठीक विचार नहीं कर सकते वे जीव मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। संसार के अधिकतर जीव इस श्रेणी के होते हैं। सभी स्थावर जीवों का पहला गुणस्थान होता है।
2. सासादन सम्यकदृष्टि – अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से जिसका सम्यकत्व नष्ट हो गया है और मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले मिथ्यात्व परिणाम को अभी प्राप्त नहीं हुआ है, किन्तु मिथ्यात्व के अभिमुख है, वह सासादन सम्यक दृष्टि है। जो जीव मिथ्यात्व कर्म के उदय को हटाकर सम्यक्दृष्टि हो जाता है और जब सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व में जाता है तो दोनों के बीच का यह दर्जा होता है। अत: जब कोई जीव चौथे गुणस्थान से गिरता है, तभी यह गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान में आने के बाद जीव नियम से पहले गुणस्थान में पहुँच जाता है
3. सम्यग्मिथ्यादृष्टि – जिस जीव की दृष्टि, श्रद्धा, रूचि या प्रतीति समीचीन और मिथ्या दोनों प्रकार की रिली-मिली होती है, उन्हें पृथक् करना शक्य नहीं, उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहतें हैं।
4. असंयत सम्यग्दृष्टि – जिसकी दृष्टि या श्रद्धा समीचीन है, वह सम्यग्दृष्टि है और संयम से रहित सम्यग्दृष्टि को असंयत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। जो न तो

इन्द्रियों के विषयों में विरत है और न त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा में विरत है, केवल जिन भगवान् के द्वारा उपदिष्ट तत्वों का श्रद्धान करता है, वह अविरत सम्यगदृष्टि है।

आगे के सब गुणस्थान सम्यग्दृष्टि के ही होते हैं।

5. संयतासंयत - जो संयत और असंयत दोनों होते हैं, वे संयतासंयत है। जो एकमात्र जिनदेव के वचनों में श्रद्धा रखते हुए एक ही समय त्रस हिंसा से विरत और स्थावर हिंसा से अविरत होता है, वह विरताविरत या संयतासंयत है। वृती गृहस्थों को संयतासंयत कहते हैं।

आगे के सब गुण स्थान संयमी साधुओं के होते हैं।

6. प्रमतसंयत - प्रकर्ष से मत जीवों को प्रमत कहते हैं और अच्छी तरह से विरत या संयमी को संयत कहते हैं। जो प्रमत होते हुए भी संयमी है, वह प्रमतसंयत है। यहाँ प्रमाद से वही प्रमाद विवक्षित है जो संयम का घातक नहीं है। यहाँ प्रमत शब्द अन्तः दीपक है जो छठे से पहले सब गुणस्थानों में प्रमाद का अस्तित्व सूचित करता है।

7. अप्रमतसंयत - जो पन्द्रह प्रमादों से रहित संयमी है, वे अप्रमतसंयत हैं। जिनके समस्त प्रमाद नष्ट हो गए हैं, जो व्रत, गुण, शील से शोभित हैं। जो मोहनीय कर्म का न तो उपशम करता है, न क्षय करता है, केवल ध्यान में लीन रहता है, वह अप्रमतसंयत है।

सातवें गुणस्थान से आगे के कुछ गुणस्थान दो श्रेणियों में विभाजित हैं। एक का नाम उपशम श्रेणी है और दूसरे का क्षपक (कर्मों को नष्ट कर) श्रेणी। जिसमें जीव उत्तरोत्तर मोह का उपशम करता है (दबाता है) वह उपशम श्रेणी है। उपशम श्रेणी के गुणस्थान हैं - अपूर्वकरण (8), अनिवृतिकरण (9), सूक्ष्म साम्पराय (10) और उपशान्त कषाय (11)। उपशान्त कषाय में चढ़कर जीव नियम से गिरता है और संभलने पर पुनः ऊपर चढ़ सकता है, किन्तु क्षपक श्रेणी पर चढ़ा जीव मोह का क्षय करते हुए ऊपर चढ़ कर मोक्ष प्राप्त करता है। क्षपक श्रेणी के गुणस्थान हैं - अपूर्वकरण (8), अनिवृतिकरण (9), सूक्ष्म साम्पराय, (10) क्षीण मोह (12) ये सभी गुणस्थान क्रमशः होते है और ध्यान में मग्न मुनियों के ही होते हैं।

8. अपूर्वकरण - करण का अर्थ परिणाम है और जो पहले प्राप्त नहीं हुए उन्हें कहते हैं अपूर्व। ऐसे अपूर्व परिणाम वाले जीव अपूर्वकरण कहे हैं।

अपूर्वकरण रूप परिणामों को धारण करने वाले जीव मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रवृतियों का क्षय अथवा उपशम करने में तत्पर रहते हैं। इस गुणस्थान में न तो किसी कर्म का उपशम होता है और न क्षय होता है किन्तु इसके लिए तैयारी होती हैं जीव के भाव प्रति समय उन्नत, उन्नत होते चले जाते हैं।

9. अनिवृतिकरण (बादर साम्पराय) - एक समयवर्ती जीवों के जिस प्रकार शरीर के आकार वर्णादि भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी प्रकार जिन एक समयवर्ती सब जीवों के परिणाम भिन्न-भिन्न न होकर समान ही होते हैं, क्योंकि इस गुणस्थान में एक समय मे एक ही परिणाम है, अपूर्वकरण की तरह बहुत परिणाम नहीं होते, ऐसे समान परिणाम वाले वे जीव अनिवृतिकरण गुणस्थानवर्ती होते हैं। इनका ध्यान अत्यन्त निर्मल होता है और वे उस ध्यानरूपी अग्नि से कर्मरूपी वन को जलाने वाले होते हैं। बादर साम्पराय का अर्थ 'स्थूल कषाय' होता हैं। इस अनिवृतिकरण के होने पर ध्यानस्थ मुनि या तो कर्मो को दबा देता है या इन्हें नष्ट कर डालता है। यहाँ तक के सब गुणस्थानों में स्थूल कषाय पाई जाती है।

10. सूक्ष्मसाम्पराय - सूक्ष्म कषाय को सूक्ष्म साम्पराय कहते हैं। अर्थात् जिन जीवों के केवल सूक्ष्म लोभ कषायमात्र शेष रहती है, शेष समस्त मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय हो जाता है, वे सूक्ष्म साम्पराय संयमी कहलाते हैं।

11. उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ - जिनकी कषाय उपशान्त हो गई है, इन्हें उपशान्त कषाय कहते हैं। जिनका राग नष्ट हो गया है, इन्हें वीतराग कहते हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मों को छद्म कहते हैं, उनमें जो रहते हैं, इन्हें छद्मस्थ कहते हैं। जो वीतराग होते हुए भी छद्मस्थ हैं, वे वीतराग छद्मस्थ हैं। जो उपशान्त कषाय होते हुए वीतराग छद्मस्थ हैं, वे उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ हैं। इस गुणस्थान में समस्त कषाय (मोहनीय कर्म) उपशान्त हो जाते हैं, अतः उन्हें उपशान्त कषाय कहते हैं।

    उपशम श्रेणी वाले मोह को धीरे-धीरे सर्वथा दबा देते हैं पर उसे निर्मूल नहीं कर पाते। ऐसा दबा हुआ मोह उन मुनियों को अपने वेग से नीचे की ओर गिरा देता है।

12. क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ - जिनकी कषाय क्षीण हो गई है, वे क्षीण कषाय हैं। और क्षीण कषाय होने के साथ जो वीतराग छद्मस्थ हैं, वे क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ हैं। उनका सम्पूर्ण मोह नष्ट हो जाता है। इस प्रकार सातवें गुणस्थान से आगे बढ़ने वाले ध्यानी साधु दसवाँ गुणस्थान प्राप्त

करते ही हैं। परन्तु उपशम श्रेणी वाले दसवें से ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचकर दबे हुए मोह के उद्भूत हो जाने से नीचे गिर जाते हैं। क्षपक श्रेणी वाले मोह को सर्वथा नष्ट करके दसवें से बारहवें गुणस्थान में पहुँच जाते हैं। उसी के कारण ग्यारहवें में पहुँचने वाले मुनि का अवश्य पतन होता है और बारहवें गुणस्थान में पहुँच जाने वाला कभी नहीं गिरता, ऊपर को चढ़ता है। समस्त मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर बारहवाँ गुणस्थान होता है। मोहनीय कर्म के चले जाने से शेष कर्मों की शक्ति क्षीण हो जाती है अत: बारहवें के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों घातिया कर्मों का नाश करके क्षीणकषाय मुनि सयोग केवली हो जाता है। ज्ञानावरण कर्म के नष्ट हो जाने से उसके केवल ज्ञान प्रकट हो जाता है।

13. सयोग केवली - जिस ज्ञान में इन्द्रिय, प्रकाश और मन की अपेक्षा नहीं होती, इसे केवल अथवा असहाय कहते हैं। वह केवल ज्ञान जिनके होता है, इन्हें केवली कहते हैं। जो योग सहित होते हैं, उन्हें सयोग कहते हैं। इस तरह जो योग सहित केवल ज्ञानी होते हैं, उन्हें सयोगकेवली कहते हैं। इसमें जो सयोग पद है वह नीचे के सब गुणस्थानों में योग का अस्तित्वसूचक है। ये केवली परमात्मा, जीवनमुक्त, अरहंत आदि नामों से पुकारे जाते है। जैन तीर्थंकर इसी अवस्था को प्राप्त कर जैन धर्म का प्रवर्तन करते हैं। जब आयु अन्तर्मुहूर्त रह जाती है तो सब व्यापार बंद करके ध्यानस्थ हो जाते हैं।

14. अयोग केवली - जिनके योग नहीं होता वे अयोग होते हैं। ऐसे अयोग केवल ज्ञानी अयोग केवली होते हैं। जिन्होंने 18 हजार शील के स्वामित्व को प्राप्त कर लिया है, जिनके सम्पूर्ण कर्मो का आस्रव रूक गया है तथा नवीन कर्मबंध से भी रहित हैं, वे अयोग केवली होते हैं। अयोग केवली बाकी बचे हुए चार अघातिया कर्मों को ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा भस्म करके समस्त कर्म और शरीर के बन्धन से छूटकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इन चौदह गुणस्थानों से रहित सिद्ध जीव होते हैं। वे कृतकृत्य हो चुके हैं इन्होने अपना सब करणीय कर लिया है, कुछ करना शेष नहीं है। उनके सब कर्म बंधन नष्ट हो गये हैं।

प्रथम चार गुणस्थान नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव सभी के होते हैं। पाँचवा गुणस्थान केवल समझदार पशु पक्षियों और मनुष्यों के होते हैं। पाँचवे से आगे के गुणस्थान साधुजनों के ही होते हैं। उनमें भी सातवें से बारहवें तक के गुणस्थान

आत्मध्यान में लीन साधु के ही होते हैं और इनमें प्रत्येक गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त होता है।

एकेन्द्रिय से लेकर दूसरे गुणस्थान तक मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी जीव होते हैं। तीसरे गुणस्थान मे ज्ञान-अज्ञान से मिश्रित होते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीनों चौथे से लेकर बारहवें गुणस्थानपर्यंत होते हैं। मन:पर्ययज्ञान छठे से बाहरवें गुणस्थान पर्यंत होता हैं। केवल ज्ञान सयोग केवली, अयोगकेवली और सिद्धों को होता है।

दर्शन चार प्रकार के होते हैं - चक्षु दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन। अचक्षु दर्शन चक्षु के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों से एवं मन द्वारा प्रतिभासित होता है। चक्षु दर्शन और अचक्षुदर्शन एक से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होते हैं। अवधि दर्शन में परमाणु से लेकर अन्तिम स्कन्ध पर्यंत मूर्त पदार्थों का प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है । अवधि दर्शन चौथे से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है। केवल दर्शन, जो लोक-अलोक को प्रकाशित करने वाला है, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में होता है।

7.6 आत्म-विकास

कार्मण वर्गणा से आवृत आत्मा अपने आपको अपूर्ण अनुभव करती है। पूर्णता शुद्ध आत्मा का स्वभाव है और जीवात्मा उसी स्थिति को प्राप्त करना चाहता है। पूर्णता प्राप्ति की यह प्रक्रिया आत्म विकास की प्रक्रिया है जिसमें कार्मण वर्गणा के आवरण का क्षय होता है। विकास क्रम में जीव सर्वप्रथम ज्ञान के लिए आवश्यक इन्द्रियों का विकास करता है। प्राणी जगत में दो राशियाँ हैं - व्यवहार राशि और अव्यवहार राशि। अव्यवहार राशि वनस्पति जगत (निगोद) का वह खजाना है जो कभी समाप्त नहीं होता। इसमें अनन्तानन्त जीव रहते हैं। इस दृश्य जगत में जितने भी जीव हैं ये सब अव्यवहार राशि से निकलकर आते हैं। अव्यवहार राशि में चेतना पर इतना घना आवरण है कि ज्ञान की शक्ति बहुत आवृत हो गई, केवल जीव का एक अंश बचा जिससे कि जीव का अस्तित्व सुरक्षित रह सके। कर्म के आकार के अनुसार ही जीव का संवादी स्थूल शरीर बनता है और विकास क्रम में वह एक इन्द्रिय वाला जीव बन गया। एकेन्द्रिय जीव होने का मतलब है न्यूनतम चेतना का विकास। केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही विकसित, शेष सारी इन्द्रियाँ उपलब्ध ही नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि जिसे हम एकेन्द्रिय कहते हैं, वह जीव एक ही इन्द्रिय वाला है। उसमें इन्द्रियों का बोध तो होता है पर उनका आकार नहीं बनता।

आकार इसलिए नहीं बनता कि इन्द्रियों के पूरे विकास की क्षमता इस जीव के सूक्ष्म शरीर में नहीं हैं। सूक्ष्म शरीर में जब इन्द्रिय-विकास की पूरी क्षमता नहीं है, पूरा विकास नहीं है, तो स्थूल शरीर उसका संवादी नहीं होता, उसमें उसके आकार नहीं बनते। आकार के बिना इन्द्रिय-बोध भी स्पष्ट नहीं होता। एकेन्द्रिय जीव में भी पाँचों इन्द्रियों का अस्पष्ट बोध होता है, परन्तु इन्द्रियों के स्थान विकसित नहीं होते इसलिए स्पष्ट ज्ञान का अभाव रहता है।

यह एक श्रंखला है, भावचित का संवादी होता है पौद्गलिक चित्त और पौद्गलिक चित्त का संवादी होता है स्थूल शरीर। स्थूल शरीर, और भाव शरीर (कर्म शरीर) में परस्पर संवादिता है। एक के जैसा दूसरा और दूसरे के जैसा तीसरा हो जाता है।

जीव अनेकानेक एकेन्द्रिय योनियों में भ्रमण करता है। काल लब्धि के कारण जीव के कार्मण वर्गणा के आवरण में कमी होती जाती है और उसके सूक्ष्म शरीर में दो इन्द्रियों के विकास की क्षमता आ जाती है। वह दो इन्द्रिय वाला स्थूल शरीर धारण कर सकता है। इस प्रकार विकास का क्रम चलता रहता है और जीव क्रमश द्वीइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय शरीर धारण करने की क्षमता प्राप्त करता है। पंचेन्द्रिय शरीर के विकास क्रम में जीव की क्षमता में इतनी वृद्धि हो जाती है कि उसको एक नई क्षमता मन के रूप में प्राप्त हो जाती है। ऐसे जीवों को संज्ञी पंचेन्द्रिय कहा गया है। प्राथमिक अवस्था में संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तिर्यंच रूप में होते हैं और उत्तरोत्तर विकास के साथ जीव को श्रेष्ठतम योनि मनुष्य रूप में प्राप्त होती है। यह जीव का सामान्य विकास क्रम है। मनुष्य योनि प्राप्त होने के बाद भी जीव अपने शुभ और अशुभ कर्मो के अनुसार विभिन्न गतियों में भ्रमण करता है। अपने कर्मों के अनुसार जीव को तिर्यंच, मनुष्य, नारकीय और देवगति प्राप्त होती है। इनमें नारकी और देवगति भोग योनियाँ है जिनमें जीव को कर्म की स्वतंत्रता नहीं होती वह केवल अपने पूर्व कर्मों को भोगता है। मनुष्य योनि में जीव को नये कर्म करने और पूर्व कर्मों को भोगने, दोनों की क्षमता होती है और यही क्षमता उसके तीव्र विकास में सहायक हो सकती है।

अनावृत चेतना व्यक्त होती है। आवृत चेतना दोनों प्रकार की होती है - मनरहित ज्ञान अव्यक्त होता है और मानस ज्ञान व्यक्त। सुप्त-मूर्च्छित आदि दशाओं में मन का ज्ञान भी अव्यक्त होता है, चंचल दशा में वह अर्ध व्यक्त भी होता है। अव्यक्त चेतना को अध्यवसाय, परिणाम आदि कहा जाता है। अर्धव्यक्त चेतना

का नाम है - हेतुवादोंपदेशिकी संज्ञा। यह दो इन्द्रियों वाले जीवों से लेकर अगर्भज पंचेन्द्रियों जीवों में होती है। गर्भज पंचेन्द्रियों जीवों में दीर्घकालिकी संज्ञा या मन होता है। ये त्रैकालिक और आलोचनात्मक विचार कर सकते हैं।

चेतना का मूल स्रोत आत्मा है। उसकी सर्वमान्य दो प्रकृतियाँ हैं - इन्द्रिय और मन। इन्द्रिय ज्ञान वार्तमानिक और अनालोचनात्मक होता है। इसलिए उसकी प्रवृतियाँ बहुमुखी नहीं होती। मनस् का ज्ञान त्रैकालिक और आलोचनात्मक होता है इसलिए उसकी अनेक अवस्थाएँ बनती हैं।

स्मृति, जाति-स्मृति, प्रत्यभिक्षा (पहचान), तर्क, अनुमान - ये सब विशुद्ध ज्ञान की दशाएँ हैं। शेष दशाएँ कर्म के उदय या विलय से उत्पन्न होती है। संकल्प, विकल्प, निदान, कषाय और स्वप्न-ये सब मोह प्रभावित चेतना के चिंतन है। भावना, श्रद्धान और ध्यान ये मोह प्रभावित चेतना में उत्पन्न होते हैं तब असत् और जब मोह-शून्य चेतना में उत्पन्न होते हैं जब सत् बन जाते हैं।

व्यक्ति में दो प्रकार की क्षमताएँ हो सकती हैं - योगात्मक क्षमता यानि लब्धिवीर्य और क्रियात्मक क्षमता यानि करणवीर्य। जिसमें ये दोनों क्षमताएँ हैं वही व्यक्ति कुछ कर पाता है। कर्मशास्त्र के इस महत्वपूर्ण बिंदू को समझने के लिए हमें आत्मा और शरीर, मन और शरीर दोनों के योग को ठीक से समझना होगा। मन का शरीर पर प्रभाव होता है और शरीर का मन पर प्रभाव होता है। आत्मा का शरीर पर और शरीर का आत्मा पर प्रभाव होता है। केवल आत्मा या केवल शरीर से ये सारे कार्य नहीं हो सकते जो हमारे व्यक्तित्व की व्याख्या करने वाले होते हैं। केवल आत्मा से वे ही कार्य निष्पन्न होते हैं जो आत्मा के मूलभूत कार्य हैं। जैसे-चैतन्य का पूर्ण विकास, आनन्द और शक्ति का पूर्ण विकास अर्थात् अनन्त चैतन्य, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति की प्राप्ति। किन्तु जहाँ शरीर है और शरीर के द्वारा जो चैतन्य आदि प्रकट हो रहा है वह अखण्ड नहीं होगा। माध्यम के द्वारा जो भी प्रकट होता है वह कभी पूर्ण नहीं होता। चैतन्य की अभिव्यक्ति के माध्यम हैं - इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि। आनन्द की अभिव्यक्ति का माध्यम है - अनुभूति। शक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम है - शरीर। इन्द्रियाँ भी शक्ति की अभिव्यक्ति के मार्ग हैं। चैतन्य की अभिव्यक्ति भी शक्ति के बिना नहीं हो सकती। आनन्द की अभिव्यक्ति भी शक्ति के बिना नहीं हो सकती। शक्ति का माध्यम सबके साथ जुड़ा हुआ है। सभी अभिव्यक्तियों का माध्यम है शरीर। इसलिए मन से शरीर प्रभावित होता है और शरीर से मन प्रभावित होता है। शरीर भी प्रभाव का निमित्त बनता है और मन

भी प्रभाव का निमित्त बनता है। किन्तु निमित्त का मूल स्रोत है - कर्म। कुछ मानते हैं कि परिस्थिति के कारण ऐसा होता है। किन्तु उसमें हमें अपवाद भी मिलते हैं। निमित्तों के मिलने पर या परिस्थितियों के होने पर हर्ष, भय, शोक आदि होते हैं, किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब भय-वेदनीय कर्म का प्रबल उदय होता है और वे कर्म-परमाणु इतनी प्रबलता से उदय में आते हैं, शोक या चिन्ता पैदा हो जाती है।

अनेकान्त के सिद्धान्त की स्वीकृति के अनुसार प्रत्येक कार्य के पीछे बाह्य कारण की अनिवार्यता नहीं है। कहीं-कहीं कारण स्वगत भी होता है। कर्मवाद में परिस्थिति का भी स्थान है, निमित्त का भी स्थान है। किन्तु परिस्थिति ही सब कुछ है - ऐसा मानना भ्रामक होगा। यदि परिस्थितिवाद की एकान्ततः स्वीकृति होती है तो उसके चक्र को कभी नहीं तोड़ा जा सकता। कर्म की स्वीकृति भी एकान्तिक नहीं हैं। सब कुछ कर्म से ही घटित होता है, यह स्वीकृति उचित नहीं है। सब कुछ कर्म से नहीं होता। कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं जो कर्म से प्रभावित नहीं भी होती है। व्यक्ति का पूरा व्यक्तित्व कर्म से प्रभावित नहीं होता।

एक व्यक्ति अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि है। जब अनादिकाल से ऐसा हो रहा है तो वह मिथ्यात्व के चक्र को कैसे तोड़ पायेगा? किन्तु आत्मा में एक ऐसी शक्ति है, जो पूर्णरूपेण कर्म से कभी प्रभावित नहीं होती। कर्म का साम्राज्य, मोह का साम्राज्य इसलिए स्थापित होता है और तब तक चलता है जब तक कि आत्मा अपनी शक्ति के प्रति जागृत न हो जाये। काल की भी एक शक्ति है जो कर्म से प्रभावित नहीं होती। एक काल आता है कि उस क्षण में, काल लब्धि के कारण आत्मा सहज रूप में जाग जाती है। उसमें अपने अस्तित्व के प्रति जागरूकता का भाव आ जाता है। उस क्षण में मिथ्यात्व का साम्राज्य, मोह का साम्राज्य पहली बार हिल उठता है और धीरे-धीरे उसकी जड़ें टूटने लगती हैं।

उदाहरण के लिए उस घटना को लें जिसमें वनस्पति जीव अक्षयकोश से निकलकर विकासशील जगत में आता है। प्रश्न यह है - क्यो आते हैं? यदि कर्म ही सब कुछ होता है तो अव्यवहार राशि से निकल ही नहीं पाते। किन्तु काल लब्धि, काल की शक्ति के आधार पर वे वहाँ से निकलकर व्यवहार राशि में आ जाते हैं।

व्यवहार-राशि के जीवों की दो श्रेणियाँ हैं - एक कृष्णपक्ष और दूसरी शुक्ल पक्ष। कृष्णपक्ष अनिष्ट कर्मों का सूचक है - अनिष्ट वातावरण और तामसिक वृत्तियों का सूचक है। शुक्लपक्ष हमारे विकास का सूचक है, बंधन मुक्ति की ओर अग्रसर होने के सूचक है। एक प्रश्न उभरता है कि कोई भी जीव कृष्णपक्ष से

शुक्लपक्ष में क्यों आता है? कैसे आता है ? कर्म एक मात्र कारण नहीं है। कृष्ण पक्ष से शुक्लपक्ष में आने का हेतु है- काललब्धि। काल की शक्ति से ऐसा होता है। इसी प्रकार स्वभाव की भी एक शक्ति होती है। आध्यात्मिक विकास के बीज प्रत्येक जीव में विद्यमान हैं। किन्तु कुछ जीव ऐसे होते हैं, जिनमें अध्यात्मिक विकास का स्वभाव ही नहीं होता। इन जीवों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे चैतन्य का विकास नहीं कर पाते। यह स्वभाव शक्ति का उदाहरण है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कर्म का सार्वभौम साम्राज्य नहीं है। कर्म की सार्वभौमिकता स्वीकार करना मिथ्या दृष्टिकोण है। वस्तुत: हमारी शक्तियों के स्रोत हैं - (1) स्वभाव, (2) परिस्थिति, (3) काल, (4) कर्म और (5) पुरूषार्थ। कर्म का एक छत्र साम्राज्य नहीं है, इसलिए कर्म के व्यूह को तोड़ा जा सकता है। पुरूषार्थ का भी अपना महत्व है। पुरूषार्थ में कर्म को बदल देने की भी शक्ति होती है।

7.7 जीव विकास और मस्तिष्क विकास

जीव विकास और ऊर्ध्वारोहण जीव के कर्मक्षय का परिणाम है। ज्ञानावरणादि कर्मों के क्षय से जीव में उत्तरोतर अधिक ज्ञान प्रकट होता है। विकास क्रम में जीव विभिन्न प्रकार की योनि धारण करता है और ज्ञानावरणादि कर्म के उतरोत्तर क्षय से इन योनियों में अधिक-अधिक ज्ञान होना चाहिए। अर्थात् द्वीन्द्रिय योनि में एकेन्द्रिय योनि में अधिक ज्ञान, त्रीन्द्रिय योनि में द्वीन्द्रिय योनि से अधिक ज्ञान और इस प्रकार मनुष्य योनि में सबसे अधिक ज्ञान होना चाहिए। भौतिक शरीर में मस्तिष्क ज्ञान का केन्द्र है। अत: यह अपेक्षा की जाती है कि जीव की उतरोत्तर योनियों में मस्तिष्क अधिक-अधिक उन्नत और सामर्थ्यवान् होना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न प्राणियों में मस्तिष्क के अध्ययन से जीव विकास सिद्धान्त प्रमाणित हो सकता है। हम नीचे वृक्ष वनस्पति से लेकर मनुष्य तक के प्राणियों के मस्तिष्क का संक्षिप्त अध्ययन करते हैं।

वनस्पति विज्ञान के अनुसार वृक्षों में स्नायुतंत्र और मस्तिष्क नहीं होता। वनस्पति अपने शरीर का नियंत्रण और नियमन हारमोन के द्वारा करते हैं। हारमोन से ही उनके शरीर में कोशिका स्तर पर रसायनिक क्रियाएं नियंत्रित होती हैं और इससे वृक्ष अपनी वृद्धि, फल-फूल, आदि का नियमन करता है। स्पष्ट है कि इन सब क्रियाआं के लिए भी जीव को विपुल ज्ञान की आवश्यकता होगी।

विकास क्रम में जीव स्थावर वनस्पति योनि के बाद त्रस योनि धारण करता करता है। सभी त्रस जीवों में स्नायुतंत्र और मस्तिष्क होता है। निम्न स्तर के

प्राणियों का स्नायुतंत्र भी निम्न स्तर का होता है। उदाहरण के लिए एक कृमि में केन्द्रिय मस्तिष्क नहीं होता। कृमियों में न्यूरॉन का एक जाल होता है जो शरीर के चारों तरफ फैला रहता है। लोबस्टर जैसे बिना रीढ़धारी प्राणियों में न्यूरॉन कोशिकाओं के समूह होते हैं जिनको गेंगलिया कहते हैं। ये गंगलिया आपस में जुड़े होते है और सब गेंगलिया मिलकर एक सरल स्नायुतंत्र बनाते हैं। एक गेंगलिया शरीर के अपने हिस्से की इंद्रिय और हलन-चलन क्रियाओं का नियंत्रण करता है। आगे चलकर अधिक विकसित प्राणियों में इन गेंगलियों के आपस में मिल जाने से मस्तिष्क का निर्माण होता है। कीट प्रजाति के प्राणियों में मस्तिष्क के चार भाग होते हैं - दृष्टि लोब, प्रोटोसेरेब्रम, ड्यूरोसेरेब्रम और ट्रीटोसेरेब्रम। दृष्टि लोब आंखों के पीछे स्थित होते हैं और दृष्टि संकेतों को ग्रहण करते हैं। प्रोटोसेरेब्रम घ्राण संज्ञान क्रिया सम्पादित करते है और शारीरिक अंगों से भी संबंध रखते हैं। मधुमक्खी जैसे जीवों में प्रोटोसेरेब्रम दृष्टि संज्ञा का कार्य भी करता है। ड्यूटो सेरेब्रम में एन्टीना लोब होते हैं जो जीव के सिर पर लगे एन्टीना से और सिर के स्पर्श संबंधी संकेत ग्रहण करते हैं। मक्खियों और पतंगों के एन्टीना लोब जटिल होते हैं। ओक्टोपस प्रजाति के प्राणियों के मस्तिष्क के दो भाग होते हैं और ये दोनों भाग आपस में जुड़े होते हैं। इन जीवों में दृष्टि लोब को कई बार मस्तिष्क का अंग नहीं माना जाता परन्तु कार्य की दृष्टि से ये मस्तिष्क के ही भाग हैं।

रीढ़धारी जीवों में मस्तिष्क खोपड़ी में सुरक्षित रहता है। मस्तिष्क की जटिलता का संबंध जीव के विकास क्रम से है। विकसित जीवों का मस्तिष्क कम विकसित जीवों के मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक जटिल होता है। मछली, सर्प-परिसर्प और मेंढक प्रजाति जैसे अविकसित रीढ़धारी प्राणियों में मस्तिष्क के कॉरटेक्स में छह से कम परते होती हैं। स्तनधारी प्राणियों के कॉरटेक्स में छह परते होती हैं और उनमें भी विकास के साथ इन छह परतों का आकार बढ़ता जाता है। ये बड़ी आकार की परतें मुड़ कर खोपड़ी में ही समाविष्ट रहती हैं। परतों के आकार बढ़ने से मस्तिष्क में न्यूरान की संख्या बढ़ जाती है। मानव कॉरटेक्स का कुल क्षेत्रफल लगभग 1500 से 2000 वर्ग सेमी होता है जो समाचार - पत्र के एक-दो पृष्ठ के बराबर है।

स्तनधारी प्राणियों में मोटे रूप में मस्तिष्क में समानता होने पर भी प्रत्येक प्रकार के प्राणी का मस्तिष्क भिन्नता लिए होता है। रीढ़धारी प्राणियों में इंद्रियों के संकेत मस्तिष्क को और मस्तिष्क के संकेत इंद्रियों को अलग-अलग स्नायु से पहुँचते हैं।

सभी रीढ़धारी प्राणियों के मस्तिष्क में निम्नांकित उपांग होते हैं।

1. मस्तिष्क तना – मस्तिष्क तना में मेडुला, पॉन्स और मध्य मस्तिष्क स्थित होते हैं। नीची श्रेणी के रीढ़धारी प्राणियों के मस्तिष्क में केवल मेडुला होता है। मस्तिष्क तना रिलेक्स क्रिया, हृदयगति और रक्तचाप जैसे स्वनियंत्रित कार्य, हाथ-पैरों का हिलना-डूलना तथा पाचन क्रिया और मूत्र उत्सर्जन जैसे कार्य नियंत्रित करता है।
2. सेरेबेलम – यह संस्थान हाथ-पैर आदि अंगों की स्थिति की सूचना ग्रहण कर उनमें समन्वय स्थापित करता है।
3. हाइपोथेलेमस और पिट्युटरी ग्रंथि – ये अंग पाचन और मूत्र क्रिया, शरीर का तापमान तथा खाना, पीना, मैथुन, सुरक्षा और सुख अनुभूति की क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।
4. सेरेब्रम (कॉरटेक्स) – यह सभी इंदियों से आने वाली सूचनाओं का एकीकरण करता है, आवश्यकतानुसार शारीरिक अंगों में गति प्रारंभ करता है, भावों का नियंत्रण करता है, सोच-विचार करता है और स्मृतियाँ संग्रहित करता है। सोच-विचार और भावों की क्षमता उच्च स्तर के स्तनधारी प्राणियों में ही होती है। विकास क्रम में जैसे-जैसे जीव मछली प्रजाति के प्राणियों से मानव योनि की तरफ बढ़ता है कॉरटेक्स का आकार बढ़ता जाता है, वह मस्तिष्क का बड़ा भाग बनता जाता है और उसकी रचना परतों में होती जाती है। बड़े कॉरटेक्स में कई नये कार्य होने लगते हैं। जैसे सूचना संसाधन, संभाषण, चिंतन और स्मृति। मछली, मेंढक, सर्प-परिसर्प, पक्षी जैसे निम्न जीव सोच-विचार कम करते हैं और अधिकतर भोजन, पानी, निद्रा, मैथुन और सुरक्षा जैसी क्रियाओं में संलग्न रहते हैं। हम भी ये सब क्रियाएं करते हैं परंतु हमारे मस्तिष्क के लिए ये सब एक छोटा कार्य है।

मनुष्य के सेरेब्रम कॉरटेक्स के विभिन्न भाग हैं –

1. पेरियेटल लोब– यह स्पर्श और दर्द संबंधी सूचना ग्रहण करता है और उन पर कार्यवाही करता है।
2. फ्रन्टल लोब – यह हलन-चलन (वाणी सहित) की क्रियाओं और संबोध क्रियाओं से संबंध रखता है।
3. ऑकीपीटल लोब – यह चक्षु इंद्रिय से सूचना ग्रहण करता है और उन्हें पेरियोटल लोब तथा फ्रन्टल लोब को संप्रेषित करता है।

4. टेम्पोरल लोब - यह श्रोत्र इंद्रिय से सूचना ग्रहण करता है और इन्हें पेरियोटल लोब और फ्रन्टल लोब को संप्रेषित करता है।
5. इन्सुला - यह मस्तिष्क तना में होने वाली स्वनियंत्रित क्रियाओं को प्रभावित करता है तथा रसना इंद्रिय की सूचना पर भी कार्यवाही करता है।
6. हिप्पोकेम्पस - यह टेम्पोरल लोब में ही स्थित होता है और लघु अवधि की सूचनाओं से संबंध रखता है।
7. एमिगडला - यह भी टेम्पोरल लोब में स्थित है और हमारे सामाजिक संबंध और भावों को नियंत्रित करता है।
8. बेसल गेंगलिया - यह सेरेबेलम के साथ कार्य कर अंगुलि आदि अंगों की सूक्ष्म गति का समन्वय करता है।
9. लिम्बिक सिस्टम - यह हमारे भावनात्मक व्यवहार से संबंध रखता है तथा पाचन, मूत्र आदि क्रियाओं को नियंत्रित करता है।

मनुष्य का मस्तिष्क अन्य पशुओं के मस्तिष्क से कई अपेक्षाओं से भिन्न होता है। यह भिन्नता मनुष्य में पशुओं की तुलना में कई प्रकार की उच्च क्षमताएं पैदा करती है जैसे उच्च ज्ञान संवेदन आदि। मौटे तौर पर तो मनुष्य का मस्तिष्क पशुओं के मस्तिष्क के समान ही है लेकिन उसकी स्नायु क्षमता अद्‌भुत है। मानव मस्तिष्क में कहीं अधिक समानान्तर क्रियाएं संभव है। मानव मस्तिष्क का वजन 1-1.5 किग्रा होता है और यह एक मजबूत झिल्ली में लिपटा रहता है जो इसे रगड़ आदि स्थिति में बचाए रखती है। इस मस्तिष्क का वजन और घनत्व ऐसा होता है कि यह अपने वजन से ही पिचक सकता है परन्तु यह एक तरल पदार्थ में तैरता रहता है और इस प्रकार सुरक्षित रहता है।

मस्तिष्क में कुछ हारमोन भी बनते हैं जो शरीर के अंगों और ग्रंथियों को प्रभावित करते हैं। शरीर के अन्य स्थानों पर बनने वाले हारमोन भी मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं। स्तनधारी प्राणियों के मस्तिष्क में हारमोन पिट्युटरी ग्रंथि द्वारा बनाए जाते हैं और ये शरीर में अन्य स्थानों पर बनने वाले दूसरे हारमोन को नियंत्रित करते हैं। किसी मस्तिष्क की अवस्था उसमें होने वाले हारमोन स्राव, इंद्रियों से ग्रहण की जाने वाली सूचनाएं और उसके द्वारा की जाने वाली वस्तु संबोध क्रियाओं पर निर्भर करती हैं। कोई भी उत्प्रेरणा चाहे वह किसी भी स्रोत से हो, कॉरटेक्स में क्रिया करती है और इस प्रकार नई सूचना पर कार्य प्रारंभ हो जाता है। एक से अधिक उत्प्रेरणा आने पर मस्तिष्क यह निर्णय करता है कि किस उत्प्रेरणा पर पहले कार्य करना है। महत्व और

आवश्यकता के अनुसार कॉरटेक्स में क्रिया बदलती रहती है। यदि उत्प्रेरणा भूख, थकान, स्व-मान्यता, अनजान वस्तु या भय से उत्पन्न होती है तो मस्तिष्क क्रिया के लिए अपना विकल्प चुनता है और सही क्रम में उन पर विचार करता है।

दर्शन शास्त्र में साधारणतया मस्तिष्क और मन में भेद किया जाता है पर उनके बीच सही अंतर्संबंध के बारे में कुछ विवाद है। मस्तिष्क वह भौतिक और जैविक अंग है जो खोपड़ी के अंदर स्थित है और विद्युत-रसायनिक स्नायु क्रियाएं सम्पन्न करता है। मन विश्वास, मान्यता और इच्छा जैसी मानसिक क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है। कुछ विद्वानों का मानना है कि मस्तिष्क और मन दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है तथा मन आत्मा या आत्माके समकक्ष कोई तत्व है। कुछ विद्वान मन को भौतिक विद्युत चुम्बकीय फील्ड या क्वांटम फील्ड मानते हैं। कुछ वैज्ञानिक मस्तिष्क को हार्डवेयर और मन को सोटवेयर मानते हैं। एक मत के अनुसार मन का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है और सभी मानसिक क्रियाएं केवल मस्तिष्क की स्नायु क्रियाएं ही हैं। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि एक विकसित मस्तिष्क के विभिन्न तंत्रों में होने वाली क्रियाओं के परस्पर संबंधों से चेतना उत्पन्न होती है।

शरीर विज्ञान से प्राप्त उपरोक्त सूचनाओं और जैन दर्शन के आधार पर निम्न तथ्य स्पष्ट हैं।

1. वनस्पति जैसे स्थावर जीवों में केन्द्रीय मस्तिष्क और स्नायुतंत्र नहीं होता।
2. विकलेन्द्रिय जीवों (दो इंद्रिय से चार इंद्रिय और विज्ञान के अनुसार बिना रीढ़ के जीव) में स्नायु तंत्र निम्न स्तर का होता है। कृमि (द्वीन्द्रिय) जीवों में यह एक न्यूरॉन के जाल के रूप में होता है तथा त्रीन्द्रिय और चतुर्रिन्द्रिय (कीट-पतंग) जीवों में यह गेंगलिया रूप में होता है। कुछ जीवों में शरीर के अलग-अलग भाग में अलग-अलग गेंगलिया होते हैं, जो आपस में जुड़ रहते हैं, और कुछ जीवों में गेंगलियों का एक समूह होता है जिसे मस्तिष्क कहा जाता है।
3. पंचेन्द्रिय (रीढ़धारी) जीवों में मस्तिष्क खोपड़ी में स्थित होता है और इसके चार मुख्य भाग होते हैं। नीचे स्तर के पंचेन्द्रिय जीव अधिकतर आहार, निद्रा, भय, मैथून क्रियाओं में व्यस्त रहते हैं तथा विकसित स्तर के पंचेन्द्रिय (स्तनधारी) जीव इन क्रियाओं के अतिरिक्त सोच-विचार भी करते हैं और उनके मस्तिष्क में कॉरटेक्स भाग अपेक्षाकृत बड़ा होता है।
4. मनुष्य का मस्तिष्क पशुओं की अपेक्षा बहुत उन्नत स्तर का होता है और यह कई प्रकार की विशिष्ट क्षमताओं से युक्त होता है जैसे सूचना संसाधन

(Processing) भाषा और संभाषण, चिंतन, स्मृति आदि। मानव मस्तिष्क कई समानांतर क्रियाएं सही क्रम में करने में सक्षम है।

उपरोक्त अध्ययन से हम देखते है कि जीव विकास और मस्तिष्क विकास में संबंध है। जीव के इंद्रिय विकास के साथ उसका मस्तिष्क भी विकसित होता जाता है। विकसित मस्तिष्क में अधिक ज्ञान होता है। इसको यह भी कह सकते हैं कि जीव के उर्ध्वारोहण मार्ग में कर्मों के क्षय से आत्मा का अधिक ज्ञान प्रकट होता है और अधिक ज्ञान के लिए विकसित मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। अत: विकास प्रक्रिया में जीव उतरोत्तर ऐसी योनि को धारण करता है जिसमें अधिक विकसित मस्तिष्क उपलब्ध हो। इसका दूसरा पक्ष यह है कि एक निम्न स्तर का जीव उच्च स्तर की विकसित योनि धारण नहीं कर सकता क्योंकि उसमें उस योनि के अनुरूप ज्ञान नहीं है। इसलिए जीव को योनि दर योनि ही उर्ध्वारोहण यात्रा करनी पड़ती है। एक वृक्ष का जीव मनुष्य योनि में प्रवेश ही नहीं कर सकता, उसमें मनुष्य के मस्तिष्क के अनुरूप ज्ञान ही नहीं है। मनुष्येत्तर प्राणियों में कर्म क्षय एक धीमी प्रक्रिया है। धीरे-धीरे ही ज्ञान का आवरण हटता है और अत: जीव का क्रमिक विकास ही संभव है। मनुष्य योनि में जीव आध्यात्मिक पुरुषार्थ करने में सक्षम हो जाता है और ऐसा करने पर कर्म क्षय की गति को तीव्र किया जा सकता है। साथ ही कर्म बंध का निरोध करने पर जीव संचित कर्मों का पूर्ण क्षय कर कर्म मुक्त हो सकता है और परमात्मा बन सकता है।

जीव के ज्ञान का स्तर उसके शरीर के आकार से नहीं आंका जा सकता। एक वृक्ष कृमि की तुलना में बहुत बड़ा होता है परन्तु कृमि में ज्ञान अधिक होता है। यह अधिक ज्ञान कृमि के हलन-चलन, भोजन-पानी की व्यवस्था, सुरक्षा आदि कार्यों के लिए आवश्यक है। ये कार्य वृक्ष में नहीं होते और इसलिए वृक्ष कम ज्ञान से ही अपना कार्य संपन्न करने में सक्षम हो जाता है। जैसे-जैसे कर्म क्षय से जीव के ज्ञान में वृद्धि होती है वह अधिक इंद्रियों को धारण कर सकता है। किसी भी इंद्रिय के उपयोग के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। शरीर रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है कि आंख नाक से अधिक जटिल है और नाक जीभ से अधिक जटिल। इसलिए सोचा जा सकता है कि दृष्टि इंद्रिय के लिए घ्राण इंद्रिय से अधिक ज्ञान चाहिए और रसना इंद्रिय के लिए सबसे कम ज्ञान चाहिए। विकास क्रम में जीव के स्पर्श इन्द्रिय के बाद रसना इन्द्रिय विकसित होती है और फिर घ्राण और चक्षु इन्द्रिय। विकास क्रम इस अवस्था तक ठीक बैठता है और उत्तरोतर अधिक जटिल

और अधिक ज्ञान के मांग वाली इंद्रियां विकसित होती है। अंत में श्रोत्र इंद्रिय विकसित होती है। शरीर ज्ञान के आधार पर देखा जाय तो कान आंख से अधिक जटिल नहीं है। तो फिर श्रोत इंद्रिय को विकास क्रम के अंत में क्यों बताया गया ? हम जानते हैं कि कान ध्वनि संकेत ग्रहण करते हैं और यह ध्वनि भाषा से भी उत्पन्न हो सकती है। अत: संभवतया जैन दर्शन के विकासवाद ने श्रोत इंद्रिय के साथ भाषा की क्षमता भी निहित है। श्रोत्र और भाषा की संयुक्त क्षमता के लिए चक्षु इंद्रिय से अधिक ज्ञान की आवश्यकता तर्क सम्मत है। भाषा की पूर्ण क्षमता मनुष्य में ही विकसित होती है और हम जानते है कि मनुष्य का मस्तिष्क पशु के मस्तिष्क की तुलना में बहुत अधिक क्षमतावान है।

अब हम विश्वास के साथ कह सकते है कि जैन दर्शन का जीव विकासवाद विज्ञानसम्मत है और विकास क्रम भी तर्क सम्मत है। विज्ञान अभी तक मन, चेतना और आत्मा के रहस्य को नहीं समझ पाया है। अत: इस विषय पर उसकी कोई निश्चित अवधारणा नहीं बन पायी है।

7.8 जीव विकास : एक समीक्षा

जीव विकास की वैज्ञानिक विचारधारा से निम्न मुख्य बिन्दु उभर कर आते हैं।

1. डीएनए एक रसायन है जो शरीर निर्माण के लिए आवश्यक है। डीएनए की संरचना और गुणों में जीव प्रजाति के आधार पर कुछ भिन्नता है परन्तु यह भिन्नता जीव की प्रजाति निर्धारित नहीं करती हैं।
2. डी.एन.ए संरचना के लिए 'ज्ञान' की आवश्यकता होती है, केवल पौदगोलिक विधियों से उसकी रचना संभव नहीं। डीएनए में 'ज्ञान' का संग्रहण भी होता है।
3. डीएनए की सामर्थ्य प्रोटीन बनाने से बहुत अधिक है, वैज्ञानिकों को अभी उसके पूरे सामर्थ्य की जानकारी नहीं है।
4. डीएनए संरचना को भाषा, विचारों और सूचना संप्रेषणों से प्रभावित किया जा सकता है।
5. डीएनए जीवों में समूह चेतना उत्पन्न करने का एक माध्यम है।
6. जीव के गुण डीएनए द्वारा निर्धारित नहीं होते। डीएनए जीव के गुणों का मुख्य कारण नहीं है।
7. विकासवाद द्वारा प्रद्त जीवन विकास क्रम अमान्य है। मनुष्य क्रम के अंत में नहीं हुआ, उसकी उपस्थिति पूर्व में भी रही है।

8. जीव में गुणों का विकास परिस्थिति आधारित भी है जैसे जीवाणु एंटीबोडी प्रतिरोधक गुणों का विकास कर लेते हैं। परन्तु केवल इच्छाशक्ति से ही गुणों का विकास नहीं होता।
9. डीएनए सूचना संशोधन अर्थात् 'ज्ञान' से जीव की प्रजाति बदलना संभव है।
10. स्मृतियाँ शारीरिक नहीं है, उनका आधार प्रकाश तत्व है।

जीव विकास एक जटिल प्रश्न है। विज्ञान ने इस विषय पर बहुत खोज-बीन की है। जैन आगम में चेतना विकास पर गहराई से विचार किया गया है। वैज्ञानिक खोज और आगम विचारों को मिलाने पर जीव विकास के रहस्य को समझने में सहायता मिल सकती है। जैन आगम के अनुसार आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है अर्थात् एक अशुद्ध आत्मा शुद्धता की तरफ प्रवृत होती है। अशुद्ध आत्मा में अनंत ज्ञान, शक्ति, दर्शन प्रकट नहीं होता फिर भी अशुद्धतम आत्मा में भी एक चेतना अंश अनावृत रहता है जो अपने स्वभाव के अनुरूप ऊर्ध्वगामी प्रयास करता है। आत्मा की शुद्धि के लिए उच्चतर योनि की आवश्यकता होती है क्योंकि ऐसी योनि में ही मानसिक और भावनात्मक पुरूषार्थ संभव है। बिना मानसिक और भावनात्मक उत्कृष्टता के आत्म परिष्कार संभव नहीं होता। अत: आत्मा का प्रथम लक्ष्य होता है कि वह उच्चतर योनि प्राप्त करने का पुरूषार्थ करें।

जीव की यात्रा स्थावर निगोदिया योनि से प्रारम्भ होती है। यह जीव की निम्नतम अवस्था है। ऐसे सूक्ष्म जीव लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं। खगोलीय परिस्थितियों के कारण यदि किसी नई पृथ्वी का जन्म होता है तो वहाँ भी अनुकूल परिस्थितियां होने पर सूक्ष्म जीव प्रवेश कर जायेंगे। इन सूक्ष्म जीवों के शरीर में निम्न स्तर की जीन संरचना पाई जाती है। जैन आगम के अनुसार जीव गर्भज और सम्मूर्च्छन दोनों प्रकार के होते हैं। उपयुक्त जल, वायु, उष्णता एवं शरीरादि के योग्य पुद्गलों के उपलब्ध होने पर अन्य स्थान से विग्रह गति से आकर जीव जन्म लेता है उसे सम्मूर्च्छन जीव कहा गया है। एक मत के अनुसार एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का जन्म सम्मूर्च्छन ही होता है। जौंक, बिच्छु, पटेर, शंख, सीप, तितली आदि सम्मूर्च्छन जीव हैं। कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज और सम्मूर्च्छन दोनों होते हैं। कुछ आचार्यो के अनुसार असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों को नपुसंक माना गया है। इस श्रेणी में अपृष्ठवंशीय (Invertebrate) जीव आते हैं।

पृथ्वी को प्रारंभिक काल में ऑक्सीजन रहित माना गया है। इस काल में केवल वे ही जीव जीवित रह सकते हैं जिन्हें आक्सीजन की आवश्यकता नहीं

होती। इसलिए सर्वप्रथम पृथ्वी पर वनस्पति प्रजाति के जीवों का उदय होना चाहिए। वनस्पति के लिए जल, कार्बन डाई ऑक्साइड और उचित उष्णता आवश्यक है। जब पृथ्वी पर इस प्रकार की परिस्थितियाँ बन गई तब जीवन का प्रारंभ माना जा सकता है। वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि जल, मिथेन, अमोनिया और हाइड्रोजन से और विद्युत प्रयोग से अमीनो अम्ल की संरचना संभव हो जाती है। ऐसी परिस्थितियाँ वनस्पति के लिए अनुकूल है। अत: माना जा सकता है कि पृथ्वी पर सबसे पहले वनस्पति प्रजाति के जीवों का विकास हुआ। जैन दर्शन के अनुसार भी निगोद जीव (सूक्ष्म वनस्पति) सर्वप्रथम स्थूल वनस्पति में विकास करते हैं। वनस्पति से ऑक्सीजन बनी और धीरे-धीरे वायुमण्डल अन्य जीवों के अनुकूल बना।

वनस्पति में भी संभवतया पहले जलरूह और तृण वनस्पति का विकास हुआ। भगवान ऋषभदेव से पूर्व के काल में मनुष्य कल्प वृक्षों यानि फलदार वृक्षों पर निर्भर रहते थे। भगवान् ऋषभ देव ने सर्वप्रथम कृषि की शिक्षा दी अर्थात् पौधों की खेती करना सिखाया। उससे पहले शायद जनसंख्या इतनी कम थी कि खेती की आवश्यकता ही नहीं थी प्राकृतिक तौर पर उगने वाले पौधों और वनस्पति से सबके लिए भोजन की आवश्यकता पूर्ति हो जाती थी। अनाज पैदा करने वाले पौधे संभवतया और बाद में विकसित हुए।

वनस्पति विकास के बाद जीव ने आगे की विकास यात्रा का भी प्रयास किया। एकेन्द्रिय जीव में सभी इन्द्रियों का बोध तो होता है परंतु उनका आकार नहीं बनता। अत: जीव ऐसे शरीर का निर्माण करना चाहेगा कि उसकी इंद्रियाँ विकसित हो सके। ऐसे बहुइन्द्रिय शरीर के लिए उन्नत प्रकार के जीन की आवश्यकता होगी। इस प्रकार के जीन विकास में निम्न तथ्य सहायक हो सकते हैं।

1. ज्ञान। प्रत्येक जीव की आत्मा में ज्ञान उपलब्ध है। यह जीन परिवर्तन और संशोधन में सक्षम है।
2. जीवों में समूह चेतना। डीएनए के माध्यम से जीवों में परस्पर सम्पर्क की क्षमता और एक प्रकार की समूह चेतना पाई गई हैं। जैन आगम के अनुसार जीव की 84 लाख योनियां है। इन योनियों का लोप नहीं होता। यदि एक स्थान विशेष (या पृथ्वी) पर किसी प्रजाति (योनि) का लोप हो जाता है तो भी यह लोक (या जम्बूद्वीप) में अन्य पृथ्वी पर उपलब्ध रहती है दो स्थान विशेष के जीवों में आत्मिक संपर्क बना रहता है चाहे वे स्थान कितनी ही दूरी पर हों। संभव है यह संपर्क भी जीन परिवर्तन में सहायक हो । निम्न स्तर के जीवों में

ऐसा संपर्क अपेक्षाकृत स्पष्ट होता है और शायद प्रयोजनपूर्ण भी जैसे कि बैक्टेरिया में पाया गया है।

3. डीएनए योग्य पौद्गलिक पदार्थ की उपलब्धि। जीन संशोधन / परिवर्तन के लिए जिन पुद्गल अमीनों अम्ल की आवश्यकता है वह उपलब्ध होना चाहिए।

उपरोक्त कारणों से द्वीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति संभव हुई होगी। इन जीवों के विभिन्न प्रकार के शरीर नामकर्म के उदय से बनते हैं। नामकर्म में वह सब सूचना और निर्देश रहते हैं जो जीव के जीन को कर्मो के अनुसार शरीर निर्माण के लिए प्रेरित करते हैं। जीव विकास की प्रक्रिया उर्ध्व दिशा में (Vertical) और समानान्तर प्रसार (Horizontal) दोनो दिशाओं में संभवतया साथ-साथ चली। अर्थात् एक समय में एक ही स्तर की नई-नई प्रजातियाँ विकसित हुई और साथ ही साथ स्तर विकास भी हुआ है। जीव विकास के इस दौर में डारविन का स्वाभाविक वरण का सिद्धान्त कुछ सीमा तक सफल हो सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीव अपनी पुनरावृति की सफलता हेतु संघर्ष में अपनी विकास प्रणाली में परिवर्तन की वह कूंजी ढुंढता है जिससे वह बदले वातावरण में अपनी जाति की रक्षा कर सके। यह सिद्धान्त शारीरिक संरचना तक ही सीमित है, जीव के गुण उसके कर्मो पर अधिक निर्भर करते हैं।

जीव विकास में कार्मण शरीर की महत्वपूर्ण भूमिका है। पहले कहा गया है कि कार्मण शरीर लेजर के समान गुण वाले कोहेरेन्ट विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा पदार्थ कार्मण वर्गणा से बना है। कार्मण शरीर में जीवन की सभी स्मृतियां सूचना रूप में संग्रहित रहती हैं। कार्मण शरीर की यह विशेषता है कि उसके प्रत्येक प्रदेश में सभी स्मृतियां रहती हैं अर्थात् सम्पूर्ण कार्मण शरीर में वही स्मृतियां हैं जो उसके एक प्रदेश में उपलब्ध है। कार्मण शरीर का यह गुण होलोग्राम के गुण से मिलता जुलता है। होलोग्राम में भी उसके प्रत्येक हिस्से में लेजर प्रकाश के पैटर्न रूप में पूरे होलोग्राम की सूचना रहती है। होलोग्राम सूचना संग्रहित करने का एक घना माध्यम है, उसके एक घन सेंटीमीटर फिल्म में 10 अरब सूचनाएं संग्रहित हो सकती है जो एक औसत मस्तिष्क अपने पूरे जीवनकाल में एकत्रित करता है। इसी प्रकार एक कार्मण शरीर में अनेक जन्मों की सूचनाएं संग्रहित रहती हैं। जिस प्रकार एक होलोग्राम सूचनाओं को कोड और डिकोड करने में दक्ष होता है उसी प्रकार कार्मण शरीर भी - सूचनाओं को प्रकृति के अनुसार कोड और डिकोड सहजता से कर लेता है। कार्मण शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकृति की सूचनाओं को भिन्न-भिन्न कर्मों जैसे

ज्ञानावरण आदि के रूप में जाना जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चेतना हमारे शरीर के होलोग्राम में परिवर्तन कर सकती है अत: यह सिद्ध होता है कि चेतना कर्मों को कोड करने के बाद उनमें परिवर्तन भी कर सकती है जिसको कर्म संक्रमण कहा गया है। कर्मों का उदय होना कर्म सूचना का डिकोड होना है। जिस काल में जो स्मृतियां डिकोड होती हैं उनकी सूचना कार्मण शरीर से बाहर आने वाले स्पंदनों में निहित रहती है। ये सूचनाएं उस काल विशेष में चेतना के व्यक्त ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती हैं और अपने प्रवाह के मार्ग में तैजस शरीर तथा औदारिक शरीर से प्रतिक्रिया करती हैं। तैजस शरीर से प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जीव के भावों और विचारों का निर्माण होता है और तदनुसार अंत:स्त्रावी ग्रंथियों से स्राव होता है। औदारिक शरीर से प्रतिक्रिया से डी एन ए के माध्यम से बायो फोटोन का उत्सर्जन होता है जो कोशिका की विभिन्न रसायनिक क्रियाओं का संचालन और नियंत्रण करता है। इस प्रकार कार्मण शरीर सभी शारीरिक मानसिक और भावनात्मक क्रियाओं का कारण है। चेतना जिस प्रकार कार्मण शरीर में सूचना संग्रह करती है उसी प्रकार वह सूचना को स्मृति से हटा भी सकती है और इस प्रक्रिया को कर्मक्षय कहा जाता है। यह माना जा सकता है कि दीर्घकाल अवधि में डी एन ए में मूलभूत परिवर्तन होने से जीव विकास की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। मूलत: जीव विकास चेतना के उस मूल गुण के कारण होता है जिसके द्वारा वह अपने कर्मों का क्षय कर शुद्धत्व को प्राप्त करना चाहता है। इस इच्छा के कारण जीव उत्तरोतर उन्नत योनि धारण करना चाहता है और इसके लिए वह डी एन ए में आवश्यक परिवर्तन/संशोधन करने का प्रयास करता है।

7.8.1 जन्म और गर्भकाल

जीव के जन्म और गर्भ विकास के लिए तीन मुख्य आवश्यकताएं है।

1. डीएनए। डीएनए एक पौद्गलिक रचना (हार्डवेयर) है जिस पर जीव शारीरिक विकास हेतु आवश्यक सूचना (सॉफ्टवेयर) संग्रहित कर सकता है और इन सूचनाओं का प्रयोग कर पौद्गलिक शरीर का निर्माण कर सकता है।
2. कोशिका। कोशिका जीव की प्रारंभिक योनि है और शरीर की सबसे छोटी इकाई हैं। इसके बहुगुणन से ही शरीर की रचना होती है। डीएनए कोशिका में स्थित हेाता है और इसमें संग्रहित सूचना के अनुसार ही कोशिका का व्यवहार होता है।
3. गर्भाशय। कोशिका से शरीर विकास के लिए उपयुक्त गर्भाशय (कोख) आवश्यक है। योग्य गर्भाशय में ही जीव को पोषण, सुरक्षा और विकास की सुविधा प्राप्त होती है।

हर प्रजाति के जीव के डीएनए में भिन्नता होती है। एक विशेष डीएनए में उस प्रजाति से संबंधित विशिष्ट प्रकार की सूचनाएं संग्रहित होती हैं। ये सूचनाएं जीव के कार्मण शरीर में उपलब्ध रहती हैं। जैन दर्शन में जीव की जन्म प्रक्रिया का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया गया है। जीव का प्रथम स्नेह आहार पुरूष के स्नेह शुक्र और नारी के ओज-रज के मिश्रण से प्राप्त होता है। अर्थात जीव के प्रथम कोशिका अपने मातपिता के शुक्र और रज के संयोग से प्राप्त होती है। इस प्रथम कोशिका में जो डीएनए बनता है उसमें माता और पिता दोनों के गुण विद्यमान होते हैं। इसके बाद जीव ओज आहार करता है। जन्म के प्रथम समय में शरीर आदि प्रवृतियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण को ओज आहार कहा गया है। मेरा मानना है कि यह ओज आहार कार्मण शरीर से लिया जाता है। ओज आहार का अभिप्राय यह है कि जीव के कार्मण शरीर में उपलब्ध सूचना का माता-पिता से प्राप्त कोशिका में स्थानान्तरण हो जाता है। कार्मण शरीर कोहेरेन्ट विद्युत चुम्बकीय फील्ड रूप में है और इसमें संग्रहित सूचना उपयुक्त विधि से डीएनए में रिकार्ड हो जाती है। संभवतया कार्मण शरीर से आने वाली सूचना डीएनए के उस 90 प्रतिशत भाग में रिकार्ड होती है जिसे वैज्ञानिक कूडा भाग मानते हैं। अन्य 10 प्रतिशत भाग में प्रोटीन निर्माण संबंधी सूचना रहती है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप डीएनए में जीव के शरीर संबंधी सभी विशिष्ट सूचनाएं उपलब्ध हो जाती है और पूरे शरीर निर्माण की योजना रहती है। इस क्रिया केा पर्याप्ति कहा गया है। पर्याप्ति में वे सब निर्देश रहते है जो यह निर्धारित करते कि जीव के आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छास, भाषा और मन (द्रव्य) संबंधी तंत्र का निर्माण हेाना है या नही होना है। यह सब जीव के प्रथम अन्तर्मुहूर्त यानि जन्म के बाद कुछ मिनटों में सम्पन्न हो जाता है अर्थात कुछ ही मिनटों में संशोधित डीएनए तैयार हो जाता है जिसमें जीव के पूरे जीवन काल के लिए शरीर निर्माण की योजना रहती है।

कार्मण शरीर में कर्म के दो वर्ग हैं धाति कर्म और अघाति कर्म। वेदनीय, आयु, नाम, और गोत्र अघाति कर्म है। इन कर्मो की सूचना ,जो औदारिक शरीर से संबंध रखती है, डीएनए में रिकार्ड होती है। नाम कर्म निर्धारित करता है कि किस प्रकार के गति और जाति के जीव का जन्म हो रहा है और इस गति और जाति के योग्य शरीर की रचना होनी है। नाम कर्म ही निर्धारित करता है कि जीव के कैान-कौन से शरीर बनने हैं, कौन-कौन से अंग-उपांग शरीर में कहाँ-कहाँ और किस प्रमाण में बनने है, शरीर में क्या-क्या विशेषताएं होगीं आदि-आदि। आयु कर्म

कोशिका विभाजन की कुल समयावधि निर्धारित करता है और वेदनीय कर्म कोशिका विभाजन प्रक्रिया में डीएनए में होने वाली गलतियों सें संबंध रखता है। वैज्ञानिक मानतें है कि कोशिका विभाजन में होने वाली गलतियाँ शरीर में कई प्रकार के रोग का कारण बनती हैं। गौत्र कर्म से माता-पिता से प्राप्त होने वाली वंशानुगत विशिष्टताएं निर्धारित होती हैं। इस प्रकार अघाति कर्म जीव के शरीर संबंधी सभी प्रक्रियाओं का नियंत्रण करते हैं। ये प्रक्रियाएं जन्म से प्रारम्भ होकर जीवन प्रर्यन्त चलती रहती हैं। जैसा कि पूर्व में बताया गया था कार्मण शरीर से जैव फोटोन के रूप में होने वाला जैव प्रकाश कोशिका में होने वाली रसायनिक और अन्य क्रियाओं का नियंत्रण करता है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म घाती कर्म हैं। इन कर्मों के क्षयोपशम और उदय के अनुसार जीव के अध्यवसाय और लेश्या बनते हैं और ये जीव के गुणों , विशिष्टताओं और व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। लेश्या के अनुरूप जीव के भाव बनते है और भाव के आधार पर विचार होते हैं। भाव, विचार और मस्तिष्क में संग्रहित सूचना मिलकर जीव के व्यवहार के आधार बनते हैं। जीव के भाव कर्म आधारित हैं और क्योंकि सभी जीवों के कर्म अलग-अलग होते हैं, इसलिए जन्म से ही सभी जीवों के व्यवहार में भिन्नता होती है।

सभी अमनस्क प्राणियों का गुणस्थान प्रथम हेाता हैं। मनुष्य का गुणस्थान जन्म के समय प्रथम से लेकर चौथे तक हो सकता है। सभी मिथ्या दृष्टि मनुष्यों का गुणस्थान प्रथम होगा परन्तु सज्जन पुरूषों का गुण स्थान तीसरा भी हो सकता है। प्रत्येक गुणस्थान में जधन्य और उत्कृष्ठ स्तर माना जा सकता है और जीव के अपने-अपने कर्मो के अनुसार उसका गुणस्थान होता है। महापुरूषों का जन्म से ही चौथा गुणस्थान हो सकता है, ऐसे महापुरूष सम्यक् दृष्टि होते है और जन्म से ही अन्य मनुष्यों से अलग दिखाई देते हैं। भगवान महावीर को जन्म से ही अवधिज्ञान था अत: यह माना जा सकता है कि वे जन्म से ही उत्कृष्ट चतुर्थ गुणस्थान में थे। बाल्य काल में ही व्रती जीवन से वे पंचम गुणस्थान में पहुँचे और सन्यास के साथ छठे और सातवें गुणस्थान में पहुँच कर आगे अर्हंत बन गये । मोक्षगामी सभी जीवों को चौथें से तेरहवें और अन्ततोगत्वा चौदहवें गुणस्थान तक की यात्रा एक ही जीवनकाल में करनी होती है।

7.8.2 जीव का ऊर्ध्वारोहण

जीव विकास को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है-(1) इन्द्रिय विकास (2) मानसिक विकास और (3) भावनात्मक विकास जैसा कि

चित्र 7.1 में दिखाया गया है। यह जीव का ऊर्ध्वगामी विकास है। इन्द्रिय विकास शरीर आधारित है और मुख्यत: डी.एन.ए. विकास से प्रभावित होता है। दूसरा चरण मानसिक विकास सूक्ष्म शरीर आधारित है और जीन संरचना से विशेष प्रभावित नहीं होता। जो विकास प्रक्रिया इन्द्रिय विकास चरण में चल रही थी वह अब मानसिक विकास में उपयोगी नहीं होती।

मानसिक विकास के लिए योग्य शरीर की आवश्यकता होती है। इसलिए अपृष्ठवंशीय शरीर की जगह जीव ने पृष्ठवंशीय शरीर का निर्माण किया। इस प्रकार के शरीर में स्नायुतंत्र की व्यवस्था होती है जिससे मानसिक विकास संभव होता है। मानसिक विकास के दौर में जीव विभिन्न प्रकार की तिर्यंच योनियाँ धारण करता है और अंत में मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। जीन संरचना की दृष्टि से मनुष्य योनि चिपांजी और गौरिला से बहुत भिन्न नहीं है परंतु मानसिक स्तर की दृष्टि से मनुष्य की इन जीवों से कोई तुलना नहीं हैं। प्रश्न है कि तो क्या मनुष्य योनि क्रम विकास में चिपांजी से विकसित हुई? पुरातात्विक साक्ष्य को ध्यान में रखने से हम सोच सकते हैं कि ऐसा नही हुआ। मनुष्य का उद्‌भव बंदर से नहीं हुआ। जैन दर्शन में मनुष्य गति तिर्यंच गति से अलग मानी गई है और इसलिए मनुष्य उत्पत्ति की विधि वहीं नहीं होगी जो तिर्यंच के लिए है।

संभावना यही है कि मनुष्य लोक में अन्य पृथ्वियों से यहाँ आये। पूर्व में में बताया गया था कि पृथ्वी पर ऐसे बहुत साक्ष्य उपलब्ध है जो इस बात की पूष्टि करते हैं कि प्राचीन काल में उन्नत स्तर की सभ्यता इस पृथ्वी पर विद्यमान थी। कुछ प्रलयकारी और विध्वंसकारी कारणों से उस सभ्यता का लोप हो गया। संभावना है कि देवी स्तर की आत्माओ के आगमन से मनुष्य का पृथ्वी पर उद्‌भव हुआ। यह भी हो सकता है कि ये आत्माएं ही उच्च स्तरीय संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के भी पृथ्वी पर जन्म का कारण बनी। यह भी संभव है कि कुछ नारकी आत्माओं ने इस पृथ्वी पर संज्ञी पशु रूप में जन्म लिया। यह माना जा सकता है कि इन्द्रिय विकास प्रक्रिया से बनने वाले जीव और नारकी जीव मांसाहारी थे और देवी आत्माएं शाकाहारी थी। मनुष्य स्वाभाविक तौर पर शाकाहारी ही है वह परिस्थितिवश मांसाहारी बना होगा।

प्रश्न हो सकता है कि इन्द्रिय विकास चरण के बाद ही देवी आत्माओं ने पृथ्वी पर आगमन क्यों किया, पूर्व में क्यों नहीं। इसका कारण है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के विकास क्रम के बाद ही पृथ्वी पर परिस्थितियाँ उच्च स्तर के तिर्यंच और मनुष्य के अनुकूल बनी। इन जीवों की निम्न आवश्यकताएं है।

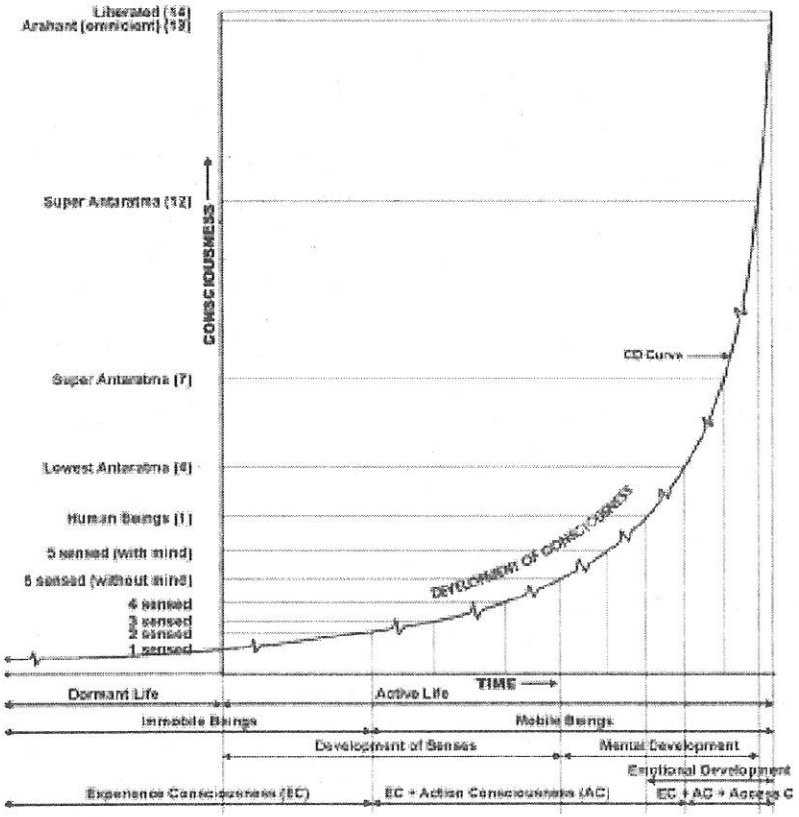

चित्र 7.1 चेतना का विकास

1. उचित वातावरण। अनुकूल वायुमंडल, अंतरिक्ष दुष्प्रभाव से सुरक्षा और उपयुक्त आहार की उपलब्धता।

2. संतुलित वातावरण। विभिन्न प्रजाति के जीव पृथ्वी के जैविक वातावरण को संतुलित रखते हैं। एक जीव दूसरे जीव का भक्षण करता है और इस प्रकार जीव की कोई भी प्रजाति अति हानिकारक स्तर तक नहीं पहुँच पाती है। यह तभी संभव है जब सब प्रकार की प्रजातियाँ विकसित हो गई हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि पृथ्वी पर जीव का इन्द्रिय विकास हो जाने के उपरान्त आत्म पुरूषार्थ और देवी अनुकम्पा से मानसिक विकास का अवसर उपलब्ध हुआ। देवी आत्माएं उपयुक्त योनि का निर्माण करने में सक्षम होती है और उन्होंने ही स्त्री और पुरूष योनि का निर्माण किया होगा।

प्रश्न हो सकता है जीव की 84 लाख योनियाँ ही क्यों है? जैसा कि पूर्व में कहा गया है जीव का लक्ष्य चेतना की शुद्धता है। अशुद्धतम अवस्था से प्रारम्भ होकर जीव चेतना के कई स्तरों से गुजरता है। चेतना के हर स्तर पर जीव यह चाहता है कि उसे ऐसा शरीर प्राप्त हो जिससे वह अधिक से अधिक उपलब्धि कर सके। इस प्रकार चेतना के किसी एक स्तर के लिए विशिष्ट प्रकार के शरीर को एक ऑप्टीमम डिजाइन माना जा सकता है अर्थात् उस स्तर की चेतना के लिए वह शरीर ऐसा है जिससे कम से कम ऊर्जा व्यय से अधिक से अधिक क्रिया क्षमता और अधिकतम सुरक्षा प्राप्त होती है। प्रकृति की दृष्टि से चेतना की अशुद्धतम स्तर से उच्च स्तर तक 84 लाख ऑप्टीमम डिजाइन वाले शरीर सम्भव हैं। शरीर की इन डिजाइनों में कृत्रिम विधि से परिवर्तन कठिन होगा इनमें थोड़ा बहुत हेर फेर सम्भव हो सकता है जैसे घोड़ो और गधों के बीच की नस्ल खच्चर के रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रत्येक जीव का शरीर प्रकृति की एक अनुपम देन है, जीव की क्षमता और सामर्थ्य का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

मनुष्य पर्याय उपलब्ध हो जाने के बाद जीव की आगे की विकास यात्रा मानसिक विकास और भावनात्मक विकास की है और यह कर्मो के क्षपोपशम से होती है। मनुष्य में कर्मफल चेतना और कर्म चेतना दोनों है परन्तु क्षयोपशम के साथ धीरे-धीरे कर्म चेतना प्रमुख होती जाती है।

कर्म चेतना के विस्तार से मनुष्य में विवेक जागृत होता है और उसे हित-अहित का ज्ञान होने लगता है। सम्यक ज्ञान होने पर वह अपने निज स्वरूप को पहचानने लगता है। उसको समझ मे आ जाता है कि यह संसार नहीं आत्म परिष्कार

ही उसका सही लक्ष्य है। यहाँ से उसकी ज्ञान चेतना विकसित होने लगती है और जीव भावनात्मक विकास यात्रा का शुभारम्भ करता है। भावनात्मक विकास का अर्थ भाव संवेदना नहीं है। भाव संवेदना तो वनस्पति में भी होती है और अच्छी विकसित होती है। भावनात्मक विकास का तात्पर्य कर्मो का क्षय और आत्म समीपता है। जीव अब अपना पुरूषार्थ कर्मो के क्षय के लिए करता है और अपनी चेतना को निर्मल बनाने का उपक्रम करता है। जैसे जैसे उसकी चेतना निर्मल होती है उसकी आत्मीयता का विस्तार होता है। वह अब अपने परिवार की सीमा से परे जाकर समाज और समस्त प्राणियों में आत्मीयता देखता है। आत्मवत सर्वभूतेषु घटित हो जाता है। आत्मीयता का विस्तार ही बंधन से मुक्ति है। इन्द्रिय विकास को औदारिक शरीर विकास, मानसिक विकास को तैजस शरीर का विकास और भावनात्मक विकास को कार्मण शरीर का विकास माना जा सकता है।

चेतना की विकासदर चेतना के स्तर पर निर्भर करती है। चेतना कम होती है तो विकास दर भी कम होती है और चेतना अधिक होने पर चेतना विकास भी तेजी से होता है। जीव की इन्द्रिय विकास अवस्था में व्यक्त चेतना कम होती है और इसलिए विकास भी धीमी गति से होता है। ज्ञान चेतना विकसित होने पर चेतना तेजी से विकास करती है। परन्तु आध्यात्मिक प्रगति की आगे की यात्रा भी खतरों से खाली नहीं है। पग-पग पर बाधाएं उपस्थित होती हैं और मनुष्य को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। जो मनुष्य दृढ़ संकल्प शक्ति, साहस और परम पुरूषार्थ से इन विषम परिस्थितियों को सहन कर बाधाओं को पार कर लेता है वह अशुद्धता को कम करते हुए उत्कृष्ट अंतरात्मा और अन्ततः शुद्ध चेतना स्तर के परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है। सिद्ध अवस्था में जीव बिना शरीर के अपने निज आत्मरूप में रहता है, अब पुद्गल के साथ उसका कोई संबंध नहीं रहता। यह एक निरपेक्ष अवस्था है जहाँ जीव सतत पूर्ण सत्य का अनुभव करता है और समस्त लोक को निरपेक्ष रूप से जानता है।

चित्र 7.1 में समय और चेतना के लिए किसी माप का प्रयोग नहीं किया गया है। जीव को एकेन्द्रिय अवस्था से द्वीन्द्रिय अवस्था तक पहुँचने में अरबों वर्ष का समय लग सकता है आगे की इन्द्रिय विकास के लिए समय क्रमशः कम होता जाता है। यह क्रम चित्र में दिखाया गया है परन्तु विभिन्न समयावधि का अनुपात चित्र में दिखाये गये अनुपात से भिन्न है। इसी कारण विकास रेखा में जगह-जगह कटाव दिए गये हैं। जीव विकास के विभिन्न स्तर पर चेतना की जो शुद्धता दिखाई

गई है वह व्यक्तिगत विचार है, पाठक स्वयं अपने स्तर पर आंकलन के लिए स्वतंत्र हैं। चित्र में नारकी और देव योनियों का समावेश नही है क्योंकि इन दोनो प्रकार के जीवों का शरीर वैक्रियिक होता है और उनका गुणस्थान भी चार से अधिक नहीं होता।

शब्द कोष

अकर्म भूमिज मनुष्य	अकर्म भूमि में वास करने वाले(कल्पवृक्षों पर आधारित) मनुष्य
अगुरूलघु	शुद्ध द्रव्य का गुण जिससे सहअवकाश अवस्था में भी सभी द्रव्य अपना-अपना पृथक अस्तित्व और आकार बनाये रखते हैं।
अजीव	चेतना रहित द्रव्य
अढाई द्वीप	जम्बुद्वीप, धातकीखण्ड और मानुषोतरपर्वत तक आधा पुष्करवर द्वीप
अणु	विज्ञान में एटम,
अणुकुल	विज्ञान में मोलिक्यूल।
अधर्म(अधर्मास्तिकाय)	स्थिति माध्यम द्रव्य
अधोलोक	नरक लोक (लोक में नीचे स्थित)
अध्यवसाय	कार्मण शरीर से बाहर आने वाले स्पंदन
अनंत	असंख्यात से एक आदि अधिक
अनंतानंत	अनंत गुणा अनंत
अंप्काय	जलधारी जीव
अपरत्व	अर्वाचीन, नया
अपरा	शिशु की भोजन नली
अपरिग्रह	संग्रह नहीं करना
अपर्याप्त	पर्याप्ति रहित (शरीर मूलक शक्तियों की अपूर्णता)
अप्रतिधाती	जिनका प्रतिधात (स्पर्श) संभव नहीं
अभव्य	वे जीव जो मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते
अमनस्क	मन रहित
अमूर्त	अरूपी , आकार रहित, अभौतिक
अयोग केवली	योग रहित केवली जीव, 14 वाँ गुणस्थान
अरूपी	बिना आकार , अजीव , अभौतिक
अलोक	लोक से परे अनंत आकाश
अवगाहन	स्थान ग्रहण करना
अवसर्पिणी काल	काल चक्र का वह अर्द्ध भाग जिसमें शुभ भाव क्रमशः क्षीण होते हैं और अशुभ भाव वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

अव्यवहार राशि	नित्य निगोद जीव, जीवों का मूल अक्षय भंडार
अष्टस्पर्शी	आठ स्पर्श गुण सहित
असंख्यात	संख्यात से एक आदि अधिक
असंज्ञी	मन रहित
असि	शस्त्र (विद्या)
अस्तिकाय	विस्तारित अस्तित्व
आकाशास्तिकाय	आकाश का विस्तारित अस्तित्व
आत्मा	जीव तत्व
आवलिका	समय की छोटी इकाई
आस्रव	कर्म वर्गणा का शरीर में प्रवेश
आहार वर्गणा	पाँचवी वर्गणा
उत्कृष्ट	अधिकतम
उत्सर्पिणी काल	काल चक्र का वह अर्द्ध भाग जिसमें शुभ भाव क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते है और अशुभ भाव क्रमशः क्षीण होते हैं।
उर्ध्वलोक	स्वर्ग लोक ,(लोक में ऊपर स्थित)
उद्योत	पुद्गल स्कधों से उत्सर्जित शीत विकिरण
उपयोग	जीव की चेतना शक्ति का उपयोग
उपादान कारण	वह कारण जो स्वयं ही कार्य रूप में परिणत हो जाता है।
ओज आहार	ऊर्जा (प्रकाशीय) आहार
ओदयिक भाव	कर्म उदय से उत्पन्न भाव
औदायिक शरीर	स्थूल शरीर
अंतर्मुहूर्त	48 मिनट से कम समय
कवलाहार	मुँह से लिया जाने वाला आहार
कार्मण वर्गणा	वह वर्गणा जिससे कार्माण शरीर बनता है
कार्मण शरीर	वह सूक्ष्म शरीर जिसमें कर्म (संस्कार) रहते हैं
कालाणु	एक आकाश प्रदेश पर स्थित काल परमाणु
कुमानुष	ऐसा मनुष्य जिसका सिर पशु से मिलता हो
गुण स्थान	जीव के आत्म विकास का स्तर
धडी	24 मिनट की समयावधि
चतु:स्पर्शी	चार मूल स्पर्श गुण सहित, भारहीन
चरित्र	संयमित जीवन

जद्यन्य	न्यूनतम
जम्बूद्वीप	मध्यलोक में स्थित द्वीप जिसमें हम रहते हैं
जीवास्तिकाय	जीव के आत्म प्रदेश
ज्योतिष्क देव	आकाशीय देव (सूर्य, चंद्र आदि)
तिर्यक्लोक	मध्यलोक जिसमें मनुष्य, पशु आदि जीव रहते हैं।
तिर्यंच	पशु एंव वनस्पति
तैजस वर्गणा	7 वीं वर्गणा
तैजस शरीर	तैजस वर्गणा से बना सूक्ष्म शरीर (प्राण शरीर)
दर्शन	वस्तु का सामान्य ज्ञान,
द्रव्य	सत् वस्तु
देश	वस्तु का एक भाग
धर्म (धर्मास्तिकाय)	गति माध्यम द्रव्य
धातकी खण्ड	जम्बू द्वीप के समीप पहला द्वीप
ध्रुव	स्थायी
द्यौव्य	स्थार्यीत्व
निगोद	स्थावर (एकेन्द्रिय) जीव , निम्नतम स्तर का जीव
निमित्त	सहकारी कारण
निश्चय	निरपेक्ष
परत्व	पूर्व, पुराना
पर्याप्त	पर्याप्ति शक्तियों का पूर्ण हो जाना
पर्याय	द्रव्य की अन्य अवस्था
परमाणु	पुद्गल का सूक्ष्मतम रूप जिसके विभाग नहीं हो सकते
परिणाम	अवस्था परिवर्तन, परिवर्तित अवस्था
पल्य ,पल्योषम	समय का माप (असंख्यात समय)
पुद्गल	भौतिक पदार्थ (और ऊर्जा)
पुष्कर द्वीप	जम्बूद्वीप के निकट दूसरा द्वीप
प्रत्येक वनस्पति	एक जीवधारी वनस्पति
प्रत्येक शरीर वर्गणा	17 वीं वर्गणा, प्रत्येक वनस्पति से संबंधित वर्गणा
प्रदेश	एक परमाणु पुद्गल द्वारा अवगाहित आकाश क्षेत्र
प्रभा	पुद्गल स्कधं से उत्सर्जित विकिरण का तापीय गुण
प्रमतसंयत	प्रमाद युक्त संयम
प्रायोगिक	प्रयोग जन्य

बादर	बडा, वृहद
बादर निगोद जीव	अपेक्षाकृत बडे एकेन्द्रिय जीव
भरत क्षेत्र	जम्बूद्वीप का क्षेत्र जिसमें हम रहते हैं।
भव्य जीव	वे जीव जो मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं
भारी	पुद्गल का एक आपेक्षिक स्पर्श गुण
भाषा वर्गणा	9 वीं वर्गणा, भाषा से संबंधित वर्गणा
मध्य लोक	लोक का मध्य भाग जिसमें द्वीप सागर स्थित हैं
मनोवर्गणा	11 वीं वर्गणा , जिससे द्रव्य मन बनता है।
मसि	लेखा, लेखन विद्या
महास्कंध वर्गणा	23 वीं वर्गणा जिससे स्थूल पदार्थ की रचना होती है
मिथ्यादृष्टि	मिथ्या धारणा वाला प्राणि (जो शरीर को जीव मानता है।)
मुहूर्त	48 मिनट की समयावधि
मूर्त	भौतिक
मृदु	पुद्गल का एक आपेक्षिक स्पर्श गुण
योग	वृति, क्रिया
योजन	दूरी का माप, लगभग 8 मील (4 कोस)
राजू	बहुत विशाल दूरी का माप(लोक के संदर्भ में प्रयुंक्त)
रूपी	आकार सहित , भौतिक
रूक्ष	पुद्गल का एक मूल स्पर्श गुण, ऋण आवेश का मूल
रोम आहार	चर्म के माध्यम से ग्रहण किया गया आहार (प्रकाश आदि)
लब्धि- वीर्य	विशेष आत्म शक्ति
लेश्या	तैजस शरीर से प्रवाहित स्पदंन (भाव जन्य स्पंदन)
लोक	आकाश का वह भाग जिसमें षट्द्रव्य स्थित हैं
वर्गणा	समान परमाणुओं का समूह, सूंक्ष्म स्कंध
वर्तना	द्रव्यों का सूक्ष्म परिणमन
वातवलय	लोक को वेष्टित करती हुई आकाशीय परतें
विकलेन्द्रिय जीव	एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव
विग्रह गति	जीव की दो पर्याय के मध्य की अवस्था
वीर्य	आत्म शक्ति
वैक्रिय शरीर	अदृश्य तरल शरीर
वैस्रसिक	स्वाभाविक , प्राकृतिक
स्पेस	पुद्गल से प्रभावित आकाश, लोकाकाश, आकाश की पर्याय

शब्द अनुक्रमणिका

अकर्ता 10
अकारण 10
अक्रिया 9
अगुरुलघुत्व 5, 249
अगुरुलघु नाम कर्म 220
अग्राह्य वर्गणा 101,102
अचेतनत्व 5
अजीव 9, 249
अढ़ाई द्वीप 144,189,249
अणु वर्गणा 100
अतास गुटु 173
अध्यवसाय 121,249
अधर्म, अधर्मास्तिकाय 14,249
अधोलोक 133, 138, 187, 190, 149
अनित्य 9
अनिवृत्तिकरण 225
अनुभव चेतना 85
अनेक रूप 9
अनंताणु वर्गणा 101
अपकाय 71,249
अपरिणामी 8
अपर्याप्ति नामकर्म 222
अपूर्वकरण 225
अपृष्ठवंशीय 87
अप्रदेश 9
अप्रमतसंयत 224
अप्रवेश 10
अब्दुस सलाम 51
अमीनो अम्ल 195
अमूर्त 9, 249
अमूर्तत्व 5
अमूर्त द्रव्य 13
अयशः नाम कर्म 222
अयोग केवली 226, 249
अलोक, अलोकाकाश, 15, 249
अवगाहना हेतुत्व 6
अवसर्पिणी 145, 144, 249
अशुभ नाम कर्म 221
अस्तित्व 4
अस्थिर नाम कर्म 222
असर्वगत 10
असंख्याताणु वर्गणा 100
असंयत सम्यग्दृष्टि 224
अहमिन्द्र 147
अक्षेत्र 9
अंगोपांग नाम कर्म 218
आइन्स्टीन 19–26,170–172,176,186 188,190
आई.एस.श्लोकोव्सकी 177
आकाश,आकाशास्तिकाय 15, 186, 187, 250
आकाशगंगा 158, 159, 183, 185
ऑकीपीटल लोब 234
आर्किया 90, 94
आचार्य वीरसेन 133
आटोट्रोपिक 124
आत्मा 63, 250
आतप 43
आतप नाम कर्म 220
आदेय नाम कर्म 222
आनुपूर्वी नाम कर्म 220
आभामण्डल 118
आयरन सल्फाइड सिद्धान्त 197
आर्य 146
आर्यखंड 149
आर.एन.ए. 196
आहार वर्गणा 101,114,250
आहारक वर्गणा 99
इगनासी रिबास 164
इन्द्र 196
इन्सुला 234

इनलेशन मॉडल 173
इरविन लाजलो 87
इलेक्ट्रोन 45,46,112
ई–कोलाई 199
ईथर 25,26
उच्छ्वास नाम कर्म 220
उड़न तश्तरी 176,180
उत्पत्तिस्थान 82
उत्सर्पिणी 142,144, 250
उत्तर कुरू 144,145,150,154
उत्तरगुण 8
उर्ध्व लोक 133, 147, 187, 190, 250
उद्योत 43,250
उद्योत नाम कर्म 220
उपघात नाम कर्म 220
उपयोग 67,217, 250
उपशांत कषाय 225
ऊर्जा शरीर 120
ए.आई. ओपरीन 178
एक्स किरण तारा 169
एकत्व 7
एक रूप 9
ए.ग्राह्म एवं करम स्मिथ 197
एन्ड्रोमीडा 163,164,184
एमिगडला 234
एरिक फाम 177
एरिकवान डेनिकेन 181
एलाइल दुरखीम 87
एलेग्जेण्डर सेवेरस्की 180
एलेन आसपेक्ट 214
एंटानिमो दमासियों 87
ऐरावत 141
ओज आहार 81,250
औदारिक वर्गणा 99
अंतरात्मा 68
अंधकार 42
क्वाजर्स 169
क्वार्क 47, 113
क्वालिया 85
क्वांटम मन सिद्धान्त 86
क्वांटम मेकेनिक्स 51–53
क्वांटम सिद्धान्त 50
कर्कश स्पर्श 34,111
कर्त्ता 10
कर्म 121
कर्म चेतना 216,247
कर्मफल चेतना 216
कर्म भूमि 146
कल्पातीत 146
कल्पोपन्न 146
कवल आहार 81
काय योग 66
कार्माण वर्गणा 99, 102, 121
कार्ल प्राइब्राम 215
कार्ल लेशाली 215
कारण 10
कार्दाशेव 178
कारलो रूबिया 51
काल, काल द्रव्य 17
काल चक्र 142,144
कालाणु 19
कालोदक समुद्र 153, 154
क्रिया 9
क्रिस किंग 86
कीथ लायड़ 216
कुमानुष 154
केम्ब्रिज विश्वविद्यालय 179
कोरोना 157
कोलिन मेक़गिन 86
कोशिका 89
क्रोमोस्फीयर 157
गतिनाम कर्म 218
गति हेतुत्व 6
गर्भ विज्ञान 81
गर्भाशय 242
ग्रह 152

गुण 4, 10
गुणस्थान 222, 250
गुरुत्वाकर्षण बल 49,52,129
ग्रेगर मेन्डिल 202
गोगारटन 203
गोम्मटसार 99
गंगा 141, 144
गंध 6,31,59
गंध नाम कर्म 220
चतुरिन्द्रिय 75
चन्द्र विक्रम सिंघे 198
चामर्स 86
चार्ल्स बी. थैक्सटन 199
चेतना 65,85,95,228–229
चेतनत्व 5
चंद्र 152,156–57
छाया 43
ज्याफे एनडीन 176
ज्वीकी 167
ज्योतिर्लोक 152
ज्योतिष्क 146, 152–53, 251
जम्बुद्वीप 138,141,145,148,152–53, 182–83,251
जाति नाम कर्म 218
जान एच वार्कर 180
जार्ज बर्कले 86
जीव 9, 63
जीवाणु 91, 198, 203
जीवाश्म 201–02
जीवों के पुद्गल परिवर्तन 39
जे.बी.एस. हालडेन 206
जेम्स जीन्स 166
जेम्स वाटसन 202
जैव प्रकाश 122
जैव विद्युत 115, 125
जोड्रेल वेधशाला 178
टेम्पोरल लोब 234
डार्क ऊर्जा 55, 170
डार्क पदार्थ 55, 170
डारविन 200, 202–7, 211, 240
डी.एन.ए. 199–200,202,214,241–42
डेनियल डेनेट 86
डेविड आर्मस्ट्रांग 86
डेविड बॉम 214
तमप्रभा 138
तारा 152, 168–70
तिर्यंच 69, 251
तीर्थंकर नाम कर्म 222
तीव्र नाभिकीय बल 44, 151, 128–29
तेजस् काय 71, 80
तेजस वर्गणा 99, 101, 117, 251
थॉमस गोल्ड 197
थॉमस यंग 56
दर्शन 13, 227, 251
द्रव्य 3,4,8,21–36,251
द्रव्यत्व 5
द्रव्यमान 53–55, 112–113
दिशाएं 16
द्वीन्द्रिय 74
दुर्भग नाम कर्म 221
दुःस्वर नाम कर्म 221
देव 70
देव कुरु 144–45, 151
धर्म, धर्मास्तिकाय 13–14, 251
घातकी खंड138, 145, 153–54, 184, 251
धूमप्रभा 138
ध्रुव तारा 152
ध्रुव वर्गणा 103
ध्रुव शून्य वर्गणा 104
न्यूक्लिक एसिड 196
न्यूटन 23,25,53,56
न्यूट्रीनों 46,112
न्यूट्रोन 45
न्यूट्रोन तारा 169
न्यूरोन 116
नक्षत्र 146,152

नामकर्म 218
नारक 69
नारकी 138
नारलीकर 198
नित्य 9
निर्माण नाम कर्म 219
नीहारिका 158,161–168,188–89
नैश्चयिक काल 17
पर्याप्ति 83, 251
पर्याप्ति नाम कर्म 222
पर्याय 6, 251
परघात नाम कर्म 220
परमहंस तिवारी 175
परमाणु 32, 42, 44, 107–12, 251
परमाणु की गति 38
परमाणु में गतिक्रिया 37
परमाणु में तारतम्य 36
परिणमन 43
परिणामी 8
पल्सर्स 169
प्रत्येक शरीर नाम कर्म 221
प्रत्येक शरीर वर्गणा 103, 112, 124, 251
पृथ्वी 155–57
पृथकत्व 7
पृथ्वीकाय 71
प्रदेश 32
प्रदेशत्व 5, 251
प्रभा 43, 251
प्रभामण्डल 161–62
प्रमत्त संयत 224, 251
प्रमेयत्व 5
प्रवेश 10
प्राण 84
प्रोकेरियोटिक 89
प्रोटोन 45, 47
पॉजीट्रान 45
पानस्परमिया सिद्धान्त 198
पायन 48
पॉल डिरेक 45
पॉल स्टुहार्ट 173,188
पीटर कोलोसिमो 177
पुद्गल, पुद्गलास्तिकाय 31–35
पुद्गल की विभाव पर्याय 40
पुष्करवर द्वीप 138, 145, 152–55, 251
पेरियेटल लोब 233
पोइनकेर 167
पंकप्रभा 138
पंचकोश 120
पंचेन्द्रिय 75, 79
पृष्ठवंशीय 87–88
फरमियॉन 48–49
प्रन्टल लोब 234
फायडमान 165
फ्रेड हायल (सर) 198, 210
फ्रांसिस क्रिक 179, 202
फील्ड थ्योरी 50
फोटोन 44–50
फोटोस्फीयर 157
बट्रेण्ड रसल 27
बरनार्ड बार्स 87
बल 48
ब्रह्मलोक 136
ब्रह्माण्ड 164–68, 170–75, 181
ब्रह्माण्डीय कान्स्टेंट 172
ब्रुक्स और शॉ 196
बाईबिल 177
बादर निगोद वर्गणा 104, 126
बालुका प्रभा 138
बिग बैंग 165–68,170,173,175
बुध 156
बुलबुला सिद्धान्त 173
बेक्टेरिया 91
बेरियॉन 47
बेसल गेंगलिया 234
बोसोन 49
बंध 41, 108–112, 130

बंध नाम कर्म 219
भवनवासी 146
भरत (क्षेत्र) 138,142,144,185,252
भारद्वाज 176
भारी स्पर्श 32, 34, 110, 252
भावनात्मक विकास 244, 247
भाष्ण वर्गणा 99, 101, 119, 252
भेद 42
भोग भूमि 144, 150, 152
म्लेच्छ 144–45, 149
मध्यलोक 138, 185, 187, 252
मन्द बल 49, 129
मन 120
मनुष्य 69, 78
मनोयोग 66
मनोवर्गणा 99, 102, 120, 252
मय सभ्यता 208
मस्तिष्क 231–36
महातम प्रभा 138
महास्कंध वर्गणा 105, 112, 252
माइकल फेरेडे 51
मानसिक विकास 244, 247
मानुषोत्तर पर्वत 145, 153
मार्गेनो 25
मार्टिन राइल 179
मारियो जुरिक 162
मिंकोवस्की 19
मिथ्यादृष्टि 223, 230, 252
मिलर और यूरे 195
मुनि महेन्द्र कुमार 136
मूर्त 9, 252
मूर्तत्व 5
मेक्सवेल 26, 51
मूल बल 128
मेरू पर्वत (सुमेरू) 150, 153
मेसन 48
मंगल 156
मृदु स्पर्श 32, 34, 111, 120, 252
यम 156
यशकीर्ति नामकर्म 222
यूकेरियोटिक 89
यूबेक्टेरिया 90
योग 66, 252
रत्नप्रभा 138
रम्यक 138
रशियन खोज 211
रस 6, 32, 58
रसनामकर्म 219
राइशन बाख 24
राजू 16,133–36, 252
रिचर्ड एक्सेल 59
रिलेटिविस्टिक वेलोसिटी 180
रेने डेसकार्ट 86
रोनाल्ड एन ब्रेस्वेल 180
रोबीन बरनार्ड 164
रोम आहार 81, 252
लवण समुद्र 138, 149, 153–54
लाल रेखा 165
लिंडा बी बक 59
लिबनीज 86
लिम्बिक सिस्टम 234
लुका टूरीन 59
लेपटॉन 46
लेस्त्री अगिल 179
लोक 133–36, 186
लोकाकाश 15, 252
व्यवहारिक काल 17
व्यंतर 146
वचन योग 66
वनस्पति, वनस्पतिकाय 72–76,231,235
वर्गणा 99, 106, 252
वर्गणाओं की उत्पत्ति 105
वर्गणा बल 130
वर्ण 6, 32, 56
वर्ण नाम कर्म 220
वर्तना 17–19

वर्तना हेतुत्व 6, 252
वरूण 156
वस्तुत्व 4
वातवलय 147, 252
वायरस 90, 93
वायुकाय 71
विकलेन्द्रिय 74,80, 232, 252
विकिरण ऊर्जा 172
विजयार्द्ध पर्वत 149
विदेह 138, 144, 151
विद्याधर 149
विद्युत चुंबकीय बल 44, 128
विभाग 7
विमान 146
विलियम मार्टिन 197
विशिष्ट सापेक्षता सिद्धान्त 20
विशेष गुण 5
विहायोगति नामकर्म 220
वीर्य 6, 252
वैक्रिय वर्गणा 99
वैमानिक 146
वोरटेक्स थ्योरी 176
श्याम विवर 170
श्वासोच्छ्वास वर्गणा 99
शनि 156
शब्द 40
शर्करा प्रभा 138
शरीर नाम कर्म 218
शुक्र 156
शुभ नाम कर्म 221
शून्य ऊर्जा 172, 175
शेल्डन ग्लाशो 51
शोला मित्स्की 178
षट्द्रव्य 4
स्कॉट चेपमेन 163
स्कंध 32, 33
स्टडी स्टेट थ्योरी 184
स्टीफन जे गोल्ड 203
स्टीफन हाकिंग 174
स्टीवन वीनबर्ग 51
स्ट्रींग थ्योरी 52
स्टेण्डर्ड मॉडल 53, 56
स्थावर जीव 80
स्थावर नामकर्म 221
स्थिति हेतुत्व 6
स्थिर नाम कर्म 222
स्थूल नाम कर्म 222
स्पर्श 6, 32
स्पर्श नाम कर्म 219
स्पिन 49
स्पेस 15, 32, 252
स्वर्ग 146–47
स्वयंभूरमण द्वीप 153
सप्रदेश 9
सम्मूर्च्छन 76, 238
सम्यग्मिथ्या दृष्टि 223
समय 19, 25
सयोग केवली 226
सर्वगत 10
सर बर्नाड पावेल 180
साइमन वॉन डर मीर 51
साधारण शरीर नाम कर्म 221
सान्तर निरन्तर वर्गणा 103, 110–11
सामान्य गुण 4
सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त 22, 52
सामूहिक चेतना 213
सासादन सम्यग्दृष्टि 223
सिन्धु 141, 149
सुख 6
सुपरनोवा 168
सुपरसिमेट्री 52, 56
सुभग नाम कर्म 221
सुस्वर नाम कर्म 229
सूचना सिद्धान्त 199–200
सूप सिद्धान्त 196
सूर्य 152, 155–57

सूक्ष्म जीव 191
सूक्ष्म नाम कर्म 22
सूक्ष्म निगोद वर्गणा 104, 126
सूक्ष्म सांपराय 225
सेटी (SETI) 176
सेरेबलम 233
सेरेब्रम 233
संख्या 7
संख्याताणु वर्गणा 100
संघात नाम कर्म 219
संयता संयत 224
संयोग 7
संस्थान 7, 42
संस्थान नाम कर्म 219
संसारी जीव 66–68
संहनन नाम कर्म 219
हबल 165
हरि 138, 145, 148
हल्का स्पर्श 32, 34, 110
हाइजन बर्ग 26
हाइपोथेलेमस 233
हारमोन 234
हारलो शेषल 178
हारवर्ड वेधशाला 178
हावर्ड गोर्गी 51
हिग्स फील्ड 54
हिट्रोट्रोपिक 124
हिप्पोकेम्पस 234
हिमवान् पर्वत 148–49
हुण्डावसर्पिणी काल 142, 144
हेज होवेर 179
हेमवत 138, 144, 148
हैरण्यवत 138, 148
होमोसेपियन्स 204
होलोग्राम 214–216, 240
क्षीणकषाय 225
क्षेत्र 9
त्रसकाय 74
त्रसनाड़ी 136, 187
त्रसनामकर्म 221
त्रिशरावसंपुटाकार 15, 136, 189
त्रीन्द्रिय 75
ज्ञान 5, 200
ज्ञान चेतना 85, 216, 247
श्रवण 60
श्री राम शर्मा आचार्य 207

लेखक

उदयपुर जिले में जन्में डॉ. नारायण लाल कछारा ने सन् 1961 में बिरला इंजीनियरिंग कॉलेज, पिलानी से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में स्नातक डिग्री तथा 1969 में जोधपुर विश्वविद्यालय से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में ही स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। आपने 1973 में सेलफोर्ड विश्वविद्यालय ब्रिटेन से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। जोधपुर विश्वविद्यालय में व्याख्याता, मालवीय क्षेत्रीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय में रीडर, सेलफोर्ड विश्वविद्यालय में गेस्ट फैकल्टी, हरकोर्ट बटलर प्रोद्योगिकी संस्थान कानपुर में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, अदन विश्वविद्यालय यमन में प्रोफेसर, कमला नेहरू प्रोद्योगिकी संस्थान सुलतानपुर में निदेशक, मदन मोहन मालवीय क्षेत्रीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय इलाहबाद में प्राचार्य आदि पदों पर कार्य करते हुए 1997 में सेवानिवृत्त हुए। आपने देश के विभिन्न संस्थानों, बोर्ड, विश्वविद्यालयों और प्रतिष्ठानों को विशेषज्ञ और सलाहकार के रूप में अपनी सेवायें प्रदान की।

सेवानिवृत्ति के बाद सामाजिक और धार्मिक कार्यों में ही आप अपने समय का नियोजन कर रहे हैं। अंतराष्ट्रीय गायत्री परिवार के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में सेवा कार्य में, विशेष तौर पर नैतिक शिक्षा के क्षेत्र में, पूर्णतया समर्पित हैं। वैज्ञानिक अध्यात्मवाद आपका प्रिय विषय है तथा धर्म और विज्ञान के समन्वय के लिए आप सतत प्रयत्नशील हैं। जैन धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप को प्रतिभाषित करने का आपका प्रयास रहा है।

ISBN-978-81-89698-38-6